

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180312

UNIVERSAL
LIBRARY

आधुनिक हिन्दी साहित्य के
कहानीकार
और उन की
सर्वश्रेष्ठ कहानियां



सम्पादक
श्री रमाकान्त मिश्र विद्यार्थी
एम० ए०

मुद्रक तथा प्रकाशक
लखनऊ प्रिंटिंग हाउस
अमीनाबाद, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण

१९५३

मूल्य ३।।



मां !

तुम्हारे मंदिर में यह नये पुजारी अपनी साहित्य साधना के नवीन पुष्प लाये हैं । इन्हें आशीर्वाद दो मां ! तुम्हारे वरद हस्त की छाया में बैठकर यह उस सत्यं, शिवं और सुन्दरं की भावना से ओत प्रोत नवीन हिन्दी साहित्य का सृजन कर सकें; जिससे कि दुखी मानवता सुख और शान्ति का अनुभव कर सके । हमारा यह नव भारतीय राष्ट्र अपनी आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक विषमताओं को दूर कर एक सुखी और सम्पन्न राष्ट्र बनकर विश्व को सुख और शान्ति का नव संदेश दे सके ।

भारतीय जनतंत्र के इस स्वर्णिम प्रभात में
राष्ट्र भाषा हिन्दी के आधुनिक कहानीकारों का यह
प्रतीक ऐतिहासिक ग्रंथ

कहानीकार

भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति
के

संरक्षक

देशरत्न डाक्टर श्री राजेन्द्र प्रसाद जी
राष्ट्रपति



भारतीय गणराज्य

को सर्व प्रथम

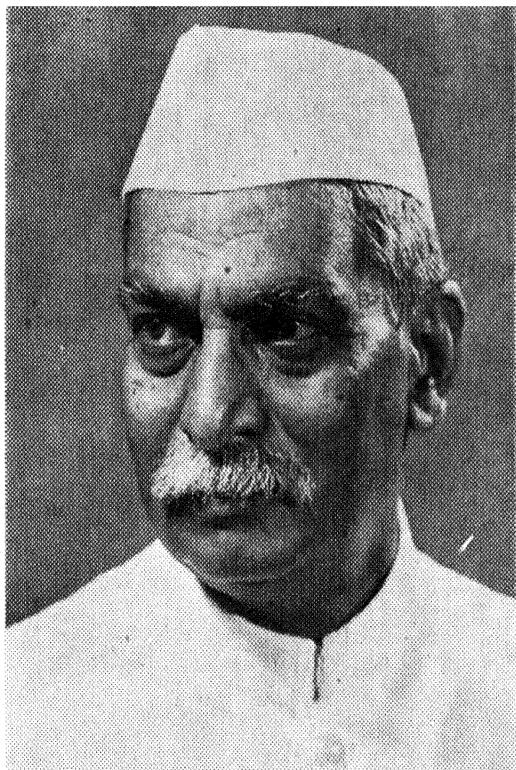
मां भारती के मन्दिर के प्रसाद के रूप में
हमने सादर समर्पित किया ।

—रमाकान्त मिश्र

भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति

के

संरक्षक



देशरत्न डाक्टर श्री राजेन्द्र प्रसाद जी

भारतीय गणराज्य

सम्प्रदायिकाथ

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग गद्य का युग है। और इस गद्य के युग में सबसे अधिक उन्नति कहानी साहित्य की हुई है। अतएव आधुनिक हिन्दी साहित्य में कौन-कौन से नये पुराने तथा नवोदित कहानीकार हैं, उनकी कौन कौन सी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं, कहानी साहित्य की क्या प्रगति है आदि बातें इतिहास साहित्य और समालोचना की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

जहाँ तक हिन्दी साहित्य के पुराने विख्यात कहानीकारों का संबंध है, उनका परिचय तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिख ही गये हैं परन्तु उनके बाद भी इधर बहुत से अच्छे अच्छे नये कहानीकार हुए हैं जो अपनी प्रतिभा से विख्यात हो गये हैं। इन नवीन विख्यात कहानीकारों के अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे नये कहानीकार हैं, जिन्होंने सुन्दर सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं, परन्तु कोई ऐसा प्रयास न होने के कारण उनका सुन्दर नवीन साहित्य हिन्दी जगत के सम्मुख नहीं आ सका है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को नवीन पृष्ठ प्राप्त हो सकें, नया साहित्य सामने आ सके, आलोचना के लिए नयी सामग्री प्राप्त हो सके, परोक्षों को नवीन प्रश्न करने को और परीक्षार्थी तथा अन्य पाठकों को अध्ययन करने के लिए नया साहित्य मिल सके इस उद्देश्य से हम आधुनिक हिन्दी साहित्य के कहानीकारों का परिचय 'कहानीकार' नाम से दे रहे हैं। कौन कहानीकार किस कोर्ट का है, उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य में क्या स्थान होना चाहिए, इसका निर्णय स्वयं न कर हिन्दी साहित्य के समालोचकों पर ही छोड़ने के लिये इन कहानीकारों की श्रेष्ठ रचनायें हम हिन्दी जगत के सम्मुख रख रहे हैं; जिससे कि उनका हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित हो सके।

पहले सोचा था कि नये पुराने तथा नवोदित कहानीकारों का वर्गीकरण कर दें, परन्तु इस वर्गीकरण के लिये सब सामग्री एकत्र करने की प्रतीक्षा में कब तक यह कार्य रोकते, अतएव क्रम से जितना पहिले रचना सहित जिसका परिचय मिलता गया उसे हम देते गये हैं। कहानीकार का जिस समय समाचार हिन्दी जगत के पत्रों में दिया गया था, उस समय केवल जीवित कहानीकारों का ही उल्लेख किया गया था। अतएव इस खंड में केवल उन्हीं का परिचय दिया जा सका है। परन्तु ऐसा करने से हमारा बहुत सा कहानी साहित्य रह जाता है। अतएव आगे में उनका भी परिचय प्रकाशित होगा।

हमारे कार्यालय में जिन कहानीकारों का परिचय रचना सहित आ गया है, परन्तु इस खंड में स्थान तथा साधन के अभाव के कारण नहीं आ पाया है वह दूसरे खंड में प्रकाशित होगा। कुछ कहानीकारों के चित्र हमारे पास आ गये परन्तु कुछ के नहीं आ सके। अतएव कुछ के चित्र देना और कुछ के न देना यह अच्छा नहीं जान पड़ा, और इससे ग्रंथ की एक रूपता भी नष्ट होती थी, इसीसे हमने चित्र नहीं छापे।

विख्यात कहानीकारों का जितना परिचय प्राप्त हो सका है और हो रहा है उस दृष्टि से विख्यात कहानीकारों का परिचय इस खंड में कम केवल इसी कारण से दिया है कि उनमें तो फिर भी बहुत कुछ हिन्दी जगत परिचित हो सका है, परन्तु नये कहानीकारों का नया साहित्य अभी अन्धकार में ही है। इसका भाव यह कदापि नहीं है कि उनकी उपेक्षा की गई है। वे हमारे सम्मान के पात्र हैं। उनके समक्ष नये कहानीकार नये ही हैं, परन्तु नये कहानीकार उनके स्नेह और प्रोत्साहन के पात्र अवश्य हैं। हमारा उद्देश्य और आदर्श भी यही है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के इन नवोदित कहानीकारों को अपने युग के विख्यात कहानीकारों का स्नेह और प्रोत्साहन प्राप्त होगा तथा इन आधुनिक विख्यात कहानीकारों से पहिले की पीढ़ी के विख्यात कहानीकार इस नई पीढ़ी को देखकर प्रसन्न होंगे और सुख तथा शांति का अनुभव करेंगे। इस प्रकार से नये पुराने तथा नवोदित आधुनिक कहानीकारों की यह श्रेष्ठ रचनाएं न केवल कहानी साहित्य की प्रगति का ही परिचय देंगी अपितु सुन्दर, स्वस्थ और मनोरंजक साहित्य का स्तर ऊँचा करने में नयी दिशा का पथ प्रदर्शन करेंगी; जिससे कि केवल यथार्थवाद और नग्नवाद के चक्कर में पड़े हुए कहानीकार सत्य, शिव और सुन्दर की भावना से प्रेरित होकर हिन्दी जगत के कहानी पाठकों की अभिरुचि को परिष्कृत करने का प्रयत्न करेंगे।

भारतीय जनतंत्र के इस जनयुग में जब हम सभी कार्य जनतंत्रात्मक ढंग से कर रहे हैं तो फिर साहित्य जिसके द्वारा युग निर्माण होता है, राष्ट्र बनते और बिगड़ते हैं उसमें ही क्यों पूंजीवादी युग की छाप लगी रह जाय। आज भी हमारे प्रकाशन और सम्पादन में पूंजीवादी और सामन्तशाही युग की छाप लगी रहे यह दुःख और लज्जा की बात है। यह हमारे भारतीय जनतंत्र का उपहास है। यह ठीक है कि केवल विख्यात साहित्यकारों की रचनायें सम्पादित और प्रकाशित करने में व्यय और विद्वता की अधिक आवश्यकता नहीं होती परन्तु उससे दबी हुई प्रतिभा को विकसित होने का अवसर नहीं मिल सकता, मां भारती का अवरुद्ध द्वार नये पुजारियों के लिये नहीं खुल सकता और बहुत से प्रतिभा-वान परिस्थिति की विषमता के कारण निराश होकर दूसरी दिशा की ओर मुख मोड़ ले सकते हैं। अतएव कहानी साहित्य के क्षेत्र में जिस नवीन ज्योति को लेकर हम आगे बढ़े हैं उसमें समस्त हिन्दी प्रेमी पाठक, समालोचक, शिक्षक और परीक्षक आदि का हम सहयोग रूपी स्नेह चाहते हैं। जिससे कि यह ज्योति अखण्ड रूप से जलती हुई नवीन प्रगति को जन्म देती रहे।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के कहानीकार

सुश्री कुमारी पुष्पा सिंह, एम. ए.

सुश्री कुमारी पुष्पा सिंह, एम. ए., का जन्म सन १९२६ ई० में हुआ है। आपने हिन्दी, अंग्रेजी और राजनीति में एम. ए. किया है। कहानी लिखने में अभिरुचि आपको अवश्य है, परन्तु इधर उधर पत्र पत्रिकाओं में भेजने के चक्कर में नहीं रहती हैं। यदि किसी पत्र ने मांग की तो भेज देती हैं अन्यथा अपने हृदयोद्गार लेखनी द्वारा कागज पर उतारकर सुख, शान्ति और सन्तोष का अनुभव करती हैं। ऐसा करने में आपको वही आनन्द और शान्ति मिलती है जो एक सहेली को अपनी दूसरी सहेली से अपने मन की बात कह देने के उपरान्त शान्ति मिलती है। यही कारण है कि आपकी कहानियाँ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकीं। आज कल आप आर्य कन्या वेदिक इंटर कालेज में हिन्दी विभाग की अध्यक्ष हैं और कुञ्ज निवास, रिसालदार पार्क, लखनऊ में निवास करती हैं।

सुश्री कुमारी गायत्री सक्सेना, एम. ए.

सुश्री कुमारी गायत्री सक्सेना, एम. ए. का जन्म ३ दिसम्बर १९२४ ई० को उत्तरी ब्रह्मा में मचीना नामक नगर में हुआ है। आपके पिता श्री कन्हैयालाल जी सक्सेना यहां के इक्जीक्यूटिव इंजीनियर थे। बाल्यावस्था से ही आपको रुचि साहित्य की थी, परन्तु परिस्थितियों की विपमता के कारण आप कभी अपनी रुचि को अधिक आकार नहीं दे पाईं। कभी कभी समय व उमंग में कुछ लिख लिया करती हैं। पर मासिक पत्रिकाओं में छपवाने की कभी लालसा नहीं करतीं। दो तीन कहानियाँ 'आनन्द' व 'कल्याणी' में प्रकाशित हुई हैं। आप हिन्दी तथा संस्कृत दोनों विषयों में एम. ए. हैं। इनका 'रजत कण' नाम से एक कहानी संग्रह मुद्रित हो रहा है। 'मानवता की पुकार' नामक एक उपन्यास भी तैयार है। आज कल आप मुरारी लाल गर्ल्स कालेज में हिन्दी तथा संस्कृत की लेक्चरर हैं और ८४, प्रेम नगर, दयाल बाग, आगरा में निवास करती हैं।

श्री देवी शंकर मिश्र 'अमर' एम. एस-सी.

श्री देवी शंकर मिश्र, 'अमर', एम. एस-सी. का जन्म २५ दिसम्बर १९१६ ई० में हुआ है। 'अमर' जी एक कहानीकार, कवि तथा सम्पादक हैं। विद्यार्थी जीवन में आपने ज्ञान वर्धिनी सभा, लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अन्तर विश्वविद्यालय कहानी प्रतियोगिता में दो बार भाग लिया और दोनों बार प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। आपकी 'उद्गार' (कविता तथा रेखाचित्र संग्रह) "जगद्गुरु भारत" (भारत के विज्ञान संबंधी प्राचीन अन्वेषणों का इतिहास और 'सुमार्ग' (The path way का हिन्दी अनुवाद) और परीक्षा काडम् (तुलसीकृत रामायण की पैरोडी) रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं और 'योग स्वास्थ्यवृत्त' (Yoga: Personal Hygiene का हिन्दी रूपान्तर) और 'विश्व-सर्प सम्मेलन आदि अग्रकाशित हैं। सन १९३८ में आपने 'कान्यकुब्ज' पत्रिका के कहानी अंक का सम्पादन किया था। इस समय आप कालीचरण इंटर कालेज के विज्ञान विभाग के अध्यक्ष हैं और २, हुसेनगंज, लखनऊ में निवास करते हैं।

श्री मोहन शर्मा, साहित्यरत्न

आप होनहार तरुण कहानी लेखक हैं। एक मध्य वर्ग के परिवार के कलाकार होने के कारण अधिकांश आर्थिक समस्याओं में उलझे रहते हैं। अतएव संभव है कि कहानी के क्षेत्र से दूर भी हो जायं आजकल आप साधना मन्दिर, २६४ ग्रेन मार्केट, हुन्दावन में निवास करते हैं और पत्र पत्रिकाओं में लिखकर अपनी कहानियाँ बेजा करते हैं।

श्री जयशंकर त्रिपाठी

श्री जयशंकर त्रिपाठी का जन्म १९८५ विक्रमी संवत् में बदौली (मान्डा) प्रयाग में हुआ है। आपका एक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त संग्राम और आखुनेय दो खंड काव्य भी लिखे हैं। आपका मुख्य विषय भारतीय संस्कृति और इतिहास है। त्रिपाठी जी की कविताओं पर इनकी जन्म भूमि के निकटवर्ती विन्ध्याचल और उसके जंगलों का विशेष प्रभाव है। आजकल आप ए० वी० इण्टर कालेज बामपुर, पोस्ट नहवाई, प्रयाग में हिन्दी और संस्कृत के अध्यापक हैं।

साहित्य वाचस्पति श्री मदन मोहन गुप्त,

श्री मदन मोहन जी गुप्त का जन्म २ जनवरी १९२२ में हुआ। बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल और दिल्ली आदि के लगभग सभी सुप्रसिद्ध मासिक, साप्ताहिक, पाल्ति और दैनिक पत्र पत्रिकाओं में आपकी रचनायें बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी कहानियों का एक संग्रह 'अनल कुण्ड' नाम से प्रकाशित हो चुका है। कहानियों के अतिरिक्त 'प्रेम पत्रावली (कविता संग्रह) अजब टोपी छः आने (हास्य प्रधान कवितायें) तथा दो दर्जन पाठ्य पुस्तकें जो शिशु से लेकर मैट्रिक कक्षा तक सहायिका के रूप में पढ़ाई जाती हैं, प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रोफेसर श्री रामचरण महेन्द्र, एम. ए.

प्रोफेसर श्री रामचरण महेन्द्र, एम. ए., कोटा राजस्थान के प्रमुख साहित्यकारों में से हैं। आप हिन्दी में स्वास्थ्य, दर्शन एवं मनोविज्ञान संबंधी पुस्तकों के रचयिता के रूप में पश्चात् प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इसीसे इनकी कहानियों की पृष्ठ भूमि मनोवैज्ञानिक होती है। किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को आधार मानकर आप कथानक खड़ा करते हैं। अन्तर्मन में छिपी दलित अनुभूतियों का मानव जीवन पर कैसा विचित्र प्रभाव पड़ता है तथा उससे क्या क्या दुष्परिणाम निकलते हैं इसका चित्रण आप सुचारु ढंग से करते हैं। यथार्थवाद से आप विशेष प्रभावित हैं। आजकल आप हरबर्ट कालिज, कोटा, राजस्थान में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं।

डा० श्री इन्द्रसेन, एम. ए., पी-एच. डी.

डा० श्री इन्द्रसेन, एम. ए., पी-एच. डी. श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी, में आज आठ वर्ष से आश्रम से निकलने वाली पत्रिका 'अदिति' का सम्पादन करते हैं। पहिले आप देहली में दर्शन तथा मनोविज्ञान के अध्यापक थे फिर श्री अरविन्द तथा माताजी के व्यक्तित्वों से प्रभावित होकर अपनी दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक जिज्ञासा की वृत्ति के लिये

यहाँ आश्रम में आगये। साहित्यिक व्यस्तता तथा यौगिक कार्य की संयुक्त प्रेरणा से आपने अनुभव किया कि आध्यात्मिक अनुभव एक विस्तृत जगत है, जिसका निरूपण साहित्य में होना चाहिये। इस निरूपण के लिये निबंध के साथ साथ कहानी का माध्यम आपको अधिक उपयुक्त जान पड़ा। अतएव आजकल आप कहानियाँ अधिक लिख रहे हैं।

श्री श्रीराम त्रिवेदी, 'मधुकर'

श्री श्रीराम त्रिवेदी, 'मधुकर' का जन्म १५ जनवरी १९२७ ई० में ग्वालियर में हुआ था। आपका एक कहानी संग्रह 'अलकावली' नाम से प्रकाशित हो चुका है। कहानियों के अतिरिक्त आप कविता भी लिखते हैं। 'अभियान' (कविता संग्रह) प्रकाशित हो चुका है और 'युग की बात' (काव्य) प्रकाशित होने के लिये प्रेस में है। आपकी कहानियाँ पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। इस समय आप पुखरावाँ, कानपुर में निवास करते हैं।

सुश्री कुमारी विपुला देवी

सुश्री कुमारी विपुला देवी का जन्म अक्टूबर १९२६ ई० को सीतापुर में हुआ था। आपकी शिक्षा जीवन के विद्यालय में हुई है। लगभग १०० कहानियाँ आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। कहानियों के अतिरिक्त आपके लिखे हुये तीन अप्रकाशित उपन्यास, एकांकी और स्फुट लेखादि भी हैं। आपकी पहली कहानी अप्रैल १९४१ में प्रयाग की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। आपने युद्ध कहानियाँ, किशोर जीवन से संबंधित कहानियाँ, एवं विचित्र घटना प्रधान कहानियों के अतिरिक्त सामाजिक और ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। आपका निवास स्थान त्रिवेदी निकेतन, बटगंज, सीतापुर है।

प्रोफेसर श्री मोहन लाल, 'जिज्ञासु', एम. ए., एल-एल. बी.

प्रोफेसर श्री मोहन लाल, 'जिज्ञासु' का जन्म २६ अक्टूबर १९२२ ई० में हुआ है। सबसे प्रथम आपकी 'बटोही' नामक कहानी प्रकाशित हुई थी। फिर उसके बाद हिन्दी की विविध पत्र पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। इस समय 'सप्त दीप' नाम का एक कहानी संग्रह प्रकाशित होने के लिये प्रेस में मुद्रित हो रहा है। 'जिज्ञासु' जी हिन्दी की हर कक्षा में प्रतिवर्ष सर्व प्रथम रहे। कालेज कहानी प्रतियोगिता में प्रतिवर्ष सर्व प्रथम आने के कारण आपको सर्व प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। जोधपुर द्वारा कहानी प्रतियोगिता में 'पहिले दिन की बात' नामक कहानी पर आपको सर्व प्रथम पुरस्कार मिला। आज कल कालेज में होने के कारण आलोचना पर अधिक जोर तथा कहानी पर अपेक्षाकृत कम है। आपकी प्रकाशित तथा अप्रकाशित रचनायें इस प्रकार हैं। प्रकाशित—१-अन्तर्दाह (कविता संग्रह), २-हिन्दी गद्य की रूपरेखा (आलोचनात्मक ग्रंथ), ३-नूतन प्रबन्ध वल्लरी (संग्रह), ४-हिन्दी गद्य का इतिहास (आलोचनात्मक ग्रंथ), ५-कहानी और कहानीकार (आलोचनात्मक ग्रंथ), अप्रकाशित—१-सप्त दीप (कहानी संग्रह), २-जय-पराजय (नाटक)।

श्री बैकुण्ठ नाथ मेहरोत्रा, एम. ए., एल-एल. बी.

श्री बैकुण्ठ नाथ मेहरोत्रा का जन्म सन १९२२ ई० में हुआ। अब तक सौ के लगभग कहानियाँ आपकी समय समय पर विभिन्न हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। इसके अतिरिक्त अन्य गम्भीर विषयों पर भी लेख लिखते हैं। आपकी कहानियों का एक संग्रह 'मौन निमंत्रण' नाम से १९४६ में प्रकाशित हुआ है। आपकी कहानियों में अधिकतर जीवन तत्व का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पाया जाता है। रेखा चित्र और गद्य गीत भी बड़ी संख्या में इन्होंने लिखे हैं। इनकी नाटक लिखने में विशेष रुचि है। आल इंडिया रेडियो से बहुधा इनके नाटक प्रसारित हुआ करते हैं। कई मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों का भी इन्होंने सम्पादन किया है। आप १७, बी० मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद में निवास करते हैं।

श्री विष्णु अम्बालाल जोशी, एम. ए.

श्री विष्णु अम्बालाल जोशी का जन्म १९१४ ई० में भाँवता, अजमेर मेरवाड़ा में हुआ। आप ४ वर्ष तक काशी विश्वविद्यालय के छात्र रहे। और वहाँ एम० ए० में आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल जी के चरणों के निकट बैठकर आपने उनके निर्देशन में 'चन्द्रगुप्त—एक अध्ययन शीर्षक प्रबन्ध सम्बन्धी शोध कार्य किया। जोशी जी आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल जी के परम शिष्य थे। हमें यह कहते हुये गर्व होता है कि आपने आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल जी की निम्नांकित पंक्ति को—

'अगर वह लिखने की ओर झुकेंगे, तो अवश्य साहित्य-क्षेत्र में सफलता प्राप्त करेंगे।'

सिद्ध कर दिखाया। आज तीन वर्ष से आप गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। साहित्य में कहानी, गद्य काव्य, तथा नाटक की ओर आपकी विशेष रुचि है। समय समय पर आलोचनात्मक ऐतिहासिक लेख भी लिखते रहते हैं। 'साहित्य सन्देश' 'जीवन साहित्य' 'विक्रम' तथा माया आदि पत्रों में आपकी रचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। आपका 'वह.....' नामक एक कहानी संग्रह तथा 'जीवन-कण' नामक एक संकलन जो एक पाठ्य पुस्तक के रूप में है प्रकाशित हो चुकी है।

श्री देवी दयाल चतुर्वेदी, 'मस्त', सम्पादक, सरस्वती

श्री देवी दयाल चतुर्वेदी, 'मस्त' का जन्म २० जुलाई, १९११ ई० देवरी, सागर, मध्य प्रदेश में हुआ। यह न केवल आधुनिक हिन्दी साहित्य के विख्यात कहानीकार ही हैं अपितु एक प्रसिद्ध कवि, उपन्यासकार और पत्रकार भी हैं। आप 'मंजरी' 'बाल सखा' 'बिजली' और सरस्वती के सफल सम्पादक हैं। अब तक आपके दस निम्नांकित उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—

१-रैनवसेरा, २-आँख मिचौनी, ३-दीपदान, ४-भाग्यहीनों की बस्ती, ५-प्यासी आँखें, ६-रंग महल, ७-अपना पराया, ८-अनुष्ठप, ९-प्रवाह, और १०-लक्ष्य बोध। 'मस्त जी' के पांच कविता संग्रह इस प्रकार हैं—१-रानी दुर्गावती (खण्ड काव्य), २-बिजली, ३-मीठी तानें, ४-झिलमिल तारे और ५-मंजरी,। कहानीकार के रूप में

श्री देवी दयाल चतुर्वेदी जी ने पाँच पुस्तकें १-अन्तर्ज्वाला, २-छोटी बात, ३-आवर्तन, ४-सन्नाटा, और ५-उलट फेर आदि लिखी हैं। आपका वर्तमान पता—संपादक, सरस्वती, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद है।

श्री केशव देव मिश्र, 'कमल'

श्री केशव देव मिश्र, 'कमल' का जन्म सम्वत् १९७८ ववार चौथ को लालपुर में हुआ। यह प्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय पं० भीमसेन शर्मा के पौत्र हैं। श्री जैनेन्द्र कुमार जी की प्रेरणा से इन्होंने कहानी लिखना आरम्भ किया। इस समय हिन्दुस्तान, माया, भारत, धर्मयुग, मानव धर्म, कल्याण, लोक वाणी, नई दिशा, धीणा, आजकल, साधना और प्रकाश आदि पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। आपने साप्ताहिक संग्राम तथा दैनिक 'लोकवाणी' जयपुर का भी सम्पादन किया है। जिस समय आपको राजस्थान सरकार के प्रकाशन विभाग में ले लिये जाने का प्रयत्न हो रहा था, दुर्भाग्य से आप एक ग्राम के वृत्त पर से गिर पड़े; जिससे कि आपकी कमर की हड्डी टूट गई और आप पंगु हो गये। हड्डी अब जुड़ अवश्य गई है परन्तु गलत जुड़ गई है। इससे अब आप खड़े न हो सकेंगे। सदैव ऐसे ही रहेंगे और अब आप चारपाई पर लेटे लेटे ही लिखते पढ़ते रहते हैं। आपका एक कहानी संग्रह तय्यार है, जिसकी भूमिका श्री बनारसी दास चतुर्वेदी जी लिख रहे हैं। कहानियों के अतिरिक्त आपका एक अप्रकाशित उपन्यास 'थाह' भी है, जिसे आप पूर्ण करने में जुटे हैं। इसके अतिरिक्त आपने कुछ कविताएँ और गद्य गीत भी लिखे हैं। आपका पूरा पता—साहित्य-मदन, लालपुर, पो० रूपधनी, एटा, उत्तर प्रदेश है।

साहित्याचार्य श्री उमादत्त सारस्वत, 'दत्त'

श्री उमादत्त सारस्वत का जन्म १९०५ ई० में हुआ। आपने 'किरण' किसलय और कोयल तीन काव्य संग्रह तथा प्रवासी पति एक महा काव्य लिखा है। कहानीकार के अतिरिक्त आप एक सुन्दर व्यंग्य लेखक भी हैं। 'मस्त राम का चिड़ा', 'मस्त राम का सोटा' और 'भइया केंचुल बदल' यह तीन आपके व्यंग्य हास्य और व्यंग्य समालोचना की सुन्दर कृतियाँ हैं। लेखलतिका एक लेख संग्रह और भाई बहन आपका एक कहानी संग्रह है। आपका निवास स्थान माधव कवि निवास, बिसवां, जिला सीतापुर है।

साहित्यालंकार श्री मदन मोहन मिश्र

श्री मन मोहन मिश्र का जन्म ४ मार्च १९१४ में रीवां स्टेट में हुआ है। प्रकाश, वीणा, भारत, विश्व मित्र, मस्ताना जोगी आदि पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। इनकी यह कहानियाँ अधिकांश सामाजिक ऐतिहासिक एवं हास्यपूर्ण हैं। आपको कई बार सुन्दर कहानियों के लिये पुरस्कृत भी किया गया है। आपका निवास स्थान, 'मदन सदन', खल्गा स्ट्रीट, रीवां राज्य, विन्ध्य प्रदेश है।

श्री चिरंजी लाल 'पंकज'

श्री चिरंजी लाल 'पंकज', ५५६, चौद भवन, ८ वीं सड़क, सरदारपुरा, जोधपुर के रहने वाले हैं। आपकी कहानियाँ 'नवभारत टाइम्स' और 'ललकार' आदि पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। अन्य रचनाएँ नवभारत टाइम्स, वीर अर्जुन, हिन्दुस्तान, आदि पत्रों में

प्रकाशित हुई हैं। 'ज्वाला' पाल्कि और 'राजस्थान केसरी' साप्ताहिक के आप सम्पादक हैं तथा 'कमल' और 'प्रभा' पाल्कि के परामर्शदाता हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी 'पंकज' जी को अच्छी सफलता मिली है। आपकी पुस्तक 'कीर्तिकृत भक्ति साहित्य' पर रीवाँ राजमाता द्वारा ५०१) रु० का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। अन्य ग्रंथ 'आधुनिक साहित्य में नग्नवाद, शीघ्र प्रेस में जाने वाला है। आप साहित्य सदन जोधपुर के प्रमुख संचालक और प्रचार मंत्री का कार्य कर चुके हैं। इधर तीन वर्षों से कुमार साहित्य परिषद् के साहित्य मंत्री हैं। सन १९४५ में आपने भारतीय समाचार समिति की स्थापना की थी जो भारत के तथा राजस्थान के कई दैनिक साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों का प्रतिनिधित्व करती है। आपका एक कहानी संग्रह 'एक समस्या' और निबंध संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी

श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी का जन्म २ मई १९१५ ई० में खण्डवा, मध्य प्रदेश में हुआ। आप पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' जी की पत्नी हैं और लगभग एक युग से इलाहाबाद में निवास कर रही हैं। आप भी 'मस्त' जी की भाँति सुन्दर कवियित्री, सम्पादिका तथा कहानी लेखिका हैं। मंजरी, नीलम और मधुबन आपके प्रसिद्ध प्रकाशित कविता संग्रह हैं। आपके कहानी संग्रह 'उलझी लड़िया' की उत्तमता पर उत्तर प्रदेशीय सरकार ने मार्च १९५१ में ५००) रु० का पुरस्कार प्रदान किया है। कविता और कहानियों के अतिरिक्त 'घर की शोभा' नाम की महिलोपयोगी मौलिक लेखों की एक पुस्तक भी आपकी प्रकाशित हो चुकी है। आप 'मनोरमा' नामक मासिक पत्रिका का नवम्बर १९४७ से अप्रैल १९५० तक सम्पादन कर चुकी हैं। 'गल्प गवान्न' नाम से आपने हिन्दी के बारह प्रतिनिधि कहानीकारों के संग्रह का सम्पादन किया है।

सुश्री शान्ति मेहरोत्रा, एम. ए.

सुश्री शान्ति मेहरोत्रा का जन्म नेनुआँ बून्दी स्टेट में सन १९२६ में हुआ। यह प्रसिद्ध कहानीकार श्री बैकुण्ठ नाथ मेहरोत्र जी की पत्नी हैं। कविता के क्षेत्र में इनका विशेष स्थान है। अब तक इनके ६ कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। १- 'निष्कृति' (डा० बड़वाल पारितोषिक प्राप्त) २- 'मरीचिका' (माता कस्तूरबा पारितोषिक प्राप्त) ३- विदा, ४- पगध्वनि, ५- रेखा, और ६- पंच प्रदीप। आपका रेखा नामक कविता संग्रह हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'सेक्सरिया' पारितोषिक से विभूषित किया गया है।

आपने बहुत सी कहानियाँ तथा रेखाचित्र भी लिखे हैं।

‘‘आशा’’

लेखिका—कुमारी पुष्पा सिंह, एम० ए०

मुझे ठीक याद नहीं कि आशा तथा उसकी माँ ने कब इस घर में प्रवेश किया। मुझे यह भी ज्ञात नहीं था कि वे कौन हैं और कहाँ से आई हैं। याद है केवल इतना कि जब मैं छः वर्ष का था तब दो वर्ष की आशा को लेकर उसकी माँ हमारे घर आई थीं और तब से वे हमारे परिवार की ही सदस्य बन कर रहीं। मेरे शैशव तथा यौवन के सुनहरे दिन आशा के सम्पर्क में बीते और अंत में जब एम० ए० की परीक्षा पास करके मैं एक बड़े फ़र्म में मैनेजर का पद प्राप्त कर सका, मेरे मन की सोई हुई भावनाएं बाहर आने को मचलने लगीं।

मुझे पता भी न चला और आशा चुपके से न जाने कब और कैसे मेरे हृदय में आ लुपी। अब मेरे प्रेम ने मुझे बाध्य किया कि मैं आशा की माँ को अपने तथा आशा के विवाह का संकेत दूं। मेरी माँ मुझे बारह वर्ष की अवस्था में नीरू मौसी, आशा की माँ, के हाथों सौंप कर चल बसी थी। पिता ने तब से परिवार के भार से जैसे संबंध तोड़ दिया और वह सब भार आ पड़ा नीरू मौसी के कंधों पर।

मौसी ने मुझे कभी माता के अभाव का पता ही न चलने दिया।

आशा सुन्दर है। पर मौसी के सौन्दर्य के सामने जैसे सब फीका पड़ जाता है। मैं कभी कभी आशा को खिन्नाता भी था कि मौसी तो तुम्हें खरीद कर लाई हैं। ऐसी सुन्दर मौसा की ऐसी पुत्री हो ही नहीं सकती। परन्तु इससे आप मेरी आशा के सौन्दर्य में कमी न समझने लगे। हाँ! मौसी से उसकी तुलना नहीं हो सकती।

मौसी को देख कर कोई उनकी आयु का अनुमान नहीं लगा सकता। उनके निर्बल क्षीण शरीर से उनका आयु चालीस वर्ष के लगभग लगती है। किन्तु यदि आप उनके नेत्रों की उस चमक को देखें जो मौसी के व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण अंग है तो आप सम्भवतः आयु का अनुमान लगाना ही भूल जायँ। उनके खुले घुंघराले केश उनके सौन्दर्य की आभा को और भी अधिक बढ़ाते रहते हैं। जब वह प्रातः कृष्ण की प्रतिमा के सम्मुख निमीलित नेत्रों से ध्यान मग्न बैठी रहती हैं तो हमें लगता है, सम्भवतः मीरा गिरधर गोपाल के प्रेम में व्याकुल ऐसी ही लगती होंगी।

लीजिये! कथा सुनाने बैठा था अपने और आशा के प्रेम की और बहक कर कहाँ पहुँच गया। हाँ! तो यह निश्चय हुआ कि जब मौसी पूजा समाप्त करके अपने कमरे में पहुँचें तो आशा आ कर मुझे सूचित करे; और मैं जाकर विवाह का प्रसंग छेड़ूँ।

संध्या का प्रकाश धँधला हो चला था जब आशा ने मुझे आ कर सूचित किया कि मौसी कमरे में पहुँच गई हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यद्यपि मौसी ने कभी हमें कटु शब्द तक नहीं कहे थे, परन्तु फिर भी हम उनसे डरते बहुत अधिक थे। अतः जब आशा ने आ कर सूचना दी तो मेरा साहस साथ छोड़ने लगा। परन्तु प्रश्न था जीवन के सुख दुःख का। अतः मैं धड़कते हृदय से मौसी के कमरे में पहुँचा।

जब मैं कमरे में पहुँचा तो मौसी खिड़की के समीप एक कुर्सी पर बैठी थी। वे कुछ थकी सी लग रही थीं। डूबते हुए सूर्य की अंतिम किरणें उनके मुख की सौम्य कान्ति को बढ़ा रही थीं।

“अन्दर आओ रंजीत”। मुझे द्वार पर ही सहम कर रुकते देख मौसी ने पुकारा।

मैं समीप जाकर एक स्टूल पर बैठ गया।

“मौसी ! मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ”। “तो कहो न बेटे। क्या बात है ?”

कुछ समय तक मेरी समझ में न आया कि कैसे प्रारम्भ करूँ। एक बार तो इच्छा हुई कुछ न कहूँ और लौट चल। परन्तु फिर क्या होगा और कैसे होगा ?

‘मौसी ! मैं अपने और आशा के विषय में कहने आया था। मैं अब अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य हो गया हूँ। आशा भी मेरा गला सूखने लगा और मैं चुप हो गया।

मौसी कुछ समय तक चुप बैठी रहीं और फिर बोलीं—

“ठीक है ! तुम दोनों एक दूसरे के योग्य हो। मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है और जब मैं कह दूँगी तो तुम्हारे पिता को भी आपत्ति न होगी। परन्तु कुछ ऐसी बातें हैं जो मैं तुम दोनों को बताना चाहती हूँ ! और तुम्हारे विवाह से पूर्व। परन्तु तुम दोनों साथ ही सुनो तो अधिक अच्छा है। जाओ आशा को भी बुला लाओ।”

आशा को बुलाने दूर न जाना पड़ा। कमरे के बाहर द्वार की वोट में वह खड़ी थी। मैंने उसे मौसी का उत्तर बता दिया और हम दोनों अन्दर पहुँचे। मौसी ने हम दोनों को देखकर खिड़की की ओर मुंह फेर लिया। परन्तु हमने जीवन में पहली बार उन आँखों में आँसू छलकते देखे। हम चुपचाप जा कर बैठ गये। क्या कहें कुछ समय में नहीं आ रहा था। लगता था कहीं कोई भूल हो गई है। परकहाँ और क्या यह नहीं समझ पा रहा था। तभी मौसी ने कहना प्रारम्भ किया।

“बेटे ! तुम आशा का भार लोगे तो मैं शान्ति पूर्वक जीवन यात्रा पूरी कर सकूँगी। पर मैं तुमको बता देना चाहती हूँ कि मैं आशा की माँ नहीं हूँ”।

उम समय यदि आसमान भी फट पड़ता तो हम सम्भवतः इतना न चौंकते जितना यह सुन कर। परिस्थिति की गम्भीरता को कम करने के लिये मैंने कहा—

“बत्ती जला दू मौसी” ?

“नहीं बेटे ! मुझे अंधेरा अच्छा लगता है । हमारे सब के जीवन में अंधेरा रहना है । उसे हम हजार बत्तियां जला कर भी दूर नहीं कर सकते हैं । हाँ ! आशा को मैंने जन्म नहीं दिया था । बात तब की है जब मैं उन्नीस वर्ष की थी । तब न तुम थे और न आशा । मैं अपनी एक सहेली के साथ तुम्हारी माँ के विवाह में गई थी । वहाँ पहली बार मैंने सहेली के भाई किशोर को देखा । वह कुछ दिन पहले ही परीक्षा देकर लौटा था । उसके व्यक्तित्व में न जाने क्या था जिसने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया । विवाह की भीड़ भाड़ में ही किशोर का परिचय मेरे भाई से हो गया और यह परिचय थोड़े ही समय में गाढ़ी मित्रता में बदल गया ।

किशोर भाई के पास प्रायः आया करता था । हम दोनों आपस में मिलते रहते थे । पता नहीं कब यह मेल जोल प्रेम में बदल गया । और इसी तरह दो वर्ष बीत गये ।

मेरी बड़ी बहन का विवाह हो चुका था । अब मेरी बारी थी । मेरे सौन्दर्य को देख कर मेरे घर वाले मुझे किसी बहुत ही अच्छे वर के हाथ सौंपना चाहते थे । इस विषय पर प्रायः चर्चा भी होती थी जिसे सुन मैं कभी कभी भयभीत भी हो जाती थी । परन्तु किशोर मुझे हमेशा धीरज बँधाता था कि वह सब कुछ ठीक कर लेगा । फिर मैं भी सोचनी थी कि किशोर सुन्दर हैं, विद्वान हैं और सम्पन्न परिवार है । पिता को कोई आपत्ति न होनी चाहिये ।

एक दिन बैठी मैं भावी जीवन के ताने बाने बुन रही थी कि किशोर पहुँचा । उसने मुझे बताया कि उसके पिता ने उसका विवाह एक धनी परिवार की कन्या से निश्चित कर दिया है । पिता से उसने मेरे विषय में संकेत किया था परन्तु उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया । मैंने किशोर से पूछा कि उसका अब क्या करने का विचार है । उसने कुछ गिरे स्वर में कहा—वह प्रेम मुझी से करता है लेकिन पिता से बहुत डरता है । पिता का सामना करने का साहस नहीं है ।

यह सब सुन कर मैं फौरन ही अपने कमरे में भाग गई । उस दिन मैं कितना रोई यह आज सोच कर भी आश्चर्य होता है । मैंने निश्चय कर लिया कि अब किशोर से कभी नहीं मिलूँगी । और मैंने किया भी यही । किशोर ने बहुत चेष्टा की पर मैं उस से न मিলी । और अन्त में एक दिन मौन बाँध कर किशोर बरात सजाकर मेरे घर के सामने से निकल गया । पर मेरी आँखें उस उस दिन सूखी थीं ।”

मौसी चुप हो गई । सम्भवतः उनके नेत्र आज भी किशोर को मौन बाँधे बरात सजाये जाते देख रहे थे ।

“किशोर के विवाह के बाद उस शहर में रहना मेरे लिये असम्भव हो गया । मेरे परिवार वाले भी मेरे विवाह न करने के निश्चय से परेशान थे । परन्तु मैं अपने

निश्चय पर दृढ़ थी। मैंने किशोर से प्रेम ही नहीं किया था, उसकी देवता की तरह पूजा की थी। अब उस प्रेम और भक्ति को मिटा पाना मेरे लिये असम्भव था। देवता के चरणों में एक बार समर्पित किया हुआ फूल दूसरे को देना मैं पाप समझती थी। और अंत में मैंने अपने परिवार वालों के विरोध की अवहेला कर वह शहर छोड़ दिया और बाबा राघव दास के आश्रम में चली गई। मैंने सोच लिया कि जब मुझे इस संसार से इतनी निराशा है तो क्यों न अपना समय भगवत् भजन में लगाऊँ जिससे मनको शान्ति मिले। परन्तु आश्रम में प्रवेश करने पर भी जो मैं चाहती थी नहीं हो पाया। मैं किशोर को नहीं भूल पाई। ईश्वर की मूर्ति के सामने नेत्र बंद कर बैठती तो किशोर की आकृति आकर बाधा पहुँचाती। जप करने बैठती तो माला हाथ में रह जाती और मैं किशोर की बात सोचने लगती। अंत में जब यह सब सह सकना मेरे लिये असम्भव होने लगा, तो मैंने बाबा जी से सब कुछ कह दिया।

बाबा मेरे प्रति बहुत उदार थे। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया। दूसरे दिन से मुझे आश्रम के अनाथालय में कार्य करने को भेज दिया गया। दिन भर मुझे कड़ी मेहनत करनी पड़ती। और मैं किशोर को भूली रहती। पर रात को उस दिन भर की थकान के बाद भी मैं किशोर के विषय कुछ समय तक सोचे बिना सो न पाती।

तीन वर्ष बीत गये। मेरे जीवन में बहुत परिवर्तन आ गया। अब बहुत मैं शान्त चित्त हो गई थी। परन्तु जब मैं यह सोचती थी कि मैं किशोर को भूल गई हूँ तो अपने को धोखा देती थी। मेरे अन्तर की नारी तब भी किशोर की ही पूजा करती थी। इन तीन वर्षों में मैं केवल दो तीन बार ही अपने घर गई। बाबा जी तो चाहते थे कि मैं जब चाहूँ घर जाऊँ परन्तु घर जाने पर किशोर के समाचार मिलते और मेरे इतने दिनों की साधना बालू के घरौंदे के समान नष्ट हो जाती। एक बार मैंने घर जा कर सुना कि किशोर का जीवन सुखी नहीं है। वह किसी अन्य से प्रेम करता था। रुपये की चमक ने उसकी आँखों में चक्काचौंध पैदा कर दी थी। जब वह चक्काचौंध मिटी तो वह समय हाथ से जा चुका था। मैंने यह भी सुना कि अब वह एक कन्या का पिता है परन्तु अब वह अपनी पत्नी से बात भी नहीं करता।

इन सब बातों को सुनकर मेरा मन बहुत अधिक उद्विग्न हो गया। एक बार इच्छा हुई किशोर से मिल कर उसे समझाऊँ। पर मुझे अपने पर विश्वास न था। मैं आश्रम लौट गई और निश्चय कर लिया अब कभी उस शहर की ओर पैर न धरूँगी। परन्तु मेरी शान्ति भंग हो चुकी थी। तीन वर्ष की चेष्टा से घाव पर झिल्ली आ गई थी। परन्तु इस समाचार ने घाव को फिर ताजा कर दिया। मैं दिन भर जी तोड़ कर परिश्रम करती और रात भर बेचैनी से समय बिताती। इस प्रकार तीन मास व्यतीत हो गये। पर इस बार जैसे घाव भरने का नाम ही नहीं लेता था। अब शायद घाव कभी नहीं भरेगा, मैं सोचती। अपनी विवशता पर क्रोध आता पर फिर भी कुछ कर न पाती।

एक दिन मेरा मन दिन भर बहुत अधिक विचलित रहा। रात कैसे बीतेगी सोच कर मैं बेचैन हो रही थी। चित को शान्ति मिलेगी यह सोच मैं बाबा जी के पास जा बैठी। बाबा जी ने मुझे विचलित देख औरों से बात करना बंद कर दिया और आदेश दिया कि मैं सबको रामायण पढ़ कर सुनाऊँ। सीता वनवास का प्रसंग था। जाने क्यों रह रह कर मेरे नेत्र छलछला रहे थे। मैं पड़ता रही थी कि क्यों आई। मन में यही मना रही थी कि बाबा जी चले जाने की आज्ञा दें तो अकेले में जा कर जो भर कर रो लूँ। तभी किसी ने आकर कहा कि कोई व्यक्ति बाबा जी से मिलने आया है। वह अकेले में उनके दर्शन करना चाहता है। इतनी रात को किसी का आना हम सब के लिये आश्चर्य की बात थी। बाबा जी कुसमय होने पर भी किसी को निगाश नहीं करते थे।

बाबा जी के जाने के बाद हम लोग लगभग आध घंटे उनकी प्रतीक्षा करते रहे। तभी आदेश मिला कि सब लोग सोने जावें और मैं बाबा जी की पाठ्य शाला में उनसे मिलूँ। कमरे में घुसते ही मैं बहुत कठिनाई से अपनी चीख रोक सकी। सामने बाबा जी के पास किशोर खड़ा था ! थका हुआ ! कुम्हलाया हुआ। मैं स्तब्ध खड़ी रही। बाबा जी ने जब मुझे समीप आने की आज्ञा दी तो जैसे मैं स्वप्न से चौंक कर जागी।

किशोर ने मुझे बताया कि उसकी पत्नी का देहान्त हो गया है। वह मुझसे दामा माँगने और मुझे वापस लौटाने आया है। मेरे अन्तर की नारी नग्न होकर बाहर आना चाहती थी। परन्तु तभी मुझे स्मरण हुआ वह दिन जब पैसे ने किशोर को मुझसे छीन लिया था। और मैं अपने रूप के और प्रेम के इस अपमान से तिल-मिला उठी थी।

“मैंने तुम्हें हमेशा दामा किया है। परन्तु अब पीछे लौटना असम्भव है।”

किशोर जानता था कि एक बार ‘नहीं’ निकल जाने पर ‘हाँ’ नहीं हो सकती। वह कुछ समय चुप खड़ा रहा। तब उसने अपने कंधे से लगाई हुई अठारह महीने की अपनी पुत्री मेरे पैरों पर लिटा दी। मैंने तब तक इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। मैं अपने आप को भूली हुई थी।

“यह मेरी पुत्री है। यह तुम्हारी भी है। तुम्हारे पास छोड़े जा रहा हूँ। जो इच्छा हो करना।”

मैंने बच्ची को उठाकर हृदय में छिपा लिया। किशोर को क्या उत्तर दूँ कुछ समझ नहीं पा रही थी। किशोर ने बाबा जी से लेखन सामग्री ले एक पत्र लिखा जिसमें मुझे अपनी पुत्री का अभिभावक बताया था। वह पत्र मेरे समीप रख कर वह द्वार की ओर मुड़ा। मैंने पूछा कि वह कहाँ जा रहा है। उसने उत्तर दिया यह वह स्वयं भी नहीं जानता और फिर चल पड़ा।

किशोर द्वार से बाहर हुआ ही था कि मैं अपने आप को भूल कर उसके पास भाग कर पहुँची।

“पर तुम कब लौटोगे। ओह ! मुझे विश्वास दिलाओ... ..प्रतिज्ञा करो तुम कुछ बुरा नहीं करोगे। तुम अपने को सुरक्षित रखोगे। कृपया”। मेरे आंसुओं ने मेरी बाँणी को रोक दिया।

और पूरे चार वर्ष पश्चात् मैंने अपने किशोर के ओठों पर वह पुरानी मुस्कान देखी।

“अगर तुम्हारी इच्छा है तो मैं लौटने की प्रतिज्ञा करता हूँ”। और वह शीघ्रता पूर्वक अंधकार में विलीन हो गया।”

मौसी कुछ देर चुप रहीं। परन्तु उनके स्वर के कम्पन से मैं समझ गया कि वे रो रही हैं। कुछ समय बाद स्थिर होकर उन्होंने फिर आरम्भ किया।

“किशोर के चले जाने पर मुझे पता चला कि मैंने क्या कर डाला है। जिस किशोर के स्वप्न मैं दिन रात देखा करती थी, वही जब मेरे द्वार पर याचक बन कर आया तो मैंने उसे ठुकरा दिया। यह मेरे भाग्य का सबसे कुटिल परिहास था।

मैं फिर बाबा जी के पास पहुँची और फूट फूट कर रोई। मुझे रोते देख बच्ची भी रोने लगी। बाबा जी ने मुझे चुप होने का आदेश दिया और आज्ञा दी कि मैं बच्ची को सुला दूँ। बच्ची के सो जाने पर मुझे बाबा जी ने बहुत उपदेश दिये कि जीवन में कठिनाइयों से विचलित नहीं होना चाहिये।

“बेटी ! आज से तुम्हारे लिये एक नये जीवन का आरम्भ होता है। आज से तुम कठिनाइयों पर मुस्कुराना सीखो। तुम पर अब एक बहुत बड़ा भार आ पड़ा है। पर यह भार ही तुम्हें जीवन में शान्ति देगा। स्त्री तभी शान्ति प्राप्त कर पाती है जब वह माता के कर्त्तव्यों का पालन करती है। यही कारण था कि मैंने तुम्हें अनाथालय भेजा था। अब इस कन्या का भार तुम पर है। पर एक बात कह दूँ। अब अगर किशोर कभी तुम्हें लेने आये तो उसे क्षमा कर देना और वापस चली जाना। स्त्री की बढ़ाई उसकी उदारता में है जाओ ! तैयारी करो। हम बहुत सबेरे ही आश्रम छोड़ देंगे”।

और दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही हमने आश्रम छोड़ दिया। बाबा जी मुझे तुम्हारे पिता के पास लाये। तुम्हारे माता पिता भी बाबा जी के शिष्य थे। तुम्हारे पिता को बाबा जी ने आज्ञा दी कि मुझे तथा मेरी पुत्री को वे अपने परिवार में आश्रय दें। बहुत प्रकार से आश्वासन दे कर बाबा जी चले गये। तुम्हारी माता ने जब मुझसे मेरी पुत्री का नाम पूछा तो मुझे स्मरण हुआ कि मैं उसका नाम नहीं जानती। पर वह मेरे जीवन की आशा थी। अतः मैंने उसका नाम आशा ही बताया।

यह है आशा की कहानी। मेरी कहानी। आशा का तुमसे विवाह हो इसके पूर्व यह सब तुम्हें बता देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। ईश्वर तुम दोनों को सुखी रखे यही अब मेरी कामना है।

मौसी चुप हो गयी। आशा मौसी से लिपट गई और बोली, माँ! तब भी तो तुम मेरी माँ हो।”

“हाँ बेटी ! मैं तेरी माँ हूँ हमेशा थी। अब भी हूँ !”

x x x x x x

हमारा विवाह हो गया। विवाह के बाद से ही मौसी की हालत गिरने लगी और अंत में तो उनकी यह दशा हो गई कि दिन में कई कई बार वे बेहोश होने लगीं। जब डाक्टरों ने जवाब दे दिया तो हम सब बहुत चिन्तित हुए। बेहोशी में मौसी ‘किशोर’ कह कर पुकारती थीं। कुछ दिनों से तो उन्होंने और कोई शब्द ही नहीं उच्चारण किया था। आशा ने मुझसे रो कर हठ किया कि जैसे भी हो मैं किशोर की खोज कर लाऊँ। कहाँ खोजूँ कुछ समझ नहीं पा रहा था। और मौसी के प्राण जैसे अपने किशोर की प्रतीक्षा में ही अटक रहे थे। उन्हें आशा थी कि उनका किशोर अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करेगा। वह एक दिन अवश्य लौटेगा।

अन्त में मैंने सब समाचार पत्रों में किशोर का नाम छपवाया। मेरा प्रयास असफल नहीं हुआ।

कल प्रातः जब रात भर मौसी के पास बैठ कर मैं बाहर आया तो नौकर ने समाचार दिया कि बाहर कोई सज्जन मुझसे मिलना चाहते हैं। पिता जी ने मुझे अपने कमरे में बुलाया है। कमरे में पहुँच कर देखा तो एक सज्जन पिता जी के पास बैठे हैं।

“रंजीत ! यह तुम्हारी मौसी के रिश्तेदार हैं और उनसे मिलने आये हैं। इन्हें भी मौसी के अंतिम दर्शन करा दो।”

और मैंने देखा उस आदमी को जिसकी मौसी ने जीवन भर पूजा की। जिसने मौसी को घर छोड़ कर साधुनी बनाया पर जिसने कभी भी उसे उपालम्भ नहीं दिया। और आज अंतिम समय भी उसे देखने की आशा में मौसी के प्राण अटक रहे हैं।

मौसी के कमरे में पहुँच कर किशोर कुछ समय तक उनके पलंग के पास खड़े रहे। फिर उनके सिरहाने बैठ कर वे चुपचाप उनका मुँह निहारने लगे। मैं कमरे से बाहर चला आया। बाहर आशा मिली। उसे मैंने कुछ घण्टों पहले आराम करने को भेज दिया था। मैंने उससे फिर उसके पिता के आने का समाचार सुनाया। वह भागी हुई कमरे की ओर गई, परन्तु द्वार पर से ही लौट आई। उसका निष्ठुर पिता मौसी के बिम्बर में मुँह छिपाये सिसक रहा था।

आशा के पिता को आये एक दिन हो गया है। मौसी को एक बार होश आया था। अपने किशोर को देख कर वे मुस्कराई थीं। डाक्टर कहते हैं कि उनका हृदय इतना निर्बल है कि वे किस प्रकार जीवित हैं यही आश्चर्य है। मैं भी सोचता हूँ कि अब कौन सी आशा उन्हें जीवित रखे है।



वनमाला

लेखिका—कुमारी गायत्री सक्सेना, एम० ए०

षोडशी वनमाला उछलती कूदती हिरणी की सी बड़ी बड़ी भोली आँखों से पर्वत की घाटियों तथा चोटियों से, निकट से जाती सड़क पर मोटरों व लारियों को कौतूहल से देखा करती थी। उसकी दिनचर्या ही यही थी—उछलना, कूदना, खेलना, सड़क से जाती मोटरों को देखना और घाटियों में विलीन हो जाना। कभी कभी घूमती हुई अंग्रेज युवतियाँ आ जाती थीं और उसके दिव्य सौन्दर्य को देख मुग्ध हो, उसकी ओर कुछ क्षण देखतीं और टूटी टूटी भाषा में बोलने का प्रयत्न करतीं, परन्तु वनमाला उनके अस्फुट शब्दों को कुछ न समझ बरबस मुस्करा उठती तथा कौतूहल दायिनो सी बिखेर कर घाटियों में नीचे उतर पड़ती थी।

एकाकिनी निर्भरिणी सी वनमाला का एक ही साथी था—कैप्टिन प्रकाश, जो कभी कभी मोटर में उसी सड़क से किसी शहर को जाता था और जाते समय बीच में एक घन्टा रुक कर उस सरला से, अस्तंगत भानु को देखते हुए भूक सम्भाषण किया करता था। वनमाला आश्चर्य से कभी उसके स्वस्थ पुष्ट मांसल देह को देखती, कभी कन्धे पर पड़ी बन्दूक को और कभी उसकी सुन्दर मोटर को, जो अपनी मृदुल ध्वनि में क्षण भर के लिए उसे उन्मत्त कर चली जाती। युवक अतृप्त नेत्रों से दूर से उस अप्सरा की क्रीड़ाओं को देखता परन्तु दिव्य सौन्दर्य के निकट जाने का उसे कभी साहस नहीं होता था। यही उसका मौन संभाषण था।

अपनी नित्य की दिन चर्या के अनुसार वनमाला झील के किनारे बैठी थी। पर्वत की घाटियों में छिपी हुई चक्करदार सड़क का एक छोटा सा अंश उसके सम्मुख था। उस अंश पर मोटरें कुछ पल के लिए चमकती व झलक दिखाती चली जा रही थीं। बन्दूक के एक फायर ने उसकी विचार शृंखला तोड़ दी। वह चौंक कर इधर उधर देखने लगी और शीघ्र ही पर्वत पर चढ़ गई। वही चिरपरिचित युवक खड़ा बन्दूक संभाल रहा था। मौन संभाषण टूट गया। “यह आवाज़ कहां से आई थी?”

“इस बन्दूक से” प्रकाश उस मृदुला के कौतूहल को देख रहा था।

“हां ऐसी ध्वनि मैं पहले भी सुन चुकी हूँ” वनमाला लापरवाही से बोली।

“अच्छा ! कब ?”

“फौज़ के लोग ऐसे ही बन्दूक चलाते हैं।”

“मैं भी तो फौजी हूँ।”

“मैं जानती हूँ।”

“कैसे ?”

“आपकी वर्दी से।”

वनमाला मृग शाविका सी ओभल हो गयी और प्रकाश भी असीम प्रसन्नता से गुनगुनाता हुआ लौट गया ।

×

×

मिलना जुलना क्रमशः बढ़ता गया और मित्रता घनिष्ठता में परिणत हो गई । प्रकाश को उसका सारल्य तथा उसकी कुशाग्र बुद्धि बहुत प्रिय लगी । परन्तु चाहने पर भी उस अप्सरा के हृदय की थाह न ले सका । वह भोली हिरणी सी आती और उछलती कूदती भाग जाती । प्रकाश को कभी अवसर ही न मिलता कि कुछ अपने हृदय का परिचय दे । भावों के उठते तूफान को निरन्तर दबाते दबाते दो महीने बीत गए पर प्रकाश उसके सम्मुख कभी दिल न खोल सका ।

भावां को साकार होते देर न लगी । युवक प्रेमा अपने अभिनय के चातुर्य से शीघ्र ही सफल हो गया ।

वनमाला अपने भोले पन में कुछ समझ भी न पाई और बात बहुत कुछ समाप्त हो गई । एक दिन-प्रकाश के प्रश्नों को वह उत्सुकता से सुनती जा रही थी । पर एक प्रश्न ऐसा आ गया जिस पर वह स्वीकृत उठी ।

“वनमाला ! घूमने चलोगी ?”

“यह भी कोई नई बात है ? मैं मरदा ही घूमती रहती हूँ ।”

“पर-मोटर में तो नहीं ?”

“मोटर में भी । मेरे पास बहुत सी मोटरें हैं ।”

“अच्छा दिम्बाओ ?”

“यहाँ थोड़े ही हैं ?”

“और-कहाँ ?”

“तुम्हारे जैसे बहुत से मनुष्य यहाँ आते हैं । उनके संग जाती हूँ घूमने ।” प्रकाश ईर्ष्या से भर उठा—“कौन कौन आता है ?”

“तुम्हें मैं क्यों बताऊँ ?” वनमाला ने लापरवाही से मुख पर पड़ी लट को पीछे करते कहा ।

उसके तर्क पर प्रकाश मिन्न उठा । फिर भी वह हँस पड़ा

“न सही । मेरे घर चलोगी ?”

“नहीं, बाबा क्रोध करेंगे ।”

“अच्छा । यदि बाबा कह दें तो—?” आशा से प्रकाश कह उठा ।

“तो चलूंगी-अच्छा पहले बताओ तुम्हारे पास है क्या क्या ?”

“बहुत बड़ा मकान, नौकर, बाग, दो मोटर, सुन्दर सुन्दर कपड़े.....”

“जैसे अंग्रेज लड़कियाँ पहनती हैं ?”

“हां हां वैसे ही । चलोगी न ?”

“नहीं । मुझे तुमसे डर लगता है । कितनी ज़ार मे हँसते हो ? मैं चौंक पड़ती हूँ ।”

“अगर मैं धीरे से हँसा करूँ, तुम्हें चौंकाया न करूँ तो ?”

“तब ठीक है। पर बाबा जाने ही नहीं देंगे।” वनमाला बहाना खोज रही थी। पर उसे क्या पता था कि वह बहेलियर के जाल में फँस चुकी है, उसके स्वतंत्रता के परो में उसके ऐश्वर्य का लाशा चिपक चुका है।

प्रकाश खड़ा हो गया। “चलो बाबा जी से पूछ लें।” और वनमाला बिना कुछ प्रतिवाद किए पीछे पीछे चल पड़ी। उमे विश्वास था कि बाबा उसे जाने न देंगे पर उसे आश्चर्य हुआ जब बाबा ने आँसू भरे नेत्रों से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—“जा बेटी जा। तेरा जीवन सुखी हो।”

“बाबा, आप रोते क्यों हैं? मैं नहीं जाऊँगी।”

“न, बेटी हठ अच्छी नहीं। एक न एक दिन तो जाना ही है।”

“मैं तीन दिन बाद आउँगा। मुझे दवा देने नदी पार जाना है न? नन्दू बीमार है?”

वनमाला त्रस्त मूगी सी बाबा की अप्रसन्नता के भय से चुपचाप प्रकाश की मोटर पर चढ़ गई।

×

×

×

नए विशाल बंगले में वनमाला को आए तीन महीने बीत गए पर बाबा जी के तीन दिन न समाप्त हुए।

विशाल कोठी, चारों ओर उपवन, पहनने के असंख्य वस्त्र, अनगिनती दासियाँ, पर वनमाला सदा मुरझाई रहती। उमे याद आता अपना पहाड़ियों पर घूमना, कौतूहल में मोटर देखना, खिलखिलाना और भाग जाना। वहाँ का नियंत्रित व नियमित जीवन उसे भार हो उठा। प्रकाश से उसे डर ही लगता रहता था। पथराई आँखों में वह अपने कमरे की खिड़की से देखती कि मोटर पर प्रकाश जा रहा है। एक शून्य निश्वास लेती और सोचती कभी वह भी दिन था जब वह उससे जी भर कर बात कर लेने को उत्सुक था, पर आज उसे दो बात भी करने का अवकाश नहीं। न मालूम कितनी देर तक वह ऐसी ही खड़ी रह जाती जब तक दासी लैला की पुकार उसके कानों में नहीं आती।

लैला की पुकार से वह सहम जाती थी। उमं लगता कि उसका कथन “मालकिन! आज क्या भोजन बनेगा?” उसका उपहास किया करता है। वह चुपचाप उसकी ओर देखती ही रह जाती। कभी मंज़ पर क्लम दवात को उठाती सूखी स्याही को कागज़ पर रगड़ देती कभी टेलीफोन देखती और कभी फूलदान के अद्भुतविले पुष्प, लैला कहती—

“मालकिन कुछ इच्छा हुआ करे तो घंटो बजा कर बुला कर कह दिया करिए या टेलीफोन ही कर दिया करिए। बड़ी मालकिन तो सदा कुछ न कुछ जो खाने की इच्छा होती थी, कह दिया करती थीं।” पर लैला की बातें उसे प्रसन्न न कर पातीं। ‘बड़ी मालकिन’ बड़ी मालकिन सुनते सुनते वह ऊब गई थी। उसे इस शब्द से ही डर लगता। उसे प्रतीत होता कि बड़ी मालकिन की छाया अब भी वहाँ घूमती रहती है। दूसरे कमरे में अब भी रेशमी गद्दे व साटन के तकियों से युक्त पलङ्ग बिछा था। वस्त्रों से सुसज्जित बड़ी बड़ी अलमारियाँ रखी थीं। अलंकृत उपकरणों से परिपूर्ण ड्रेसिंग टेबिल रखी थी। पर उमे कुछ भी छूते

डर लगता। कभी कभी सोते सोते उसे लगता कि उसके कमरे में कोई घूम रहा है। भय से सिहर उठती पर नेत्र खोलने पर उसे प्रकाश भी न मिलता जिससे कुछ कह सके।

वन पुष्प की अर्द्धखिली कली मुरझा रही थी। मधुमास के सौरभ को अपनाने वाला भी कोई न था।

×

×

म्लानमना वनमाला अपने निजो कमरे में बैठी सायं काल की धूमिल प्रभा में पुस्तक से मन बहलाने का निष्फल प्रयत्न कर रही थी कि लैला ने आकर सूचना दी कि कैप्टिन विनोद एक आवश्यक कार्यवश उससे मिलना चाहते हैं। अनिच्छा से उनको डाइंग रूम में लाने का आदेश देकर वह वहां में उठकर डाइंग रूम में ही चली गई। भूलती हुई स्प्रिंगदार कुर्सी पर बैठ गई पर विचार धारा न टूटी “आखिर मुझसे मिलने का उद्देश्य ? क्या प्रकाश किसी आपत्ति में पड़ गया है ?” परन्तु तभी प्रवाह टूट गया। सम्मुख विनोद ग्यड़ा प्रश्न कर रहा था : -

“प्रकाश क्या यहाँ नहीं है ?”

“नहीं। एक सप्ताह से बाहर गए हुए हैं।”

“पर इस समय तो उसका यहा होना बहुत आवश्यक था।”

“क्यों ? क्या कोई विशेष घटना हुई है ?”

“जी हाँ। नदी में हमारा एक जहाज आंधी से टूट कर डूब गया था। बहुत प्रयत्न करने के बाद उसे बाहर निकाला गया है। आश्चर्य यह है कि उसके सबसे नीचे के भाग में एक सन्दूक में औरत की सी आकृति का एक मांस पिंड है जो आभूषणादि से प्रकाश की स्वर्गीय पत्नी की आकृति में समानता रखता है।”

“परन्तु मैंने सुना था कि उनकी मृत्यु हार्ट फेल से हुई थी।”

“कुछ मालूम नहीं। मिट्री मैजिस्ट्रेट इस घटना की छानबीन कर रहा है। कदाचित यहा भी —”

वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि हरिशंकर ने प्रकाश को पुकारा।

“यही मैजिस्ट्रेट साहब हैं। आप यदि न मिलना चाहें तो जा सकती हैं मैं बात कर लूंगा।”

“नहीं, आन दीजिए ” वनमाला वैसी ही बैठी रही।

हरिशंकर ने आश्चर्य से पूछा — “प्रकाश यहाँ कब से नहीं है ?”

“एक सप्ताह से।” विनोद ने उत्तर दिया।

“आपको यहाँ आए कितना समय व्यतीत हुआ ?” हरिशंकर ने वनमाला से पूछा।

“तीन महीने।”

“यहा आने पर आपको सबसे आत्मीय कौन मिला ?”

“नौकरानी लैला”

“आप यदि अनुमति दें तो उससे कुछ बात कर लें।”

“हाँ हाँ बहुत शौक से। मैं उसे अभी बुलाए देती हूँ।” कह कर वनमाला ने घंटी बजाई।

हरिशंकर ने नख से शिख तक लैला को भलीभाँति देख कर कहा-- “अच्छा लैला तुम्हारी बड़ी मालकिन तुम्हें बहुत अधिक चाहती थीं?”

“हाँ वे मुझे बहन के समान प्यार करती थीं?”

“अन्य नौकरों के प्रति उनका कैसा व्यवहार था?”

“वे सब के ही प्रति बहुत दयालु थीं।”

“क्या वे मिलन मार थीं?”

“जी हाँ, उनके पास अक्सर ही लोग मिलने आया करते थे।”

“क्या वे बहुत सर्व प्रिय थीं?”

जी आपका अनुमान सत्य है।”

“कभी तुमने उनको किसी के साथ भगड़ा होते तो नहीं देखा?”

“नहीं, मैंने तो बाबू जी के साथ भी कभी ज़ोर से बोलते नहीं सुना।”

“क्या तुम्हें ऐसे किसी व्यक्ति पर सन्देह है जो उनकी हत्या कर सकता है?”

“जी नहीं, वे देवी थीं, सब उनकी प्रशंसा करते थे। उनमें किसी को ईर्ष्या नहीं थी। इस लिए उनकी हत्या किसी ने नहीं की।”

“वे पहले से बीमार तो नहीं थीं?”

“हाँ, वे कहा तो करती थीं कि मेरी तबियत अनमनी रहती है।”

“क्या वे किसी डाक्टर का इलाज कर रही थीं?”

“नहीं।”

“आत्महत्या की तो सम्भावना नहीं है?”

“आत्महत्या की तो वे कायरता कहा करती थीं।”

हरिशंकर लैला के उत्तरों में किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका। लैला ने कमरे की एक एक वस्तु दिखाई। वैसा ही पलंग बिछा था। मंज़र पर किताब व पैन्सिल रखी थी। उस दिन की पहनी साड़ी सैसी ही टंगी थी। किसी भी वस्तु से रहस्य का उद्घाटन न हो सका।

अन्त में बड़ी नम्रता से हरिशंकर ने बिदा मागी और कष्ट के लिए क्षमा। जाने के लिए कदम बढ़ाया हो था कि प्रकाश की आवाज़ ने रोक दिया।

“अरे शंकर! कुछ पता चला? मैं अभी अभी वहीं से आ रहा हूँ चिन्ह तो वही है, पर वहाँ पहुँची कैसे? मुझमें तो कह कर गई कि भाई के पास जा रही हूँ मैं स्वयं गाड़ी पर बिठा कर आया। कई दिन बाद जब लेने गया तो भाई ने कहा कि वह तो यहाँ आई ही नहीं। तब से ही खोज बिन कर रहा हूँ। उसके जाने के एक महीने बाद ही इस नदी में एक लाश मिली थी। याद है न? वही शकल थी और वही साड़ी। अब यह दूसरी लाश मिली वह भी जहाज़ के सबसे नीचे के भाग में।”

“कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा अब कल मिलेंगे।”

हरिशंकर और विनोद चले गए। प्रकाश ज़ोर से अट्टहास कर उठा। भयभीत सी वन-

माला अपने कमरे में आ गई। प्रकाश की क्रूर पैशाचिक हँसी से वह सिर में पैर तक काँप गई।

×

×

कमरे में आकर वनमाला शय्या पर लेट गई। घड़ी दस बजा रही थी, और उसकी टिक टिक उसके कानों को बेध रही थी। उठकर घड़ी बन्द कर दी पर फिर भी उसकी व्याकुलता कम न हुई। उसकी आँखों में नींद न थी। वह वहीं से प्लेटों व चम्मच की आवाज़ से अनुमान लगा रही थी कि प्रकाश खाना खा रहा है। उसके भारी भारी बूट की कबो आवाज़ आती और फिर कर्कश गुनगुनाहट में किसी सिनेमा के अश्लील गाने की पंक्ति। वह घृणा से भर उठी “किस पशु को मैं मानव समझ बैठी थी।”

प्रकाश के विशाल बोझिल खुरखुरे हाथों के स्पर्श ने उसे चौंका दिया। वह उठ बैठी। एक मत्ताह बाद उसको पाकर भी वह प्रसन्न न हुई।

‘अभी तक जगी ही हो ? ग्यारह बजने वाले हैं।’

वनमाला चुप थी।

“क्या सोच रही हो ?” प्रकाश ने उसकी सुकुमार देह को झकझोर दिया।

“बड़ीमालकिन के बारे में। मुना है वे देवी थीं...वनमाला ने सूखे निश्वास के साथ कहा।

“देवी नहीं, दानवी कहो”

“लैला कह रही थी वे बड़ी हँसमुख दयालु व मिलनसार थीं। फिर दानवी कैसी ? दानवी तो मैं ही हूँ किसी को भी प्रसन्न न कर पाई।”

नहीं माला। वह ऊपर में जितनी अच्छी थी अन्दर से उतनी ही कपटी। सबसे बुरी बात जो मुझे लगती थी, वह यह, कि वह उस व्यक्ति से मिला करती थी जिससे मुझे घोर घृणा थी। सामुद्रिक मेना में रहने के कारण मैं अधिकतर यहां रहता नहीं था और वह उसके साथ आमोद प्रमोद करती थी।”

“पर लैला इसको क्यों न जान सकी ?”

“वह कैसे जानती ? उसके कमरे का एक द्वार बाहर की ओर भी खुलता था। इसी द्वार से वह उसको अन्दर बुला कर मिला करती थी, वह भी अधिक रात बीतने पर”

“आपको कैसे मालूम हुआ ?”

“दो बार ऐसा हुआ कि अचानक मैं यहां आया। सूचना किसी के भी पास नहीं थी कि मैं आने वाला हूँ। बस मैंने देखा कि वह कमरे में बैठी उसके साथ बातचीत कर रही है। मैंने उसे चेतावनी दी, समझाया कि वह कुत्सित पुरुष है उसके साथ मिलना जुलना भी अच्छा नहीं है। पर उसने नहीं माना। इसी का उसे परिणाम भोगना पड़ा।”

“कैसे ?”

“ऐसा ही एक बार फिर हुआ। मैं घर आया। सुपमा नहीं थी। मैं लैला से पूछने ही वाला था कि वह स्वयं पृच्छ बैठी—“मालकिन भाई के पास गई हैं आपको मिली नहीं ?” उममे तो मैंने कह दिया —“हाँ मिली थीं मैं गाड़ी में बिठा आया ” पर आश्चर्य अवश्य

हुआ कि रास्ता तो एक है मिली क्या नहीं। स्टेशन तक मैं फिर आया पर उसका पता न था। सोच लिया कि गई होगी, वैसे ही दिल बहलाने के लिए मैं नदी के किनारे अपने जहाज़ की ओर जा रहा था। हाँ—उसके कमरे में मैं स्टेशन से लौट कर गया कि शायद कुछ लिख कर छोड़ गई हो क्योंकि मैं अपने आने की सूचना तार से दे चुका था। कमरे में एक पत्र मेज़ पर खुला रक्खा था जिसमें उसी व्यक्ति के १ बजे वाले जहाज़ से आने की बात थी। मैं समझ गया कि उसे मेरा तार नहीं मिला और वह उसी में मिलने गई होगी या उसके साथ शायद कहीं बाहर जाकर दो चार दिन रहने का प्रोग्राम होगा। १० बज चुके थे मैंने सोचा कि चली गई होगी। क्रोध व क्रोध से मैं जहाज़ की ओर बढ़ता जा रहा था। नदी के ही किनारे वह बैठी थी पर अकेली। क्रोध व उसकी विश्वास घातकता ने मुझे इतना उद्दीप्त कर दिया कि मैंने उसके मुँह व नाक में कपड़ा ठूस दिया। वह छुटपटा कर मर गई। जहाज़ मेरा अपना था और रात्रि का समय था। लकड़ी के एक सन्दूक में उसे बन्द कर जहाज़ के सबसे नीचे के भाग में, जहाँ बेकार सामान पड़ा रहता है और कोई कभी नहीं जाता, रख आया।”

“अब क्या होगा ? अब तो घटना खुल गई।” वनमाला चिन्तित हो उठी। जहाज़ में छेद होने के कारण तथा सन्दूक में भी पानी आ जाने के कारण शकल पहचानी ही नहीं जाती। प्रमाण तो कोई नहीं है। फिर एक लाश पहले भी मिल चुकी है सबका अब भी विश्वास ही है कि वही सुपमा थी।”

वनमाला प्रकाश की ओर से निश्चिन्त हो गई कि यह इस हत्या में नहीं फँसेगा। पर प्रकाश के प्रति विरक्ति व उपेक्षा कम न हुई।

समय बीतता गया। पर उसके जीवन का मधुमाम न लौटा। ध्वरा कर एक दिन वह घर छोड़ कर उसी अपने पुराने टीले पर आ गई। टिमटिमाते तारे आ गये थे। चक्करदार सड़क पर पर मोटरें आने जाने लगी थीं, रवि रश्मियाँ भील में अरुणिमा बिखेरने लगी थीं, पर उसके जीवन का उल्लास न लौटा।



कहानी का अन्त

लेखक—श्रीयुत देवीशंकर मिश्र “अमर”, एम० एस-सी०

प्रभात एम० ए० की परीक्षा दे कर प्रसन्नतापूर्वक घर लौटा। उसने अपनी सफलता पर उतनी प्रसन्नता न थी जितनी कि इस समाचार से कि उसके मित्र सुधाकर का इसी महीने में विवाह होने जा रहा है। माँ से पूछने पर पता चला कि उसके पिता राधारमणजी सुधाकर के पिता से मिलने गये हैं। वह भी वहाँ जाने के लिये व्याकुल होने लगा। शाम होते ही गले में कुर्ता डाल वह सुधाकर के घर की ओर खाना हुआ। सुधाकर को वह भाई से भी बढ़कर मानता था, दोनों स्कूल में साथ-साथ पढ़ चुके थे और रहे भी थे बड़े प्रेम के साथ।

हाँ ! तो उसे घर तक जाना भी नहीं पड़ा। रास्ते ही में मित्रों से घिरा हुआ सुधाकर मिल गया। टोली पूरी होते देख मित्र वर्ग प्रसन्नता से नाच उठा। बातचीत प्रारम्भ हुई। ध्वर-उधर के प्रश्नोत्तरों के उपरान्त जगदीश ने कहा—

“मगर यार प्रभात ! तुमने यदि तिलक के दिन कोई सुन्दर-सी कविता न सुनाई तो आनन्द न आयेगा।”

जगत ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुये कहा—

“और नहीं तो क्या ! यदि ऐमे अवसर पर भी तुमने कोई बढ़िया रचना न सुनाई तो हम लोग यही समझेंगे कि मित्र-मण्डली में कोई साहित्यिक था ही नहीं। क्यों न गिरीश ?”

“यही तो मैं भी कहता हूँ कि यदि इन्होंने कोई कविता न सुनाई तो बस यही समझ लिया जायगा कि इनका कविता करना न करना दोनों बराबर है।”

प्रभात मुस्कराता रहा। उसे अपने मित्रों की बातचीत में बड़ा आनन्द आ रहा था। प्रभात को यों मौन देख माधव ने कहा—

न कविता सही कांड कहानी ही गढ़ डालना। नाम न मालूम हो तो मैं बतला दूँ।

“नहीं, कहानी नहीं। इनकी कहानी में सिवा राने के और कुछ होता भी है ? हाँ ! नाम बतला दो कविता में बिठला दें तो और भी अच्छा रहेगा”, राजनारायण ने बीच ही में टोक कर कहा—

और यही राय तय भी पायी गयी। अग्लिश ने जेब में डायरी निकाली। माधव ने उस पर लिखना प्रारम्भ किया—

‘लड़की का नाम— ऊषा

उम्र—पन्द्रह वर्ष

स्थान—काशी

पता—३०७ नीची बाग’

माधव के लिखने का दृढ़ देख कर विनोद को हँसी आ गयी, उसने कहा—

“वाह ! कौम, सकुन्त, मिल्कियत वगैरह-वगैरह के बारे में तो कुछ लिखा ही नहीं।”

“क्या यार कचहरी में मुहरिरी करते रहे हो ?” अखिलेश ने पूछा।

और इस पर सब डायरी पर टूट पड़े। पढ़ कर कोई भी अपनी हँसी न रोक सका। प्रभात ने भी डायरी देखी और दूसरे ही क्षण उसका भाव बदल गया। वह गम्भीर हो गया।

“क्या हुआ ?” निरञ्जन ने पूछा।

“कोई कहानी याद आ गयी होगी,” विनोद ने चुटकी ली।

“नहीं जी !” माधव बोला, भाभी का इतना सुन्दर नाम देख अपनी काव्यशक्ति को सफल करने लग गये होंगे।”

प्रभात शान्त रहा। उसे ऐसा लग रहा था मानों उसका दम घुटा जा रहा हो, फिर भी वह अपने को सम्हाले रहा। कागज़ चौपट कर जेब के हवाले किया, फिर कुछ देर बाद चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुये मित्रों से विलम्ब का बहाना कर विदा माँगी और कविता सुनाने का वादा कर घर की ओर चल दिया।

(२)

“अब आप अपनी सम्मति दीजिये राधारमणजी ! मैं देखता हूँ कि जगतनारायण जी बड़े सज्जन हैं; परन्तु उनकी लड़की के विषय में कुछ नहीं जानता। वह लोग आपके पड़ोस में बहुत दिनों तक रह चुके हैं, इससे आप उसके बारे में बहुत कुछ जानते होंगे,” सुधाकर के पिता शशिशेखर जी ने पूछा।

“इस बात पर आप विश्वास रखिये कि ऊषा सी पुत्रवधू पा कर आप फूले न समायेंगे। सुधाकर को भाग्य से ही ऐसी पत्नी मिल रही है। वह बड़ी ही सरला, शीलवती तथा विनीता है। गृहकार्य की दक्षता में वह अपनी माँ में भी दो हाथ आगे है,” प्रभात के पिता ने कहा।

“यदि ऐसी बात है तो मैं आज हा उन्हें शुभ मुहूर्त आदि ठीक करने के लिये लिख देता हूँ। मगर हाँ ! बारात में आपको अवश्य चलना पड़ेगा। इस बार मैं एक भी बहाना न सुनूँगा। जैसे भी हो आपको छुट्टी लेनी ही पड़ेगी। यह न होगा कि आप ऐन मौके पर कह दें कि ‘क्या बताऊँ भाई, नौकरी ही ऐसी है,’ समझ रखियेगा।”

“उँह! आपने भी क्या बेवक्त की शहनाई छेड़! चलूँगा क्यों नहीं। मगर यदि.....”

“अगर मगर कुछ नहीं। समझी आप ही को बनना पड़ेगा। आप बुजुर्ग हैं, अनुभवही हैं, इन्तज़ामकार हैं; यदि आप ने हाथ खींचा तो लड़के की शादी कैसे होगी ? मैं तो यह सोच रहा हूँ कि सब कामों में आप ही को आगे ठेल दूँगा और निश्चिन्तता के साथ बारात के आनन्द उठाऊँगा। होते भी तो बड़े-बूढ़े इसीलिये ही हैं।”

“अच्छा भाई ! यही सही। चलूँगा जरूर चलूँगा। जो-जो कहियेगा, सो-सा करूँगा, बस !” कह कर राधारमण हँसने लगे।

और इसके बाद धीरे-धीरे बातों का विषय बदल गया।

(३)

प्रभात को जबसे इस बात का पता चला कि ऊषा का विवाह सत्य ही सुधाकर के साथ हो गया है, वह अव्यवस्थित-सा रहने लगा। प्रत्येक क्षण उसका हृदय व्यथा तथा नेराश्य के पाटों के बीच पिसा करता। सिवा ऊषा के विषय में कुछ-न-कुछ सोचते रहने के उसे कुछ अच्छा ही न लगता। मित्रों से पीछा छुड़ाने की और कोई तरकीब न देख वह स्वास्थ्य-सुधारने के बहाने कुछ दिनों के लिये गाँव चला गया। सुधाकर के तिलकोत्सव में भी वह उपस्थित न हो सका। ठीक भी था, उसका हृदय यदि सुधाकर को बधाई देने का प्रयत्न भी करता तो कैसे ?

धीरे-धीरे विवाह का भी दिन समीप आने लगा। अपने अन्तर का अनुताप कम करने का अन्य कोई मार्ग न देख उसने अपने विगत जीवन की कहानी लिखनी आरम्भ की— उस जीवन की जिसमें ऊषा का प्रमुख अभिनय था। उसने सुधाकर के विवाह में सम्मिलित न होने का निश्चय-सा कर लिया क्योंकि वह डरता था कि कहीं वह कुछ ऐसा काम न कर बैठे कि 'अर्थ' का अनर्थ हो जाय।

विवाह के लगभग दस-बारह दिन पहले उसे ऊषा का पत्र मिला, जिसमें उसने प्रभात से आने का अनुरोध किया था। प्रभात ने वह पत्र कई बार पढ़ा, उस पर हर तरह से विचार किया और अन्त में ऊषा के आग्रह को न टालने का ही निश्चय कर चलने की तैयारी कर दी। उसने सोचा—

‘यह ठीक है कि आठ-दस वर्षों तक हम और ऊषा साथ-साथ रहे, साथ-साथ खेले-कूदे, तथा साथ-ही साथ पढ़े-लिखे भी; परन्तु इसके यह अर्थ लगाना कि केवल इसी कारण वह मुझे सौंप दी जाय, उचित भी न होगा। माना कि इसमें कोई अड़चन न होती, फिर भी ऐसा करना सर्वथा उचित भी तो न था। और अब ?

‘अब यह मूर्खता कही जायगी, यदि मैं इसके लिये कोई प्रयत्न करूँ। किसी भी वस्तु के लिये हठ करना तो बच्चों का काम है। उन्हें जब कोई चीज़ नहीं मिलती तो वह मचल जाते हैं, हाथ-पैर पटकने लगते हैं, और इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं देते कि जिस वस्तु के लिये वह हठ कर रहे हैं, वह आखिर उन्हें मिल भी सकती है या नहीं। यों कहना अधिक उत्तम होगा कि इतना समझ सकने की शक्ति ही उनमें नहीं होती। जो चीज़ भी उन्हें अच्छी लगी उसे ही वह अपनी समझने लगते हैं। फिर, जिस मनुष्य में यह सब विचार कर सकने की शक्ति है वह क्यों ऐसा करता है ? वह क्यों एक ऐसी बात के लिये, जिसकी कि दवा उसके हाथ से निकल गयी हो, इतना परिश्रम करता है, और क्यों उसके लिये अपना सब कुछ मिटा देने पर तत्पर हो जाता है ? क्या अपनी उन शक्तियों को, जिनका हास वह इतनी निर्दयतापूर्वक करता है, वह संसार के उपकार में नहीं लगा सकता ?

‘मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि कोई भी बात अपनी ओर से ऐसी न होने दूँ जिसके कारण ऊषा या सुधाकर को मेरी ओर से ज़रा भी शंका करने का अवसर मिले।
.....फिर ?

‘फिर चलूँगा, विवाह में प्रसन्नता पूर्वक सम्मिलित होऊँगा, और वहाँ कलूँगा चल कर वास्तविक घटनाओं को देखते हुए अपने जीवन की इस कहानी का अन्त.....।’

सारा आवश्यक सामान एक सूटकेस में रख कर उसने अपनी वह अधूरी कहानी भी साथ ले ली, क्योंकि उसको उसे समाप्त करना था न !

(४)

“आप आ गये ?” ऊषा ने प्रणाम करते हुये कहा ।

“क्यों ?” उसने व्यंग्य समझते हुए भी प्रश्न किया ।

“क्यों क्या ! मैं तो समझतो थी कि आप मुझे बिल्कुल ही भूल गये । न कभी कोई पत्र, न किसी भी तरह का समाचार ।”

और यह शब्द प्रभात के हृदय में शूल सरीखे जाकर चुभ गये । वह कैसे कहता कि, ‘तुम्हें तो मैं एक क्षण के लिये भी नहीं भूल पाता फिर न-मालूम क्यों तुम ऐसा कह कर मुझे व्यथित करती हो ?’ वह अपने भावों को छिपाने का प्रयत्न करता हुआ चाची मे मिलने के बहाने रसोई-घर की ओर चला ।

ऊषा ने उसके हाथ से सूटकेस ले लिया और उसी बाल-मुलभ चपलता के साथ उसके कोट की जेब से मनीबैग भी निकाल लिया, क्योंकि वह जानती थी कि कुझी मनीबैग में रखने की प्रभात की पुरानी आदत है । प्रभात को भी इस बात का ध्यान न रहा कि उसमें उसके जीवन का इतिहास है जो..... ।

वह मुस्कराता हुआ चाची का आशीर्वाद ग्रहण करने के लिये चला और ऊषा ऊपर भाग गयी । अपने कमरे में पहुँचकर उसने सूट-केस खोल डाला । उसे यह जानने की उत्सुकता हो रही थी कि आखिर प्रभात मेरे लिये लाये क्या दाने ।

सहसा उसकी दृष्टि उम कापी पर पड़ी जिस पर लिखा हुआ था—

‘कहानी का अन्त’

उसने उसे उलट-पलट कर देखा—बीच-बीच में कहीं-कहीं पर बनी हुई थी अश्रु-मुक्ताओं की समाधियाँ । उसे कौतूहल हुआ कि लेखक स्वयम् कैसे अपनी कहानी लिखते समय रो सकता है जब तक कि वह उसे स्वयम् अपने ही हृदय के रक्त में न लिखे; परन्तु प्रभात को आखिर किस बात का शोक हो सकता है ?

बस ! यही न समझ पा सकने के कारण वह उक्त कहानी पढ़ने लगी—

‘प्रभात और ऊषा यही उन दोनों के नाम थे । प्रभात ऊषा का बचपन का साथी था और उसे अपने प्राणों से भी अधिक चाहता था । बिना ऊषा के कभी उसका खेल गठा ही नहीं; न-मालूम क्यों वह उससे इतना हिल-मिल गया था—हो सकता है कि प्रकृति के इस नियम के अनुसार कि, “ऊषा की अनुपस्थिति में प्रभात आभारहित हो सूर्य के आतप से तप्त होते हुये दिवस में अपने को खो बैठता है ।”

‘हाँ ! तो प्रभात ने पहले-पहल जब ऊषा को देखा उस समय वह केवल चार वर्ष की नन्ही-सी बालिका थी और वह भी उससे दो-तीन वर्ष से अधिक बड़ा न था ।

‘और उसे उस दिन की घटना भी याद है—

‘वह दालान में बैठो “हँसी-खेल” के पन्ने उलट रहा था। रङ्ग-विङ्गी भाँति-भाँति की तस्वीरें देख अपनी माँ के पास बैठी हुई ऊपा भी उसके पास खिंची चली आयी। कुछ देर तक तो वह चुपचाप खड़ी देखती रही फिर वहीं खटोले पर प्रभात की बगल में बैठ गयी। प्रभात ने उसकी ओर केवल कनखियों में एक बार देख भर लिया, बोला कुछ नहीं—सम्भवतः अपने पास एक ऐसी सुन्दर तथा आकर्षक वस्तु होने के अभिमान के फलस्वरूप। ऊपा अधिक देर चुपचाप न बैठी। उसने भाँति-भाँति के विचित्र प्रश्न प्रभात से करने शुरू किये। वह भी गर्व में फूला अपनी बुद्धि के अनुसार उनके उत्तर देता रहा। उन दोनों की मातायें अपना वार्तालाप बन्द कर बच्चों की सरलतापूर्ण बातचीत का आनन्द लेने लगीं। ऊपा ने कहा—

‘मैं भी बाबूजी से कह कर ऐसी ही किताब मँगाऊँगी”

“ऐसी दूसरी बाज़ार में मिलेगी ही नहीं।”

“क्यों ?” कुछ हतोत्साहित-सी हो ऊपा ने पूछा।

“क्यों क्या ? एक ही तो बनती है।”

“तो मैं यही लेकर भाग जाऊँगी।”

“भाग कैसे जायगी ? मारूँगा नहीं।” प्रभात ने उसेजित हो कहा।

‘अच्छा मारो, भला देखूँ कैसे मारते हो,” ऊपा ने ज़रा ऐंठ कर कहा।

“ले !” कहते हुये प्रभात ने आव देखा न ताव, तड़ से उसके गुलाबी गालों पर अपनी नन्हें नन्हें उँगलियों के चिह्न अंकित कर दिये।

‘ऊपा सहम गयी। गाल सहलाते हुये उसके नेत्र छलछला आये। वह आँखों में असहाय क्रोध का सागर भरे प्रभात की ओर करुणापूर्ण नेत्रों से देखने लगी। प्रभात का बाल-हृदय समवेदना से पिघल गया। जो प्रभाव प्रभात पर ऊपा की हेवड़ी का नहीं पड़ा वह उसके भरे हुये नेत्रों में पड़ा। उसने उठकर अपनी वह पुस्तक ऊपा को देते हुये कहा—

“अच्छा लो ? रो मत, नहीं तो अभी अम्माँ तुम्हें भी मारेंगी और मुझे भी। अब कभी भगड़ा मत करना।”

‘ऊपा ने हाथ बढ़ा कर पुस्तक ले ली और दूसरे ही क्षण उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा दौड़ गयी, चोट जैसे भूल-सी गयी।

‘दोनों की माताएं बालकों के इस प्रेमपूर्ण व्यवहार पर मुग्ध हो गयीं।

‘यहाँ पर यह बतला देना अनावश्यक न होगा कि प्रभात और ऊपा पड़ोसी थे। प्रभात के पिता बरेली में ऐसिस्टेंट कंज़रवेटर ऑफ़ प्रोरेस्ट्स थे और ऊपा के पिता पोस्ट मास्टर हो कर आये थे।

‘इसी प्रकार दिन बीतने लगे और धीरे-धीरे ऊपा तथा प्रभात एक दूसरे के समीप आते गये।

‘एक बात और—

‘बिना प्रभात को खिला लिये ऊपा को जैसे कोई चीज़ पचती ही न थी। वह जैसे ही कोई

खाने की चीज़ पाती, दौड़कर मुँडेर पर आ खड़ी होती और या तो कुछ गुनगुनाने लगती या अपनी पुस्तक का कोई वाक्य दुहराने लगती। प्रभात को बुलाने के लिये यही संकेत था। वह अपनी “पुकार” सुन खिंचा-सा उसके पास चला आता। ऊषा जो कुछ भी लाई होती, हाथ बढ़ा कर उसे दे देती और वह भी प्रसन्न हो वहीं पर खाने लगता। दोनों खाते भी और बातलाते भी। खत्म होने पर ऊषा कहती—

“ठहरो ! अभी और लाई”

“और फिर नीचे भाग जाती, तथा कुछ ही देर में फिर कुछ-न-कुछ ले कर मुँडेर पर दिखलाई पड़ती। प्रभात का भी यही हाल था वह भी कोई अच्छी वस्तु देखता या पाता तो बिना ऊषा को दिखलाये या खिलाये खा-पी न सकता था। इस प्रकार वे दोनों दो शरीर रहते हुए भी मानों एक प्राण थे।

‘एक बार स्कूल से लौटने पर ऊषा ने प्रभात को आधा अमरूद^{*} दिया जो वह बड़े ही यत्न के साथ रूमाल में लपेट कर लायी थी। प्रभात ने उसमें दौँतों के चिह्न देख कर कहा—

“यह तो जूठा है।”

“हाँ !”

“किसका ?”

“मेरा,” ऊषा ने उसी भोलेपन के साथ कहा।

‘प्रभात ने उसके मुख पर तीव्र दृष्टि डाली। ऊषा ने कहा—

“स्कूल में भोला से मोल लिया था, बड़ा मीठा था, इसलिये इतना तुम्हारे लिये बचा लिया।”

‘प्रभात अस्वीकार न कर सका। चुपचाप ले कर खा गया। सचमुच उतना मीठा अमरूद उसने अब तक न खाया था।

‘इसके बाद ?

‘इसके बाद जीवन के न-मालूम किन क्षणों में उसके हृदय में ऊषा को अपनी बना लेने की भावना उठी जो धीरे-धीरे तीव्र ही होती चली गयी; परन्तु परन्तु फिर भी उसने कभी भी ऊषा पर अपने मनोगत भावों को प्रकट नहीं होने दिया। वह डरता था कि ऊषा से सम्बन्ध स्थापित करने की आकांक्षा प्रकट करने पर संसार कहीं उसे उच्छृङ्खल न कहने लगे, और यही आगे चल कर उसके लिये अभिशाप-स्वरूप सिद्ध हुआ।

‘जीवन के साथ परिवर्तन का घना सम्बन्ध है। सुख तथा दुःख अपनी-अपनी पारी बाँध मनुष्य के जीवन में आया-जाया करते हैं। इण्टरमीजियेट पास करने के उपरान्त प्रभात को बी० ए० में नाम लिखाने के लिये लखनऊ जाना पड़ा। चलते समय ऊषा ने उससे पूछा—

“अब कब मिलोगे प्रभात ?”

“शीघ्र ही, इन्हीं दशहरे की छुट्टियों में,” प्रभात ने कहा। वह बेचारा क्या जानता था

उसका 'शीघ्र ही' विधाता की कृपा से कितना लम्बा हो जायगा।

'उसके जाने के लगभग महीने भर बाद ही ऊषा के पिता की बदली हो गई। वह लोग बनारस चले गये। प्रभात को भी यह समाचार मिला, परन्तु वह करता ही क्या? हाँ! उस में और ऊषा में पत्रव्यवहार अवश्य होता रहा।

'इसके बाद प्रभात के जीवन-सूर्य पर केतु का आक्रमण हुआ। कॉलेज से एम० ए० की परीक्षा के उपरान्त घर आने पर पता चला कि उसकी ऊषा का विवाह उसके मित्र सुधाकर के साथ ठीक हो चुका है। वह अव्यवस्थित हो उठा, सोचने लगा—

"ऊषा तो प्रभात का ही अङ्ग है, जिसके बिना प्रभात में प्रकाश नहीं रहता। ऊषा आती है प्रभात के जीवन को स्वर्णिम सौन्दर्य से सजाने, सारी प्रकृति प्रभात के सौभाग्य की सराहना करती हुई आनन्द में विभोर हो नाच उठती है। ऊषा जाती है—प्रभात प्रभात रह ही नहीं जाता उसका स्वरूप ही बदल जाता है। फिर तो आता है धीरे-धीरे मध्याह्न, जिसके जलते हुए प्रचण्ड सूर्य की तप्त ज्वाला में दिखलाई पड़ती है जलती हुई प्रभात की चिता।

"फिर ऊषा के बिना प्रभात का जीवन कहाँ?

"ऊषा से रहित प्रभात में मनोहरता कहाँ?

"ऊषा के चले जाने पर प्रभात में स्थिरता कहाँ, शान्ति कहाँ, और हाँ! फिर उसका अस्तित्व ही कहाँ?"

'इन विचारों ने उसके हृदय को मथ डाला। यद्यपि वह अपनी अवशेष शान्ति को अशान्ति की धक्कती हुई भीषण ज्वाला में भोकना नहीं चाहता था फिर भी परिस्थितियों ने उसे हृदय पर पत्थर रख कर इस विवाह में सम्मिलित होने पर बाध्य किया।

कहानी अधूरी थी। ऊषा की डबडबाई हुई आँखों से समवेदना के दो विन्दु टुलक कर कपोलोपर धीरे-धीरे किमी अस्पष्ट लिपि में उसकी आन्तरिक समवेदना की कथा लिखने लगे। अंचल में उन्हें छिपा उसने चुपचाप सारा सामान फिर यथा-स्थान रख दिया और भारी हृदय ले विस्तरे पर जा कर लेट रही। वह सम्भवतः प्रभात के जीवन की उस अपूर्ण कहानी का अन्त पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी।

इसके बाद से ही ऊषा में एक विचित्र परिवर्तन दिखलाई देने लगा। न उसे भोजन अच्छा लगता और न जल। उसकी स्वाभाविक सरलता तथा प्रसन्नता न-जाने कहाँ अन्तर्हित हो गयी और उसके स्थान पर प्रकट होने लगे मुख पर गम्भीरता, विषाद, आन्तरिक व्यथा तथा किसी गहरी चिन्ता के चिह्न। उसका हँसना-बोलना छूट-सा गया, पता नहीं वह प्रति-क्षण किन भावों के आघात एवं प्रत्याघातों के भूले में भूलती रहती। लोग सोचते—

'घर छूटेगा, द्वार छूटेगा, माता-पिता तथा भाई-बहन छूटेंगे, और छूटेंगी सहेलियाँ, यही विचार उसे व्यथित कर रहे हैं',

और इसी कारण उससे कोई पूछ-ताछ भी न करता। यह भी उसके लिये अच्छा ही था, क्यों कि यदि कोई वास्तविक कारण जानने के लिये हठ करता तो शायद वह भुंभला भी उठती।

प्रभात और ऊषा का सामना दिन में कई बार होता। प्रभात उसे देखकर मुस्करा देता—अपनी पुरुषोचित दृढ़ता के आवरण में अपने आन्तरिक अनुताप को ढके हुये—
और

और ऊषा भी मुस्करा देती।

परन्तु क्या उसी सरलता के साथ, जैसे कि वह उसके आने के दिन हँसी थी ?

नहीं, वरन् कृत्रिम रूप से, जिसमें छिपा रहता मनोवेदना का विषम हास और देखा जा सकता था आन्तरिक अस्थिरता का स्पष्ट प्रतिबिम्ब; क्योंकि वह प्रभात की वास्तविक मानसिक स्थिति से परिचित थी न ? वह अपने भावों को छिपाने का प्रयत्न करती परन्तु असमर्थ रहती। प्रभात यह सब देखते हुए भी धोखा खा जाता। वह भी यही सोचता कि परिजनों का भावी वियोग ही उसकी चिन्ता का कारण बन रहा है, और इसका कारण यह कि उसे कभी स्वप्न में भी यह ध्यान न आ सका कि ऊषा उसकी कहानी पढ़ चुकी है।

उधर प्रभात का मुरझाया-सा मुख-कमल देख ऊषा के हृदय में न-जाने कौन-कौन से विचार उठते तथा वह एकान्त में जा कर अपना हृदय हल्का करने के लिये आकुल हो उठती।

और चली भी जाती। इसमें उस पर कोई प्रतिक्रिन्ध तो था नहीं। समय ही ऐसा था।

×

×

×

आज जब से ऊषा का बड़ा भाई दिनेश आया है उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं। उसके हृदय में न-जाने किस उमङ्ग का उदधि उमड़ा पड़ रहा है। बल बारात आयेगी, विवाह होगा, और वह हो जायगी किसी के हृदय-प्रदेश की अर्धाश्वरी। हो सकता है कि अपने भावी स्वर्णिम संसार की कल्पना कर-कर के ही उसका मन-मयूर आनन्द से मत्त हो नाच रहा हो।

रात को लगभग ग्यारह बजे प्रभात को कार्य से अवकाश मिला। उसने सन्तोष की एक सौंसे ली और खा-पी कर सोने के लिये ऊपर कमरे की ओर चला। जैसे ही वह कमरे के सामने पहुँचा ऊषा अन्दर से निकली। प्रभात ने देखा—

उसका मुख-मण्डल आनन्द की दीप्ति से दमक रहा था। उसे देखते ही वह हँस दी और दूसरी ओर चली गई। प्रभात भी मुस्करा दिया, परन्तु हृदय से नहीं। वह सोचने लगा कि ऊषा, जिसको पा कर अपना छोटा-सा सुखमय संसार बसाने की कल्पना कर रहा था वह कल दूसरे को सौंप दी जायगी। उसका अपना कोई न रह जायगा। उसकी दशा उस समय ठीक उस बन्दी की सी हो रही थी जिसे प्राणदण्ड की आज्ञा सुना दी गयी हो और बाध्य किया गया हो जिसे स्वयं अपने ही हाथों अपनी फाँसी का फन्दा तैयार करने के लिये।

वह जा कर बिस्तरे पर लेट रहा। कुछ क्षणों तक तो बेचैनी से इधर उधर करवटें बदलता रहा, फिर इस बात से अपने को सन्तवना देने का प्रयत्न करते हुए कि—

‘कम से कम उसकी अभिलाषाओं की प्रतिमा—ऊषा तो इस सम्बन्ध से प्रसन्न है’,

दिन भर के परिश्रम से चूर होने के कारण वह सो गया ।

(५)

प्रातः उसकी आँख लगभग ढाई बजे खुली । वह सोचने लगा—

‘आज ऊषा का विवाह है । इसके बाद आठ-दस दिन न-जाने और कौन-कौन से भ्रष्टर लगे रहें । समय मिले, हृदय की भी पता नहीं क्या अवस्था हो । तो फिर “कहानी का अन्त” लिख ही क्यों न डालूँ’.

और यह विचार आते ही वह उठ बैठा, लैम्प जलाई, और सूटकेस खोल कर कापी निकाली । उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने देखा कि कहानी किसी ने पूरी कर दी है । लिपि उसकी पहचानी हुई थी ।

‘ऊषा ने क्या लिखा है ? क्या लिखा है ? उसके हाथ में यह कहानी आखिर पड़ कैसे गयी ? क्या उसने उसके बक्स की तलाशी ली थी ? यदि ऐसा है तो कब पढ़ा ? कब लिखा ?’ आदि प्रश्न उसके मस्तिष्क में एक ही क्षण में उठे और घूम भी गये । उसने कौतूहल के साथ पढ़ना आरम्भ किया—

‘हाँ ! अनभिज्ञ ऊषा को भी समय ने इस बात की सूचना दे दी । उसने विचार किया—

“ठीक तो है, यदि प्रभात ही नहीं रहेगा तो ऊषा अठिलायेंगी किसके बल पर ? प्रभात के अस्तित्वहीन होने पर उसका भी अस्तित्व कहाँ रह जायगा ? तब तो होगी तारों से भरी भयानक काली रात्रि या जलते हुये दिनेश से युक्त नीरस दिवस । प्रभात की हास्य-मयी सरसता के लुप्त होते ही ऊषा का मानो सौभाग्य-सिन्दूर ही पूँछ जायगा । उस समय क्या वह सुधाकर के बल पर शृङ्गार करेगी ? क्या प्रकृति प्रभात की अनुपस्थिति में ऊषा को बधाई देने आवेगी ? क्या बाल-रवि के हँसते हुये मुख-मण्डल के साथ प्राची में हँसती हुई ऊषा को सजाने का कार्य प्रतीची के अञ्जल में छिपता हुआ कलारहित सुधाकर करने का प्रयत्न कर सकेगा ? सम्भवतः नहीं । प्रभात और ऊषा का साथ अटल है युग-युगान्तरों में चला आया है और इसलिये अनिवार्य भी है ।”

‘और इस विचार के आतं ही उसने प्रभात ही के साथ अपने जीवन को ग्रंथित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

‘उसने सुधाकर के पिता को एक पत्र लिखा—

“पितृ-नुल्य चाचा जी ! चरण-कमलों में सादर नमन.

एक हिन्दू बालिका होने के नाते मेरा यह कार्य अत्यन्त धृष्टतापूर्ण तथा अनुपयुक्त ही ही कहा जायगा और मैं ऐसा बरती भी नहीं यदि किसी का जीवन संकट में न देखती । बात यह है कि आपके पुत्र (श्रीयुत सुधाकर जी) के मित्र प्रभात जिनसे सम्भवतः आप परिचित भी हों, मेरे बाल-सखा रह चुके हैं । हम दोनों ने साथ-ही साथ अपने शैशव काल के ग्यारह वर्ष हँसते-खेलते व्यतीत कर दिये हैं । साथ-साथ रहने का कुछ अनिवार्य-सा प्रभाव भी प्रभात पर पड़ा है, जिसके फलस्वरूप वह अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिये

ऊषा की परम आवश्यकता समझने लगे हैं। यदि यह बात कुछ पहले मालूम हो जाती तो आपको कष्ट देने का कोई अवसर ही न आने पाता, परन्तु इसकी सूचना कुछ देर से मिली, और वह भी कल—उनकी डायरी देख कर। विवाह के लिये सारा प्रबन्ध आप भी कर चुके होंगे और यहाँ भी सब ठीक-ठाक हो चुका है। ऐसे समय मैंने यही उचित समझा कि आपकी शरण लूँ, क्यों कि यहाँ सब लोग इस समय यह बात जानते ही अव्यवस्थित हो उठेंगे और उनके करते-धरते कुछ भी न बन पड़ेगा। अधिक क्या लिखूँ परिस्थिति आपके सामने है, और इसका उपाय आप अधिक उत्तमता, गम्भीरता तथा दूरदर्शिता से सोच सकते हैं। मेरी धृष्टता क्षमा कीजियेगा—अपनी ही पुत्री समझ कर।

आपकी आज्ञा की इच्छुक
ऊषा”

‘विलम्ब की सम्भावना ही न रह जाय इस कारण ऊषा ने इस पत्र को अपने ज्येष्ठ भ्राता दिनेश के हाथ तुरन्त ही भिजवाया, जिसे उसने बड़े ही संकोच के साथ सारी परिस्थिति बहुत ही संक्षेप में बतला दी थी।

‘दिनेश दो दिन बाद, अर्थात् बारात आने से केवल एल दिन पहले लौटा। उसने बतलाया—

‘मैं सायंकाल लगभग आठ बजे सुधाकर के यहाँ पहुँचा। मुझे कुछ अव्यवस्थित-सा देख उसने पूछा—

‘कहिये ! कुशल तो है ?’

‘हाँ ! आप लोगों की कृपा है.....। मैं ज़रा चाचा जी से मिलना चाहता हूँ।’

‘आखिर इतनी शीघ्रता का कारण ?’

‘आपको भी मालूम हो जायगा,’ मैंने बनावटी मुस्कराहट चेहरे पर लाते हुए कहा।

‘सुधाकर बिना आगे कुछ कहे-सुने मुझे अपने पिता जी के पास लिवा ले गया। बैठके में आराम से बैठे हुए वह अपने मुँसो को कुछ समझा रहे थे। मैंने आगे बढ़कर पैर छुये। ऐनक को आगे नाक पर खिसकाते हुए उन्होंने पूछा—

‘कहो दिनेश ! कैसे आये ?’

‘एक बहुत ही आवश्यक कार्य के लिये आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ !’

‘ऐसी कौन-सी खास बात है..... ?’ मुस्कराते हुये उन्होंने पूछा, ‘ऐं...?’

‘मैं चुप रहा। वह मेरा तात्पर्य समझ गये। उनका संकेत पाते ही सुधाकर तथा मुँशी दोनों चुपचाप कमरे से बाहर चले गये। मैंने पत्र निकाल कर उनके हाथ में दे दिया। वह उसे पढ़ने लगे और मैं उनके मुख पर के बदलते हुये भावों द्वारा उनके सम्भावित निर्णय को जान लेने का प्रयत्न करने लगा। पत्र पढ़ कर वह गम्भीर हो गये। मुख नीचा कर और आँखें बन्द कर वह इस विचित्र पहेली को सुलझाने का प्रयास-सा करने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने नेत्र खोले और भीतरी द्वार की ओर मुख करके बुलाया—

‘सुधाकर !’

‘आया !’ भीतर से आवज़ आई और दूसरे ही क्षण सुधाकर आ उपस्थित हुआ।

‘ज़रा अपनी माँ को तो बुला लाओ,’ सुधाकर के पिता ने कहा ।

‘वह भीतर चला गया और थोड़ी ही देर में अपनी माँ के साथ लौटा । मैंने उनके भी चरण छुये । चाचा जी ने वह पत्र उन्हें दे दिया और कहा—

‘ज़रा इसे ज़ोर-ज़ोर से पढ़ो तो ।’

‘चाची जी पत्र पढ़ती रहीं । हम सब लोग गम्भीर मुद्रा बनाये बैठे सुनते रहे । पत्र समाप्त होने पर चाचा जी ने पूछा—

‘बोलो ! फिर अब क्या करना चाहिये ?’

‘चाची जी ने सुधाकर की ओर प्रश्नभरी आंखों से देखा । मां के मुख के भावों से उसे साफ़ पता चल गया कि स्त्री-हृदय रखने के कारण वह भी ऊषा तथा प्रभात के विवाह के पक्ष में हैं । उसे बल-सा मिल गया और उसने प्रोत्साहित हो कहा—

‘ऐसी परिस्थिति में मैं ऊषा से विवाह करने के लिये कदापि तय्यार नहीं और साथ-ही साथ इस बात का भी ध्यान रखूंगा कि यदि उसका विवाह हो तो प्रभात ही के साथ ।’

‘परन्तु बारात का सारा प्रबन्ध हो चुका है । निमन्त्रित लोग भी आ चुके हैं । नरसों बारात जायगी । ऐसे समय एक दम से ऐसा करना भी कैसे सम्भव है ?’ कुछ सोच कर सुधाकर के पिता ने शङ्का प्रकट की ।

‘तो क्या प्रभात को आप अपनाही पुत्र नहीं समझते रहे हैं ? और फिर इसकी आवश्यकता ही क्या कि लोगों से इस बात की चर्चा की जाय ? ऐन मौके पर मेरी जगह प्रभात मण्डप के नीचे भेज दिया जायगा ।’

‘और इसका उत्तर वह कुछ न दे सके ।

‘चाचीजी ने ज़ोर दे कर कहा—

‘सुधाकर ठीक कहता है । ऊषा का विवाह यदि प्रभात से न होगा तो दोनों का ही जीवन नष्ट हो जायगा और साथ ही सुधाकर का भी जीवन सुखमय न हो सकेगा ।

‘अच्छा ! फिर जब उसने मेरा सहारा लिया है तो मैं भी उसका जीवन सुखमय बनाने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा । जाओ, दिनेश को खिलाओ-पिलाओ जा कर, बेचारा यात्रा की थकावट से चूर होगा । मैं कल सुबह ही राधारमणजी से मिल कर उन्हें यह सम्बन्ध स्वीकार करने पर बाध्य करूँगा ।’

‘यह सुन मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही । चाचा जी को भी अपनी ओर पा कर मुझे अपनी सफलता का पूर्ण रूप से विश्वास हो गया । प्रसन्नता के मारे मुझे कुछ खाया-पिया भी न गया और सुधाकर की सराहना करता हुआ मैं सो गया ।

‘दूसरे दिन — यानी कल सुबह ही तो — चाचा जी, सुधाकर तथा मैं, तीनों प्रातः सात ही बजे के लगभग प्रभात के यहाँ जा पहुँचे । उसके पिता राधारमण जी ने हंसते हुये हम लोगों का स्वागत किया और पूछा—

‘कहिये ! यह फौज-की-फौज कौन सा किला सर करने के लिये निकली है ?’

‘अभी मालूम हो जायगा’, चाचा जी ने मुस्कराते हुये कहा और बातचीत आरम्भ हुई। मुख्य विषय पर आते ही राधारमण जी सोच-विचार में पड़ गये। हो सकता है कि सुधाकर का विचार करने लगे हों, परन्तु जब सुधाकर के पिता तथा स्वयम् सुधाकर ने जोर दिया तो वह समझी बनने के लिये राजी हो गये। उनसे आवश्यक प्रबन्ध करने को कह कर हम लोग प्रसन्नता पूर्वक लौटे। चाचा जी ने कहा—

‘आज्रो दिनेश ! इस बात की सूचना जिसे-जिसे भी उचित समझो दे दो जा कर। परसों यथासमय प्रभात की बारात सज कर आयेगी।’

“परन्तु सुधाकर न माना, उसने मुझसे न-मालूम क्या-क्या पूछने का का बहाना कर मुझे रोक लिया। दिन भर हम लोग शहर घूमते रहे। शाम को जा कर बड़ी मुश्किल में उसने मुझे छोड़ा — शायद उसकी इच्छा थी कि मैं ऐसे समय पहुँच कर यह संवाद दूँ जब निराशा चारों ओर अपना साम्राज्य जमा चुकी हो। मैं आनन्द से नाचता हुआ रात की गाड़ी से घर की ओर रवाना हुआ।”

‘और इसके बाद ?

‘इसके बाद ऊषा एवम् प्रभात का सम्बन्ध दिनेश की सहायता पा कर अटल हो गया।’

प्रभात को विश्वास नहीं हो रहा था कि उसकी कहानी का अन्त इस प्रकार होगा। वह विचारसागर में डूबने उतराने लगा। कभी सोचता—

‘क्या सत्य ही ऊषा ने ऐसा किया होगा जैसा कि लिखा है या मुझे व्यर्थ ही बेवकूफ बना रही है।’ फिर सोचता—

‘परन्तु नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, इस तरह की बातों में अपने शत्रु में भी परिहास करना लोग नीचता समझते हैं, फिर भला ऊषा ऐसा कैसे कर सकती है ?

उसके मस्तिष्क में पिछले दिनों की सारी बातें घूम गयीं—

‘जब मैं आया था तब ऊषा कितनी प्रसन्न थी, परन्तु घण्टे भर बाद ही उसके सारे भाव बदल गये। वह उदास रहने लगी। हो सकता है कि उसने मेरा सूटकेस खोल डाला हो और मेरी अधूरी कहानी पढ़ ली हो। दो-तीन दिन उसका ऐसा ही हाल रहा। दिनेश भी इस बीच बराबर गायब रहा। उसके आते ही ऊषा प्रसन्न भी हो उठी। कल रात को ही उसके हर्ष का ठिकाना न था। तो क्या सत्य ही कहानी का अन्त इसी प्रकार होगा ? और हाँ ! कल रात को वह बैठी कुछ लिख भी तो रही थी और सम्भवतः कापी रखने दी आई भी थी जब मुझसे उसकी मुठभेड़ हुई थी, परन्तु फिर भी न-जाने क्यों इस सब पर कुछ अधिक विश्वास नहीं होता……।’

और इसी प्रकार की उलझनों में वह पड़ा रहा।

सुबह होते ही बारात की अगवानी के लिये सारा प्रबन्ध होना प्रारम्भ हो गया। ऊषा को स्त्रियों ने उस दिन के कृत्यों में फँस लिया। बेचारे प्रभात को इतना भी अवसर न मिल सका कि वह उस पर एक समालोचनात्मक दृष्टि डाल कर ही कुछ समझ

सकने का प्रयास करता । वह इसे कोरी मृगतृष्णा मान जगतनारायण जी के साथ आवश्यक प्रबन्ध में लग गया । हाँ इतना उसने अवश्य देखा कि दिनेश उसे कार्य में संलग्न देख जब-तब मुस्करा देता परन्तु कहता कुछ भी नहीं । प्रभात भी मौन ही रहा ।

यथासमय बारात आई । सुधाकर का वर की ही तरह स्वागत हुआ और वह भी कुछ न बोला । यह सब देख प्रभात को सारी बातें स्वप्न-सी ही प्रतीत होने लगीं । वह हैरान था । उसकी समझ में कुछ आही न रहा था । दो बातें उसे अवश्य खटकीं, एक तो यह कि सुधाकर कुर्ता-धोती पहने साधारण वेश में था, और दूसरे अगवानी के समय उसके मुख पर उसे (प्रभात को) देखते ही शैतानियम से भरी मुस्कराहट आ गई थी, परन्तु बाकी सब तो ठीक था ।

और इसी प्रकार की उलझनों में पड़ा हुआ वह जनवासे में बारातियों का यथास्थान सारा प्रबन्ध करवाकर घर लौट आया । जगतनारायण तथा दो-तीन और सज्जनों को जनवामें में ही रुक जाना पड़ा ।

×

×

×

“वाह भाई वाह ! मैंने इतनी बारातें देखीं परन्तु ऐसा आज तक कहीं भी न देखा था कि वर महोदय बारात आने के एक सप्ताह पहिले से ही ससुराल आ भमकें और कन्या की ओर से बारात का सारा प्रबन्ध भी करें ।”

प्रभात की समझ में सहसा सुधाकर की बात आ न सकी, वह चकित हो उसकी ओर देखने लगा ।

“हाँ तुम्हीं से कह रहा हूँ, चलो जनवासे, वहाँ से सज-धज कर तब आना । यह खबीसी की सी सूरत ठीक नहीं”, सुधाकर ने फिर कहा ।

“सुधाकर ! तुम पागल तो नहीं हो गये हो ? बिना द्वारचार हुये ही यहाँ कैसे आ गये ?”

“सचमुच मैं ऊषा-सी भाभी पाने की प्रसन्नता में पागल हो उठा हूँ और शायद जनवासे तक पहुँचते-पहुँचते नाचने भी लगूँ ।”

“तुम आखिर कह क्या रहे हो ?”

सुधाकर मुस्करा दिया, बोला—

“अच्छा ! यह बतलाओ कि तुमने अपनी डायरी में अपने और ऊषा के विषय में कुछ लिखा था ?”

“हाँ..... !” कुछ-कुछ समझते हुये प्रभात ने कहा ।

‘बस, उसी का यह सब खेल है ।’

प्रभात के मस्तिष्क में ऊषा की लिखी हुई सारी बातें एक बारगी ही घूम गयीं । वह निस्तब्ध-सा खड़ा रह गया । सुधाकर ने प्रभात का हाथ पकड़ कर झुकते हुये कहा—

“चलो ! अब अधिक सोचने-विचारने का समय नहीं है ।”

प्रभात चुपचाप उसके साथ जनवासे की ओर चल दिया। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों उसका रोम-रोम ऊषा के हाथ बिक चुका हो। जनवासे पहुँचते ही उसे सब लोगों ने घेर लिया। ऊषा के पिता ने कहा—

“बेटा प्रभात ! तू बड़ा पागल है। यह बात तूने मुझे पहले ही क्यों न बतलाई ? वह तो कहो कि भगवान् ने बड़ी दया की जो समय रहते ही सारा काम सम्हाल लिया।”

प्रभात के कृतज्ञता से परिपूरित नेत्र विनीति भाव से भुक गये। वह कुछ न कह सका।



प्रतिरोध

लेखक—श्री मोहन 'साहित्यरत्न' वृन्दावन ।

नगर से बहुत दूर गङ्गा के किनारे एक देव-मन्दिर था । उसके नीचे ही सुर-सरिता कल-कल करती बह रही थी । मन्दिर के तट से टकरा कर गङ्गा की फेनिल लहरें नीरवता में स्वर भर देती थीं । देव-मन्दिर से गङ्गा के तट तक धवल सोपान बने हुए थे । यह मन्दिर राजकीय था और देवता की उपासना स्वयं राजकुमारी करती थीं । वह अपने पिता की एक मात्र सन्तान थीं, अतः पिता की मृत्यु के बाद राजकुमारी ही सिंहासनारूढ हुईं । किन्तु राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व देवता के चरणों में राज्य-को समर्पण कर और महामन्त्री को राज्यसंचालन का उत्तर-दायित्व सौंप कर राजकुमारी साधना के लिये यहाँ आ गईं । योवन की एक महत्वपूर्ण घटना ने उन्हें जीवन से विरक्त कर दिया था ।

रूप और सौंदर्य में असाधारण वह मगध नरेश की पुत्री थीं । बड़े २ भूपाल विवाह करने को उत्सुक थे । किन्तु सभी को निराश होना पड़ा, क्योंकि उसके जीवन में केवल एक व्यक्ति ही आया था, वह था वैशाली का राजकुमार विधुगुप्त । जिसने अपने पुरुषत्व से एक नव-राज्य का निर्माण किया । रूप, विद्या और गुण में वह अद्वितीय था । साहित्य और संगीत का पंडित था और कुशल राजनीतिज्ञ भी । राज्य कार्य से निवृत्त होकर वह अपना समय कविता करने में लगाता अथवा चित्र बनाने में । कविता और चित्रों में जीवन डाल देने का उसे वरदान मिला हुआ था, यह वरदान उसके जीवन के लिये अभिशाप निकला ।

वह दासी पुत्र था । उसकी माँ अन्तःपुर की असीम सुन्दरी परिचायिका थी । उसके पिता ने अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी माँ से गुप्त विवाह कर लिया था । राजकुमार में क्षत्री रक्त था, किन्तु माँ क्षत्राणी नहीं थी, वह एक दासी थी । इसीलिये उसे राज्य से वंचित किया गया । लेकिन राजकुमार अपने व्यक्तित्व और शौर्य से एक पृथक राज्य का निर्माण करने में समर्थ हुआ और वहाँ का शासन तंत्र योग्यता से संचालन करने लगा । मगध नरेश ने एक बार युद्ध क्षेत्र में विधुगुप्त को अपनी विशाल सेना का नेतृत्व प्रदान किया, वह विजयी हुआ । विजयोपलक्ष में सम्राट ने एक विशेष आयोजन राजकुमार के सम्मान में करने का निश्चय किया ।

यथा समय वीरपूजा का राजकीय समारोह हुआ । सभी निमंत्रित व्यक्ति राजभवन में समय से पूर्व एकत्रित हो गये । कुछ देर बाद प्रहरी ने उपस्थिति को सावधान होने की सूचना के साथ मगध नरेश के आगमन की सूचना दी । दुन्तुभी बजी, राजकुमारी के साथ महाराज ने भवन में प्रवेश किया । आगन्तुक-जन सम्राट के सम्मान में खड़े हो गये । मगध नरेश की जय-घोष से सभा भवन प्रतिध्वनित हो उठा । सम्राट ने अभिवादन का उत्तर सुस्करा कर दिया । भवन नीरव हो गया । मगध की सुकुमार नर्तकी-वासवदत्ता-उठी और सम्राट को अभिवादन कर नृत्य में तनमय हो गई ।

राजकुमार विधुगुप्त की दृष्टि राजकुमारी शशि किरण पर पड़ी। नयन से नयन मिले और कुमारी के अरुण कपोल लज्जा से लाल हो उठे, नारी का नारीत्व जाग उठा। उसके पलक गिर पड़े और कुमार भी नृत्य देखने लगे, परन्तु अपनी सुध-बुध खोकर। विधुगुप्त ने राजकुमारी को प्रथम बार ही देखा था। उसने राजकुमारी के अनिद्य सौन्दर्य की गाथायें सुनी थीं, किन्तु उसे शशि किरण के अपूर्व यौवन की अनुभूति नहीं थी। राजकुमार चित्रकार था, कला को प्रेरणा मिली। वह नयनों में कुमारी का चित्र लेकर किसी मधुर स्वप्न में विभोर हो गया, नर्तकी नाच रही थी। लेकिन राजकुमार कलना लोक में उड़ रहा था। नृत्य समाप्त हुआ, सम्राट ने वैशाली के राजकुमार का राजकीय स्वागत करते हुए विजयोपहार से सम्मानित किया। उसके पश्चात् यह आयोजन जय-धोपों के साथ विसर्जित हुआ।

राजकुमारी के अनुरोध पर कुमार को अंतःपुर तक जाना पड़ा। कुमार को सम्मान के साथ राजकीय अतिथि भवन में ठहराने का आदेश हुआ।

कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद कुमारी शशि किरण अपनी अपूर्व ज्योत्सना से अतिथि शाला को आलोकित करती हुई उस भवन में पहुँची, जहाँ कुमार विधुगुप्त नेत्रों में बसी हुई उस रूप शशि का चित्र बनाने में तल्लीन थे।

“किसी के व्यक्तिगत चित्र को बनाने के पूर्व अनुमति की आवश्यकता है” राजकुमारी ने मुस्कराते हुए कहा। “मौन स्वीकृत मिल चुकी है, इतना मुझे विश्वास है” कहते हुए कुमार विधुगुप्त ने चित्र राजकुमारी को समर्पित कर दिया।

“यह मेरा उपहार है, स्वीकार है न ?”

“इसे कौन अस्वीकार कर सकता !

तभी परिचायिका ने दो स्वर्ण थाल लाकर रख दिये। “भोजन कीजिये” अपने सुकुमार हाथों से राजकुमारी ने कलश से सुवासित जल पात्र भरकर में राजकुमार को देते हुए बड़े अनुरोध के साथ कहा।

“अकेले भोजन करने की आदत मुझे नहीं है।”

मुझे आपका आतिथ्य भी तो करना है”

भोजन के पश्चात् राजकुमार ने विदा ली। जब वह भवन के धवल सोपानों से नीचे उतर रहा था, “राजकुमार” किसी ने पुकारा, विधुगुप्त रुका, उसने मुड़ कर देखा, ऊपर राजकुमारी खड़ी थी। उसकी भाव पूर्ण आँखें कुछ कहना चाहती थीं।

“कहिये”

“आपको स्मरण है, पिताजी ने तीर्थ यात्रा के लिये जाते समय आप से क्या कहा था ?”

“जब तक वह न आयें, मैं यहाँ.....”

“बस यही कहना था”

“तो स्वीकार है”

प्रत्युत्तर में राजकुमारी ने हाथ जोड़ दिये। आँखों की कोर में ठहरे हुए आँसु टुलक पड़े। वह वहाँ ठहर न सकी और अपने कक्ष में जाकर कलना के लोक में विचरण करने लगी।

एक वर्ष पश्चात् मगध नरेश ने राजकुमारी का स्वयंवर किया। साम्राज्य के सभी नरेश निमन्त्रित किये गये। केवल वैशाली का राजकुमार ही ऐसा था, जिसे निमन्त्रित नहीं किया गया था, क्योंकि वह दासी का पुत्र था। सम्राट ने उसे स्वयंवर में निमन्त्रित करना राजकीय मर्यादा के प्रतिकूल समझा।

एक वर्ष पूर्व जिसकी पूजा के लिये विशेष आयोजन किया गया, आज वही विधु-गुप्त उपेक्षित था, सम्राट विवश थे। राजकुमारी को इसका ज्ञान भी नहीं था। शरद की रजत-ज्योत्सना में शंख-ध्वनि हुई। स्वयंवर-भवन में यथास्थान आगन्तुक नरेशगण विराजित थे, सम्राट के साथ अपने दोनों कोमल हाथों में वरमाला लेकर सहमी हुई हिरणी की भाँति मंथर गति से राजकुमारी का आगमन हुआ। राजकुमारी ने चतुर्दिग् एक दृष्टि डाली, जैसे उसकी दृष्टि किसी को खोज रही थी।

आगन्तुक नरेश राजकुमारी के सौन्दर्य को देख कर मोहित हो गये। राजकुमार विधु-गुप्त को न पाकर राजकुमारी निराश-सी हो गई। उसकी आँखों के आगे अंधकार छा गया, वह गिरने वाली थी कि सम्राट ने साध लिया। उधर स्वयंवर की सूचना पाकर कुमार विधु-गुप्त स्वयंवर में आये तो थे, किंतु उन्हें द्वार पर रोक लिया गया। कुछ क्षण पश्चात् जैसे ही कुछ चैतन्यता आई सम्राट ने कुमारी से कहा :—“किरण तुम्हें हो क्या गया है।”

मैं कहने में असमर्थ हूँ।”

“अनेक देशों के नरेश बैठे हैं किसी को वरण करो बेटी”

पिता मुझे क्षमा करें। भारतीय नारी केवल एक बार ही पति का वरण करती है। वह पूर्व ही कर चुकी हूँ, और जिनका सम्मान आप ही विगत विजय-समारोह में वर चुके हैं।

“यह राजकीय प्रतिष्ठा का प्रश्न है बेटी”

“और वह मेरे जीवन का, मैं विवश हूँ पिताजी.....मैं..... विवश.....” “वहती हुई राजकुमारी अपने पिता की गोद में सिसक सिसक २ रोने लगी। स्वयंवर स्थगित कर सम्राट राजकुमारी को अन्तःपुर में ले गये। अपनी एकमात्र पुत्री के निश्चय का प्रतिरोध न कर सके।

सम्राट का निर्णय भी अपरिवर्तित रहा। राजसत्ता के नियम और उपनियम उनके पथ में बाधक थे। पुत्री के प्रति स्नेह की असीमता ने उन्हें विवश कर दिया। पुत्री का अविवाहित रहना कौमार्य जीवन व्यतीत करना भी उनके लिये असह्य था। इसी शोक में हृदय की गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई।

राजकुमारी के लिये राजभवन असह्य हो गया। उसका विरक्तजीवन असामयिक पितृ-वियोग से निराश होकर उपासना की ओर झुक गया और राज्य के अतीव वैभव को त्याग

कर अपने साधनामय जीवन को व्यतीत करने के लिये मंदिर में आ गई। कई वर्ष बीत गये उस अनंत पथ पर चलते हुए। वह सब कुछ भूल गई थी

दिन, महीने और वर्ष निरंतर व्यतीत हो रहे थे। एक दिन जब विरागिनी शशि नदी तट पर स्नान कर रही थी कि अकस्मात् उसे किसी के धड़ाम से गिरने की आवाज सुनाई दी। वह सशक्त हो उठी! थोड़ी देर में उसे नदी में बहते हुये एक प्राणी का शरीर दिखाई पड़ा, जिसे यत्न पूर्वक उसने निकलवा लिया और मंदिर के एक कमरे में ले जाकर चिकित्सा की व्यवस्था की। यद्यपि विरही कुमार विधुगुप्त की आकृति में बड़ा अन्तर आ गया था, किन्तु नयनों में बसी हुई कुमार की मूर्ति को आखिर राजकुमारी ने पहचान ही लिया। जैसे ही राजकुमार ने आँखें खोली, राजकुमारी ने पूछा “वयाँ! जीवन भार हो गया था?” मुझे देखो मैं हृदय में तुम्हारी मूर्ति धारण कर भी जीवन का कर्तव्य पालन करती हुई जीवित हूँ, इसलिये नहीं कि मुझे प्राणों का कुछ मोह है।”

“नहीं शशि नहीं, तुम्हें यह अनुभूति कैसे कराऊँ कि मुझको प्राणोत्सर्ग में शान्ति मिलती है, यही नहीं, मुझसे तुम्हारी यह साधना, घुल २ कर कञ्चन जैसे शरीर को नष्ट करने की कठोर तपस्या नहीं देखी गई। मैं एक साध लेकर यहाँ आया था, सम्पर्क न सही, दर्शन के द्वारा ही विरहाग्नि को शांत करूँगा। किन्तु उपासना में रत तुम्हारा जीवन देखकर मेरे मन ने कहा कि “तू इस साधना का प्रतिरोध न कर।” मेरी आत्मा ने इसे स्वीकार किया और इसीलिये तुम्हारे सम्मुख आने की चेष्टा न कर मैंने इस जीवन को समाप्त करने का प्रयास किया। किन्तु तुमने मुझे बचा कर अच्छा नहीं.....।” मुझे जाने दो।”

“राजकुमार तुम्हारा कथन सत्य है। किन्तु एकान्त साधना उतनी असाध्य नहीं है जितनी संसार में रह करके। पर मैं तुम्हें रोकूँगी नहीं। अब मेरी लौकिक वेदना अलौकिक हो गई है। तुम्हारा चिरविछोह मेरी साधना का साधन हो गया है। मैंने उस जीवन से अनुभूति ली है। वह मेरे पथ के लिये पाथेय है। आप जा सकते हैं। किन्तु एक अनुरोध है, मगध का विशाल साम्राज्य अव्यवस्थित पड़ा हुआ है, उसे शासक की आवश्यकता है। यह मेरा कर्तव्य था, उसका दायित्व मैं आपको देती हूँ। आशा है मुझे निराश नहीं करेंगे। यह मेरी प्रथम और अन्तिम विनती है।”

“नहीं शशि, इसका अधिकार सामाजिक रूप से मुझे नहीं है। मैं वहाँ जाऊँगा, मगध राजकुमारी का प्रतिनिधि बन कर नहीं, किन्तु प्रजा का सेवक होकर। यहाँ आकर मैंने तुम्हारी साधना को ठेन पहुँचाई है इसके लिये मुझे क्षमा करना।” राजकुमारी की आँखों से आँसू बह उठे, अंचल से आँसू पोंछते हुये विधुगुप्त से कण्ठ स्वर में अन्तिम-वार केवल यही कहा :— एक नारी का नारीत्व क्षमा के लिए आप से भिदा माँगता है।”

विधुगुप्त खड़ा हो गया। मगध के राज पथ की ओर उसके चरण उठ गये। राजकुमारी तब तक विधुगुप्त को देखती खड़ी रही जब तक उसकी छाया के दर्शन होते रहे, उसकी आँखों में अब आँसू न थे किन्तु सेवा और कर्तव्य के पथ पर राजकुमार को भेजने का हर्ष दृष्टि गोचर हो रहा था।

प्रकृति का प्रकोप

लेखक भीयुत जयशंकर त्रिपाठी, इलाहाबाद ।

राज सभा उद्विग्न थी । प्रजा के मुखिया भूमि-पति के सामने अपनी अपनी अनुमति सुना रहे थे । विषय का प्रतिपादन नरेश को रुच नहीं रहा था । सहसा भुंभुला कर राज्यमुख ने अपने उद्गार प्रकट किये—

‘राजा ईश्वर का अवतार है, उसकी शक्ति अमोघ है । उसके लिये राजतालाब का बँधना कोई बड़ी बात नहीं लेकिन कब ? जब प्रजा मनुष्य हो, वह राजा को वैसा समझती हो; पर आज की पशु-प्रजा तो छिपे-छिपे राजा को गाली देती है ।’

‘ठीक ठीक पृथ्वीपति ! ज़मा हो, मैं इसी विषय का स्पष्टीकरण करना चाहता था । प्रजा पशु नहीं है, हाँ राजा ही देव से मनुष्य हो गया, अतएव वह मनुष्य होकर अपने अधीन मनुष्यों को पशु समझता है ।’

‘मैं ने नहीं समझा कि तुम्हारे कहने का क्या अभिप्राय ?’

‘ज़मा हो पृथ्वीनाथ ! मैं निवेदन कर सकता हूँ ।’

‘तो करो’

‘आज से छः वर्ष पहले २०० बीघे का यह राजसरोवर पहाड़ के किनारे समुद्र जैसा लहराता था । वर्षा में पहाड़ के लुढ़कने वाले जल से वर्ष भर के लिये लबालब भर जाता था । वर्षा और जाड़े की बात तो दूर रही गर्मी में भी उसका जल अथाह था, उसमें उज्ज्वल, लाल और नीले रंग के अगणित कमल उसे नक्षत्र से संयुक्त आकाश की शोभा प्रदान करते थे । उसके वे कमल भगवान रुद्र की पूजा में चढ़ते थे और उसका सुवासित जल रुद्र के वाहन बैल पीकर प्रसन्न होते थे, वे बैल जो किसानों के भूमियज्ञ के ऋत्विज हैं । दोपहर में खेत काटने के बाद, मड़ाई करने के बाद, घर की दीवार उठाने के बाद और आप की बेगार पूरी करने के बाद, सूर्य के प्रचण्ड ताप में तपने वाले किसान पसीने में पिघलते हुये इस राज सरोवर में कूदते थे और अपनी श्रमाग्नि बुझाते थे । केवल भूमिचर ही नहीं, गगन-विहारी भी इसमें कलरव करते थे, उस समय यह अमोघ शक्ति ईश्वर की वस्तु थी । किन्तु.....’

‘हाँ, तो किन्तु

‘जब आज से ६ वर्ष पूर्व श्रीमान् ने अपनी सिंचाई के लिए इसका बाँध तोड़ने की आज्ञा दी थी, उस समय प्रजा काँप उठी अपने जल-शून्य भविष्य को सोचकर । क्यों कि वह जानती थी कि पहले भी राज सरोवर का बाँध टूटा था तो बँधा नहीं था । किसानों की आह से पिघल कर वर्तमान राजर्षि राजानक के गुरु ने इसे अपना हाथ लगाने से बँधवा दिया था । प्रजा ने निषेध किया किन्तु श्रीमान् न माने । बाँध तोड़ा गया और उससे केवल राज-भूमि ही सींची गयी । टूटे हुए बाँध को पुनः ठीक करवा दिया गया वर्षा के प्रथम जल ने उसे

तोड़ दिया और तब से प्रतिवर्ष यही पुनरावृत्ति होती है, अब श्रीमान का खेत सींचने के लिये भी जल नहीं रहता। एक वर्ष के लिए अन्न से राज मंडार पूरा हुआ लेकिन सदैव के लिए प्रजा, पशु और पक्षी जल के लिए तरसते रह गए। प्रजा का स्वार्थ ठुकरा कर अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना क्या साधारण मनुष्यता नहीं है ? क्या यह आपके देवत्व की हीनता नहीं है ?

‘क्या राजसरोवर में जल नहीं रहा तो नदियों में भी जल नहीं रहा और कुएँ भी सूख गये ?’

नहीं पृथ्वीनाथ ! नदियाँ बरसाती हैं अगहन के बाद उनमें जल कहां ? फिर उन नदियों में वे कमल के फूल कहां जो ईश्वर की अर्चना हैं ? कमल के वे पौष्टिक दाने जो चरवाहों के भोजन हैं तथा कन्दमूल जो व्रतनिष्ठों की पारण हैं नदियों में कहां ? उनमें तो शूकरों के आहार मोथा की जड़ों की बहुलता रहती है। हां, कुआं कई हैं, उनसे पानी खींच कर प्रजा पशुओं का पालन करती है लेकिन तब महीपति को उसकी चिन्ता क्यों ?

‘चिन्ता इसलिये कि यदि प्रजा को उसमें सहयोग करना स्वीकार हो तो मैं भी उसमें हाथ लगाऊँ नहीं तो उसे कृषि-भूमि बनाकर उसका उपयोग करूँ।

‘राजन् ! उपयोग तो उसका कृषि-भूमि न बनाने पर ही है। भला पशुओं का चरामाह ही क्या रहेगा, सब से बड़ी बात यह है कि यदि इसकी रूप-रेखा शेष रही तो कभी बँधने का घड़ी-मुहूर्त भी आ सकता है; और प्रजा का सहयोग जो आप कहते हैं तो यदि प्रजा—प्रजापति की सम्मति श्रीमान् को वाँछनीय होती तो इस दशा का दर्शन क्यों होता ?’

राजा की-त्योरियों बदल गई। उसने भिन्नकृत हुए कहा—

‘सब बातें दूर करो, यदि इस समय कोई समाधान हो तो उपस्थित करो।’

दूसरे मुखिया ने कहा—‘राजन् ! गुरु के शिष्य राजर्षि राजानक पास की अटवी सेवन कर रहे हैं यदि उनके पास चला जाय तो कुछ आशा हो सकती है।’

तीसरे ने कहा—आशा ही नहीं, कार्य सिद्ध हो जायगा; किसान उनकी सेवा में पहुँचे थे, उन्होंने कहा है, यदि बाँध न तोड़ा जाय और पानी पशुओं के पीने के लिए रहे तो हम उसे बँधवा देंगे।

पहले ने कहा—‘तो श्रीमान् को उसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, बीता हुआ समय हमें यही उपदेश दे रहा है !’

×

×

×

वर्षा के दिन आने वाले थे। प्रातः का समय था। राजनगर और आसपास के गाँवों के भित्तिने पुरुष फाउड़ा और झुआ लेकर राजसरोवर के बाँध पर डटे थे। सभी शान्त और विशिष्ट दिशा की ओर उन्मुख थे। सहशा कुशकाय, अप्रतिमतेज, दीर्घ जटाओं वाला कमण्डलुधारी एक पुरुष शैल उपत्यका में उतरता हुआ दिखाई पड़ा। सहस्रों नर-नारियों ने जयध्वनि की। उदय होते हुए हेम दीप्ति सूर्य ने उसके मुख-चन्द्र की पूजा की। राज्यश्री उसके चरणों की भेंट हुई। कुन्द और जाती के पुष्प उसके गले की माला हुए। प्रजा ने दो

कतारों के बीच उसे जाने का पथ दिया। वह न तो तेज और न मन्द गति से बाँध के भग्न-स्थल पर पहुँचा। पहुँचने पर क्षणिक मौन रहा।

उपस्थित प्रजा-समूह के सामने उसकी वाणी मुखरित हुई— ‘राजन् ! प्रकृति का यह वैभव किसके उपयोग के लिए सञ्चित किया जायगा, भूमि पति के लिए अथवा भूमि-पुत्रों के लिए। यदि यह साधना भूमि-पुत्रों के लिए हो तो प्रजा हाथ उठाये, ईश्वर की ओर से मैं उसका सहयोग करूँगा।’

प्रजा ने चिल्लाकर कहा— ‘हाँ, आप सहयोग करें ! हम आपके कृतज्ञ हैं, आपकी जय हो ! जय हो !!’ सहस्रों कण्ठों की यह विस्तृत-जयध्वनि आकाश को गुँजा रही थी। सब आनन्द में विह्वल थे। राजा ने उसी बीच मन्द स्वर में कहा— “हाँ, मैं प्रजा का समर्थक हूँ।” शब्द को केवल वे राजर्षि ही सुन सके थे।

प्रस्तावना समाप्त हुई। राजर्षि राजानक ने कार्य आरम्भ किया। फाउड़ा उठाकर जमीन से कुछ ढेले उखाड़े और ले आकर बाँध के मूल पर रख दिया। जन-वर्ग अपने-अपने फावड़े लेकर झुकपड़ा बाँध पर मिट्टी पड़ने लगी। राजर्षि एक किनारे खड़े थे।

वर्षा प्रारम्भ के मेघ-खगड़ आकाश में छाकर छाया कर रहे थे। बाँध बँध रहा था। कुछ समय बीता और रिमझिम बूँदें पड़ने लगीं और इस कमल-भूमि सरोवर से कमल की वास उठने लगी। जन-वर्ग आनन्द में झूम उठा। जैसे-जैसे बाँध बँधता जाता था वृष्टि जोरदार होती जा रही थी। सभी आनन्द में भीग रहे थे तीन घंटे में बाँध बँध गया और अन्तरिक्ष के बादलों ने मूसलाधार वृष्टि आरम्भ की। राजर्षि ने प्रस्थान किया। प्रजा आनन्द की कल्पना में घर लौटी।

जोरों का पानी बरस रहा था। जङ्गल में चरते हुए पशु उछलते हुए गाँवों की ओर लौट रहे थे। मानों उन्हें बाँध बँध जाने की सूचना मिल गयी हो। कुछ अपना सिर झुका कर वृद्धों की छाया में सीधें टेढ़ी किए हुए उन पर गिरती हुई बूँदें रोकते हुए किसी विचार में निमग्न थे, मानों उन्हें राजा की प्रतिष्ठा के प्रति अविश्वास हो रहा था।

सावन का वर्षाकाल था। बाँध को बँधे दो महीने बीत रहे थे, सरोवर लबालब भरा हुआ था। पहाड़ से ढलता हुआ जल सरोवर में आकर तरंगें उठाता हुआ बाँध के ऊपर से नीचे की ओर मोती की मालायें बरसा रहा था किन्तु बाँध अचल और सुव्यवस्थित था।

(२)

बाँध को बँधे पाँच वर्ष बीत रहे थे। प्रजा सुखी थी। पशु प्रसन्न थे जङ्गल की हरी हरी घास चर कर और राजसरोवर का सुवासित जल पीकर गाय-भैंस खूब दूध देती थीं। सबेरे दक्षिण की हवा सरोवर का पराग समेटती हुई गाँवों में पहुँचती थी और अपने स्पर्श से सभी को जागृत कर देती थी। बनजारे गाय-भैंस लेकर जंगल चल देते थे। श्रमिष्ठ किसान उस जल के मज्जन और पान से अपनी थकान मिटाते थे। प्रजा के साथ राजा अपने कर्त्तव्यों की पूर्ण सफलता का अनुभव करता था।

एकाएक शत्रुओं ने राज्य पर आक्रमण किया लेकिन वह छोटा सा राजा प्रजा के सह-योग से विजयी रहा। शत्रु पराजित हुए लेकिन उस विजय-अभिमान ने राजा के कर्तृत्व अभिमान को जगाया। बहुत राज-कोष युद्ध-समस्या की भेंट हो चुका था। राजभंडार का गेहूँ, चावल युद्ध-काल में सैनिकों का आहार हो चुका था। राज्य-कुदृम्ब के डेढ़ सौ व्यक्ति ज्वार-बाजरे और चना-मटर पर अपना जीवन नहीं व्यतीत कर सकते थे। उनके लिए प्रति-दिन पाँच किस्म की तरकारियाँ, घी, दूध और गेहूँ की चपातियाँ आवश्यक थीं। यद्यपि मंत्रि-परिषद् के सामने राज्य की सुव्यवस्था की कोई समस्या नहीं थी, किन्तु अपनी व्यक्तिगत-समस्या में वह बहुत उलझा हुआ था। इस साल वर्षा कम होने से धान कम हुआ, ज्वार-बाजरा की खेती ही ज्यादा थी। कातिक के बाद जब दूसरी फसल बोई गई तो उसमें भी पानी की कमी के कारण चना-मटर की ही अधिक आशा थी। गेहूँ-जौ जोरदार नहीं दिखाई पड़ रहे थे। हाँ, जंगल समीप होने से गाथें और भैंस सभी के घर में दूध की धारा बहा रही थीं।

एक दिन सन्ध्या का समय था, दीपक जल चुके थे, नक्षत्र उदय थे। राज्य-भवन के प्रकोष्ठ में मंत्री के साथ बैठे हुए राजा दीपक के प्रकाश में कुछ विचार-विमर्श कर रहा था कुछ देर की बातचीत के बाद मंत्री ने संयत-स्वर में कहा—

‘पृथ्वीनाथ ! मैं तो यही देखता हूँ कि आप प्रजा की चिन्ता में ही दुर्बल होते जा रहे हैं। आप ने प्रजा की रक्षा के लिये युद्ध-काल में अपना अन्न और धन पानी की तरह बहाया है, फिर क्या कारण है कि अन्न की पैदावार के लिए राज तालाब का बाँध तुड़वाने में आप प्रजा और राजर्षि राजानक के अपराधी बनेंगे। यदि सरोवर से जल लेकर सिंचाई न हुई तो गेहूँ की पैदावार इस साल शून्य है, फिर सरोवर भी तो आपके पूर्वजों की ही कृति है। सिंचाई के बाद सरोवर के जलमार्ग को चूना-गारा और पत्थर से ऐसा मजबूत करा देंगे कि उसके टूटने की सम्भावना दूर हो जायगी।

राजा मौन था, उसका मन आकर्षित करने के लिए मंत्री ने नया प्रसंग उठाया—

‘महाराज ! मैंने एक नयी योजना सोची है, सरोवर के पूर्व की ओर जङ्गल कटवा कर कृषि-योग्य भूमि बनवा ली जाय। कृषि-विशारदों का कहना है कि उसमें गेहूँ की पैदावार अच्छी होगी। सरोवर के जल से उसकी सिंचाई भी हो सकती है।’

राजा मौन ही रहा, कुछ देर सोचने के बाद, उसने कहा—

‘आप राज्य के मंत्री हैं, जो उचित समझें करें किन्तु राजर्षि की प्रतिष्ठा का ध्यान हमें अवश्य रखना है।’

मंत्री विदा हुए, राजा शयन-कक्ष में गये। रात बीती, दूसरा दिन हुआ, योंही दो चार दिन बीते, प्रजा के बीच यह समाचार फैलाया गया कि सरोवर का बाँध टूटने वाला है और पूरबका जङ्गल काटा जायगा।

(३)

एक दिन बांध काटा गया, धीरे धीरे सरोवर का आधा जल रिक्त हो गया, कमल-नाल

दूट गये, कमल-वन की श्री ध्वस्त हो गई। जलमार्ग के मुहाने पर मछलियों का शिकार हुआ। प्रजा सतृष्ण नेत्रों से देखती रही।

एक दिन पूरव का जङ्गल कटने लगा। उसमें रहने वाले खरगोश, हरिण तथा दूसरे जीव, मार आदि पत्नी दूसरी ओर भागने लगे। व्याधों का दल उनका शिकार करने में व्यस्त था, उनके कुत्ते दौड़ रहे थे और वे शोर मचा रहे थे। मनुष्यों की खुशी और जीवों की आह दोनों की गूँज दुरंगे शोर से आकाश को भर रही थी। झाड़ काट कर फेंके जा रहे थे, उनके बीच अपने को रक्षित समझने वाले वृक्ष कट कर अररर की ध्वनि करते हुए गिर रहे थे। प्रकृति के प्रति वह असहिष्णुता जंगल के साथ जनपद को भी कँपा रही थी। कितने पशु आज आहार से हीन हो रहे थे। कितने गायों का दूध स्वप्न होने वाला था।

एक दिन संध्या का समय था, चन्द्रमा की फिरगें जंगल के पत्ते-पत्ते पर नृत्य कर रही थीं। सत्यलोक की शान्ति प्रत्येक हृदय को मुखरित कर रही थी। राजर्षि राजानक अपनी कुटी की बाहरी शिला पर विराजमान थे। गाँव के दस पन्द्रह मुखिया उन्हें घेर कर बैठे थे। उसकी मन्द-मन्द वार्ता शान्ति के तरंगों में घुल मिल रही थी। राजर्षि उनसे प्रश्न कर रहे थे—

‘तो क्या इतनी बीभत्स मंत्रणा जो राज्य के मूल को उखाड़ फेंकने वाली है, मंत्री ने हठात् राजा को दिया, फिर राजा भी अयोग्य है जिसके पास मौलिक विचार नहीं। यदि भूमि है, वन है, जल है तभी तो वह भूमिपति है, वनपति है और जलदाता है; आकाश में तो वह राज्य करेगा नहीं। तुम लोग शान्ति से राजा का विरोध करो, तुम्हारे शब्द उसके हृदय को परिवर्तित कर देंगे।’

‘भगवन् ! नहीं, हमें तो आपके आशवासन का ही भरोसा है।’

देखो, राजा और मंत्री दोनों ही राज्य परम्परा की मर्यादा को तोड़ रहे हैं। राज्य परम्परा ही नहीं सत्य को टुकरा रहे हैं। ये स्वार्थान्ध राज्य-शासन के योग्य नहीं। अब मैं भी ऐसे राज्य के समीप नहीं रहना चाहता, सत्य की रक्षा में असमर्थ होना हमारे लिये अपमान हो रहा है; हां उस समय जब तुम्हारे ऊपर असाध्य संकट आयेगा मैं उपस्थित हो जाऊँगा।’

‘नहीं भगवन् ! यदि आप भी हम लोगों को छोड़कर चले जायेंगे तो यह भूमि अनाथ हो जायगी। यद्यपि आज आप राजसिंहासन पर नहीं बैठे हुए हैं तथापि उसी वंश के होने के नाते आपही हमारे सच्चे राजा हैं, कृपा करके हमें अपने दर्शन से न वंचित कीजियेगा।’

यों ही वार्तालाप हुआ। और सभी वहीं सो गये। राजर्षि कुटी के भीतर जगते रहे। सबेरा हुआ, किसानों ने देखा राजर्षि कुटी में नहीं हैं। वे दुखी हुए और चारों ओर रास्ता देखने लगे। कुछ समीप के निर्भरों पर पता लगाने के लिये पहुँचे। कुछ पता न चला, धीरे धीरे दोपहर हो गई। वे सभी वहीं विषण्ण-मुख निराशता की सांस लेने लगे।

(४)

फागुन का महीना था। यद्यपि किसान असन्तुष्ट थे तथापि पकी हुई फसलें उन्हें

सन्तोष प्रदान कर रही थीं। आम बौर रहे थे, आम्र फल की भावी आशा उन्हें प्रशन्न कर रही थी। राजा का मंत्री अपनी योजना की सफलता पर अभिमान कर रहा था, मीलों तक गोहूँ के पके खेत छहर रहे थे। कोकिल कूक रहे थे, समीरण की गति पके हुये चना की ठोठियाँ बजा रही थी। खरीफ की कमी दूनी जमा के साथ आनेवाली थी।

एक दिन सहसा आकाश में घटायें घिर आयीं, कड़-कड़ तड़-तड़ होने लगा। एक-एक बूंद से वृष्टि आरम्भ हुई, किसानों के कान खड़े हो गये। आध घंटे के बाद ओलों की वृष्टि आरम्भ हुई। पूरे एक घंटे तक बड़े बड़े मूसलाधार ओले बरसते रहे। फसलें ध्वस्त हो गईं। राजा के साथ प्रजा आई भरने लगी। न मनुष्यों के लिए दाना शेष रहा, न पशुओं के लिये भूसा-चारा। अब न रोटियों की आशा थी, न दूध और घी की। रहने का ठिकाना न रहा, किसानों के खपड़ैल और फूस के छपर उजड़ गये। खरीफ का दाना चुका कि किसान भूखो मरने लगे। गर्मी भर में किसान बिना अब मृदाय हो गये। उनके पशु बिना जल और चारे के चारों ओर तितर-बितर होने लगे; कई जंगलों में भरनों पग, कई नदियों पर अपना बसेरा कर रहे थे।

यों ही दिन बीते बरसात आ पहुँची। आकाश में बादल छा गये। किसान खेती की चिन्ता में व्यस्त थे पर उनके बैल जंगलों में जल के किनारे बसेरा कर रहे थे। पहले पानी के बरसते हो सब ही सब वहाँ से भी तितर-बितर हो गये। किसान उन्हें दृढ़ने निकले, दृढ़ते ही रह गये।

सावन बीत रहा था किसी खेत में बीज नहीं पड़ा। अकाल का पूरा दृश्य आखाँ के सामने नाच रहा था चारों ओर शोर हो गया राजनगर में अकाल पड़ गया। राजा काँप उठा, वह अपनी असमर्थता पर रो रहा था। मंत्री कह रहा था—‘कोई बात नहीं, सरोवर का बाँध तो अचल है ही। यदि पानी है तो हम खेती की समस्या ठीक कर लेंगे। किसानों को जाने दीजिये, हम दूसरी योजना तैयार कर रहे हैं।’

राजा ने कहा—‘यदि बाँध टूट गया तो—’

‘नहीं, श्रीमान् ! मैंने राजगीरों के द्वारा बांध को मजबूती से दुरुस्त करवाया है, उसके टूटने की सम्भावना नहीं है।’

भादों आने वाला था। जोन्हरे, बाजरे और धान के खेतों में बड़े-बड़े खरपतवार खड़े थे, उन्हें चरने वाले पशु भी नहीं रह गये। कटा हुआ जंगल छोटी छोटी घासों से हरा हो रहा था। केवल जहाँ-तहाँ राजकीय प्रबन्ध से कुछ खेतों की गोद में उदासीन फसलें पड़ी हुई थीं।

एक रात जब पानी बरस रहा था, लहरों का टक्कर खाता हुआ बांध चूनागारा की मजबूती पर न ठहर सका, सहसा अधिक चौड़ाई में बांध टूट गया। अपरिमित जल नगर की गलियों और घरों में भर गया। कितने घर गिर पड़े। सबेरे अनाथ स्त्री बच्चे और वृद्ध हाहाकार कर रहे थे। मंत्री की सभी आशाओं पर पानी पड़ चुका था।



अन्तर

लेखक—श्रीयुत मदन मोहन गुप्त, मुजफ्फरपुर, बिहार ।

उसका नाम था अरुणा । प्रातःकाल के बालरवि की प्रथम रश्मियों का स्पर्श पाकर पुष्पोद्यान के प्रांगण में सौरभ और शोभा बिखेर देनेवाले गुलाब-सा खिला चेहरा, मद भरी चितवन, गोरे-गोरे उभड़े हुए सुन्दर गाल नई जवानी की चुहकती तपिश, पुरदर्द आवाज और मनचले नवजवानों के दिल पर सीधी चोट करने वाले गजब के नजारे ।

शीशे के सामने बैठकर जब वह अपने काले-काले चमकीले बालों को सँवारती तो ठीक पावस की घटाटोप अधियाली के बीच चाँद खेलता हुआ-सा दीख पड़ता । जब वह अपनी अनुपम सुन्दरता पर गौर करती, उसका रोम-रोम खिल उठता ।

जब वह साजिन्दों के साथ बैठकर मोरा का पद गाती, उसकी मादक स्वर-लहरी में पत्ते-पत्ते झूम उठते, राहगीर कस्तूरी मृग की भोंति हजार काम भूलकर खड़े ही रह जाते; कोकिल, कीर मयूर आदि पंछी गण उस मकान की छत पर बैठकर बेसुध हो उस गायन का रसास्वादन करने लगते । अचेतन की बात क्या, चेतन तक अचेतन-में हो जाते । मदमत्त गजेन्द्र भी शान्त हो अपने उन्माद को भूल जाता, नीरस और सूखे वृक्षों में भी नए-नए कोपल और नई-नई पत्तियाँ निकल आतीं; कलियाँ उगतीं और प्रस्फुटित होकर बिहँसने लगतीं । ऐसा ही था उसके गाने में अमर ।

कुछ लोगो की नजरों में वह मानवी नहीं, बल्कि स्वर्गलोक की वह अप्सरा है जो भू-मण्डल पर एक नवीन स्वर्ग का निर्माण करने आई है, रूप का सृजन करने आई है । उस के अन्तर में सुधा की वह सरिता किलोल कर रही है जिसके एक-एक कण के लिए मनचले युवक अपने प्राणों की आहुति तक कर देने के लिए तैयार रहते हैं । उस सुधा-सरिता में असंख्य युवकों की पिपासा शान्त होती है । वह उन युवकों के हृदय में प्रकाशस्तम्भ का शिलान्यास करती है, प्रेम का पाठ पढ़ाती है और फूँक देती है टूटे दिल में नूतन प्राण ।

किसी-फ़िमा की धारणा है कि वह वासना की भट्ठी है जिसकी ज्वाला की लपटों में जो भी आण, प्राण खोकर ही रहे । वह तो दीप की वह जाज्वल्यमान शिखा है जिसका आलिंगन कर राशि-राशि पतंगे जल-भुन कर खाक हो जाते हैं; वह तो समाज की बहिष्कृता—वैश्या है; कामियों के मनोरंजन का साधन है, जिसका दरवाजा प्रत्येक व्यक्ति के लिए सर्वदा खुला रहता है ।

कुछ ही दिनों की बात है । सावन की सन्ध्या थी और सोमवार का दिन । श्रावण मास का प्रत्येक सोमवार इस शहर की गली-गली में नवजीवन बिखेर देता है । जगह-जगह तरह-तरह के महोत्सव, सजावट, नाच-रंग की भरमार रहती है । रात भर रोशनी की जगमगाहट

से शहर का कोना-कोना गुलजार रहता है। उस दिन यहाँ अजीब मजमा देखने को मिलता है।

हाँ, तो उस दिन मेरा सोमवारी व्रत था। अपने आभन्न मित्र रतीश के साथ मटरगश्ती करता हुआ कल्याणी चौक की सजावट देखने लगा। जगह-जगह के मनोरम जलसों में शरीक होकर दिल बहलाते हुए हम लोग क्रमशः पूरब की ओर बढ़ते गए।

कुछ देर में एक-एक कर घंटे ने ग्यारह बजाए। साथ ही किसी नारी के सुरीले अलाप के साथ तबले की थाप सुनकर मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा—“रतीश ! यह आवाज कहाँ से आ रही है ?”

“इसे चतुर्भुज स्थान कहते हैं। चलो, तुम भी जरा दिल बहला लेना”—उसने मेरे कंधे पर हाथ फेरते हुए कहा।

उस स्थान का नाम सुनते ही मैं सहम गया। अरे ! मैंने अपने को रोकते हुए पूछा—“आखिर, मैं इस स्थान पर कैसे चला आया रतीश ?”

उस स्थान के विषय में यद्यपि मैं अनेकों बार सुन चुका था, फिर भी उधर जाने का मुझे कभी भी मौका न मिला था, सम्भवतः अपने को भी बचाने की मैंने भरपूर चेष्टा की थी।

मेरी आश्चर्य चकित भाव-भंगिमा देखकर वह खिलखिला पड़ा—“क्यों श्याम ! इस तरह परेशान क्यों हो रहे हो ?”

“कुछ नहीं रतीश ! चलो, जितनी जल्दी हो सके यहां से निकल चलें। यदि कोई हमें इस तरह देख ले तो…… ?”

“देख ले तो…… क्या ? गाना, सुनना कोई अपराध नहीं। अरे ! जिस समाज से तुम इतना डरते हो, उसी समाज के बड़े-बड़े नामी-गिरामी ठेकेदार, रईस-उमराव, सुल्ला-मौलवी, महंथ-सन्यासी, हाकिम-हुक्काम सभी इस सज्जबाग की सैर किया करते हैं, वारांग-नाओं के एक-एक इशारे पर रुपये ठीकरे कर देते हैं। बिना उनकी रूप-मधुरिमा से अपनी आँखें सँके उन्हें चैन ही नहीं मिलता। फिर, यदि हम सब भी एक रात यहाँ की सैर कर लें तो क्या हर्ज ?”

“नहीं भाई, माफ करो। वेश्याएँ प्राणघातिनी होती हैं। उनके यहाँ जाने से इस लोक में निन्दा तो होती ही है, साथही परलोक भी बिगड़ जाता है। कुछ भी हो, मैं वहाँ नहीं जा सकता रतीश !”—मैंने अनिच्छा दिखलाते हुए कहा।

“सुनो श्याम, शिक्षित होकर भी तुम कोई देहाती हो गए। अरे ! कहाँ का परलोक और कहाँ का स्वर्ग-नर्क ? धत्तेरी समझ की ऐसी-तैसी। श्याम ! इसी पृथ्वी पर तो स्वर्ग-नर्क, लोक-परलोक सभी मौजूद हैं। दोंगी पंडितों ने जो अपने पेट के लिये झूठ-मूठ की बातें, गढ़ ली हैं, वही बातें तुम भी मान लिए हो। गोली लगाओ उन पोगापन्थियों की बातों को। सुनो, तुमने इन्द्रलोक, इन्द्र, स्वर्ग, नर्क देवता गन्धर्व, अप्सरा आदि की मनगढ़न्त बातें सुनी होंगी। वे कहीं दूसरी जगह नहीं श्याम ! वे सभी तो यहीं वर्तमान हैं।”

रतीश की फिलासफी मैं बिलकुल ही नहीं समझ रहा था, बोला—अरे भाई जरा, हवाई रास्ता छोड़ कर पगडंडी से ही आओ, मैं कुछ समझूँ।

वह खिलखिलाता हुआ बोला—“देखो श्याम ! स्टूडियो फिल्म के प्रोप्राइटर ही इन्द्र हैं और उनका निवासस्थान इन्द्रपुरी, वे ठीक उतने ही स्वतंत्र हैं जिस तरह शास्त्र-पुराणों के तथाकथित इन्द्र; उनकी कम्पनियों में काम करने वाले ऐक्टर और स्टार ही क्रमशः गन्धर्व और अप्सराएँ हैं; उनके नृत्य-गृह ही इन्द्र के दरबार हैं। जिस तरह स्वर्गलोक में उच्चोक्ति तथा निम्नकोटि की अप्सराएँ हैं उसी तरह तो यहाँ भी हैं। ठीक उसी तरह हम लोग देवता हैं और यह अप्सराएँ ठहरें, जो इस शहर में ही नहीं बल्कि हर एक शहर में हमलोगों का स्वागत करने के लिए तैयार रहती हैं। इस स्वर्ग में वंचित रहने वाले ही नर्क का अनुमान लगा सकते हैं। इस स्वर्ग और उस कपोल कल्पित स्वर्ग में भला कुछ भी अन्तर है ? अब तुम ही कहो श्याम ! कि स्वर्ग-देव बनना पसन्द करोगे या नर्क-भोगी ?”

रतीश की इतनी लम्बी-चौड़ी बातें सुनकर मैं सन्न रह गया। बात टालने की इच्छा से मैंने रतीश से कहा—“मित्र, अच्छा चलो, कल इस बात पर विचार किया जायगा।”

“नहीं श्याम ! आज तुम्हें चलना ही होगा”—उसने अपनी वाणी को दृढ़ करते हुए कहा।

“पहले एक बात बतला दो तो चलें।”

“कौन-सी बात ?”

“रतीश ! तुम विवाहित होते हुए भी इस जाल में क्यों आ फँसे हो ? तुम्हारी स्त्री जो वास्तविक पतिपरायणा, साध्वी, कुलीना और अनिन्द्य सुन्दरी है, जो प्रेम की साकार प्रतिमा है, जिसके हृदयतल में अपने पतिदेव के प्रति असीम भक्ति है, जो एक सच्ची सेविका, परिचारिका, पुजारिन है और जो अपने मन्दिर के देवता के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करने वाली है, वैसे नारी-रत्न के प्रेम को ठुकरा कर इन वेश्याओं के दगावाज़ी फन्दे में क्यों आ फँसे हो ?”

वह मुस्कराता बोला—“श्याम ! जरा वहाँ पर चलो तो सारा भेद खुल जायगा। तुम्हारी सारी वकालत फेल हो जायगी। तुम शीघ्र ही समझ जाओगे कि मैं ठीक रास्ते पर हूँ या गलत। दोनों में कितनी भिन्नता है, कितना अन्तर है, यह साफ जाहिर हो जायगा।

“रतीश ! उस वेश्या में तुम अपनी स्त्री से कौन-सी विशेषता पाते हो; अपने घर में तुम्हें कौन-सी कमी सूझती है जो इस तरह पागल हो रहे हो ?”

“कमी ?” वह एक बारगी ठहाका मारते हुए बोला—“यह तुम अपने अन्धे समाज से पूछो, जो जमाने की रफतार का कुछ भी ख्याल न कर अपनी पुरानी डफली बजाने में मस्त है। उसके अंग-प्रत्यंग में लकवा मार गया है, फिर भी वही मैं-मैं और तू-तू। वे लकीर पर फकीर हो जाने के लिए तैयार हैं, पर उन्हें इसकी परवाह ही नहीं कि वे गर्त के गह्वर में प्रवेश कर रहे हैं जहाँ विनाश के सिवा कोई दूसरा चारा ही नहीं अथवा प्रकाश की ओर

जहाँ की प्रत्येक रश्मियाँ रोम-रोम में नवीन प्राण फूंक देने के लिए संबद्ध दीख पड़ती हैं।”

‘ठीक है रतीश ! वह कौन-सो कमी है, जरा बतलाओ तो सही ?’

“हाँ, सुनो ! सबसे पहली कमी गाने की कला ; दूसरी शृंगार की कमी; तीसरी नाज-नखरे और हाव भाव के प्रदर्शन की कमी ! बस, ये ही तीन चीजें हैं जिनकी घर में कमी होने के कारण युवक उनकी खोज में बाहर निकलते हैं, और जहाँ उन अभावों की पूर्ति होती-सी दीखती है वहीं वे अपना सर्वस्व अर्पण करके भी पाने के लिए उत्सुक रहते हैं। भले ही वैसे युवकों को समाज पथभ्रष्ट कहे, पर मैं जोर देकर कहता हूँ कि उन युवकों को पथभ्रष्ट बनाया है तो इसी अंधे समाज ने। इसकी सारी जिम्मेदारी इसी रूढ़िवाद की रक्षा करने वाले समाज के मत्थे है और यदि वह चाहे, तो इसका मूलोच्छेद भी हो सकता है। पर वह करे जब।”

“बात तो तुमने ठीक कही रतीश, पर उसका उपाय ?” मैंने उसे प्रोत्साहित करते हुए पूछा।

“उपाय ? हाँ, सुनो। बचपन ही से गृह-कला के साथ-साथ बालिकाओं को गान-कला नृत्य-कला आदि उपर्युक्त गुणों की भी समुचित शिक्षा दी जाय, तभी इन अभ्यासों की पूर्ति हो सकती है। इन कलाओं की शिक्षा देने से उनकी कुल-मर्यादा में किसी तरह का बढ़ा नहीं लगता, बल्कि विकास ही निश्चित है। दूसरे व्यभिचार का भी मूलोच्छेद होगा और आदर्शवाद की स्थापना होगी। बस, समझें न ? हाँ, तो देखो। तबले की ठमक अब मुझसे ज्यादा नहीं सुनी जाती। चलो, एक लपक में हो आर्ये—कहता हुआ वह बरबस मुझे आगे की ओर खींचता हुआ चल पड़ा।

दिल तो हजार मना कर रहा था पर मैं करता क्या लाचारी थी। हृदय धक्-धक् कर रहा था और पैर में मानों चक्को ही बँध गई थी। फिर भी, देखते-देखते दर्जनों सीढ़ियाँ पार करते हुए, दो मंजिले पर हम लोग पहुँच ही गये जहाँ एक भड़कीले, सजे-सजाए कमरे में कुछ साजिन्दों के साथ बैठी एक वेश्या गा रही थी। हमें आते हुए देखकर वह उठी और अदब से झुकती हुई बोली—“आदाब, आइये, तशरीफ लाइये” और एक अजीब मुस्कान के साथ हम लोगों को उसने बाइजत बैठाया।

रतीश ने बैठते हुए—“करुणा, तुम इन्हें पहचानती हो ? ये मेरे मित्र श्याम बाबू हैं। ये यहाँ आने में हिचक रहे थे सिर्फ एक गाना सुनकर चले जाने के वादे पर आये हैं।”

“हाँ ! अच्छी बात है”—कह कर वह कुछ क्षणों के लिये अन्दर चली गई।

‘करुणा’ का नाम सुनकर मैं अवाक रह गया। अरे ! यही वह करुणा है जिसकी प्रशंसा गली-गली में हो रही है ? लोग इसे निहायत नेकदिल और उच्चकोटि की वेश्या कहते हैं—आदि बातें सोचता हुआ मैं कमरे की सजावट देखने लगा।

कमरा खूब साफ-सुथरा था और दीवाल पर तरह-तरह के रस-पक्ष वाले चित्र टँगे थे। विजली-बत्ती से कमरा जगमगा रहा था !

इतने ही में, नख-शिखविभूषिता करुणा भूमती हुई आई और पान की तश्तरी आगे बढ़ाती हुई बोली—“खाइये श्याम बाबू !”

कुछ क्षणों के अन्तर्गत ही करुणा के सौन्दर्य में इतना विकास देखकर मैं दाँतों तले उँगली काटने लगा। नीचे से ऊपर तक वह जड़ाऊ कपड़ों में ढँकी थी, आखें तीर की मात कर रही थीं, अंग-अंग में न मालूम कहां से इतनी नजाकत, इतनी लोच आ गई थी जहां आखें बरबस टिक जाना चाहतीं।

मैं उसके निवेदन को ठुकरा न सका। तश्तरी से पान की एक गिलौरी लेकर शीघ्र ही मुँह में डाल लिया।

करुणा मुस्कराहट बिखेरती हुई बोली—“क्या मैं गाना सुनाऊँ?”

“हां, हां, भला”—रतीश ने हामी भरी।

वह गानों इसी की प्रतीक्षा में थी। साजिन्दे तैयार थे ही। करुणा के वीणा-विनिर्दित कंठों ने वह राग गाया जिसकी मस्ती ने मेरे ऊपर भी अपना रंग जमा दिया। करुणा की गान-कला की प्रशंसा यद्यपि मैं जमाने से सुन रहा था, पर उससे परिचित होने का मुझे अब तक मौका न मिल सका था।

गाना समाप्त होते ही चलने के लिये मैंने रतीश को इशारा किया। यद्यपि कुछ और सुनने की मेरी इच्छा थी, पर उस आवेग को दबाते हुए लौट चलने का ही मैंने संकल्प कर लिया।

मेरे संकेत का अर्थ समझ कर रतीश मुस्कराते हुए बोला—“करुणा! अब हम लोग चलेंगे, फिर दूसरे दिन” और दस रुपये का एक नोट करुणा की ओर उसने बढ़ा दिया।

“शुक्रिया! पर, रतीश बाबू! आप फिर जब आएँगे, श्याम बाबू को भी साथ अवश्य लाएँगे। अच्छा न?”—नोट थाम्हते हुए करुणा ने आग्रह से कहा।

“हाँ, हाँ, भला यह भी कहने की बात है?” रतीश मुस्कराता नीचे की ओर चल पड़ा।

कुछ क्षणों में हमलोग जीने के नीचे थे। मेरे मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार होड़ ले रहे थे।

मेरा हाथ झकझोरते हुए रतीश ने कहा—“देखा न श्याम! अपनी धर्मपत्नी और इन प्रेम-नायिकाओं में इतना ही अन्तर है। अब समझ गए ना?”

नहीं रतीश! अभी कुछ और बाकी है”—मैंने उसकी बात का उत्तर दिया।

“अभी भी कुछ सन्देह रह ही गया? अच्छा गुडवाइ। लो तुम घर भी पहुँच गए, और मुझे अभी दश मिनट की देर है। फिर कल,”—कहता हुआ वह अपने घर की ओर मुड़ चला।

दूसरे दिन सन्ध्या हुई। आकाश में धीरे-धीरे चांद आने लगा। कुछ तारे भी मौन आ धमके।

मैं उठा और रतीश के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते ही मैं उससे भेंट हो गई। उसने

उत्सुकता पूर्वक पूछा—“श्याम टाकीज में आज ‘कंगन’ होने जा रहा है श्याम ! चलो फस्ट शो देख आवें ।”

‘कंगन’ की प्रशंसा मैं पहले ही सुन चुका था, इसलिये उत्सुकता बढ़ी और उसके साथ हो लिया ।

ज्यों-ज्यों कर टिकट लिए और हाल में दाखिल हुए । खेल आरम्भ हो चुका था, भीड़ भी काफी थी; लेकिन सभी शान्त होकर देखने में तल्लीन थे । हम लोग भी अपनी-अपनी सीटों पर बैठकर खेल देखने लगे ।

हमसे कुछ ही दूर पर कोई रमणी बैठी थी जिसकी खिलखिलाहट की आवाज़ कभी-कभी साफ सुनाई पड़ती थी । इन्टर्वल हुआ और विजली के बल्ब फिर रोशनी फैकने लगे । फिर, वही हँसी के फौवारे छूट रहे थे ।

हम लोगों ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा । थोड़ी ही दूर पर एक साफ सुथरा आदमी, देखने में जो एक रईस-सा ही लगता था, बैठा पान चाभ रहा था और करुणा, हां ! हां ! वही करुणा, उस व्यक्ति के गले में बांध दिए मुस्कुरा रही थी । यह देखकर मैं सन्न रह गया । रतीश से कुछ पूछना चाहा, पर देखा, वह द्रोठ काट रहा था और इतने ही में रतीश की बगल का आदमी बड़बड़ा उठा—“दगाबाज औरत !”

रतीश ने उस आदमी से पूछा—“क्यों भाई, क्या बात है ?”

वह बोला—“कुछ न पूछिये जनाब यह मक्कार औरत, जो सामने बैठी है, इसका नाम करुणा है । यह मुझमें अपने निजी व्यय के लिए आधी जमंदारी इस शर्त पर लिखवा चुकी है कि वह मेरे सिवा किसी दूसरे आदमी का स्पर्श तक नहीं करेगी ।”

रतीश बोला—“अरे भाई ! इसी शर्त पर तो वह मुझमें भी दो सौ रुपये प्रतिमास लिया करती थी ।”

मैंने कहा—“रतीश ! बस इतना ही तो ‘अन्तर’ है ।”

वह चकित होकर मेरी ओर देखने लगा ।



नर-पशु

लेखक—प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०, क्वेटा, राजस्थान

जयन्त का जब से विवाह हुआ, उस की पत्नी लीला कुछ अनमनीसी रहती है। जयन्त स्वयं नहीं जानता उसे क्या हो गया है। वह विधवा विवाह का पक्षपाती है। खूब व्याख्यान देता है, सभी को विधवाओं की दयनीय दशा पर आँसू बहाने तथा क्रियात्मक रूप से सहायता करने को कहता है। वह स्वयं कोरा बकवादी नहीं, प्रत्युत् उसने विधवा लीला से विवाह कर अपने समाज सुधारक पन का सबूत सब के सामने पेश किया है।

उसका दाम्पत्य जीवन सुखी तो नहीं कहा जा सकता किन्तु शान्तिमय भी नहीं है। लीला कुछ अशान्त कुछ अतृप्त सी रहती है। रात्रि में सोते सोते चौंक उठती है। प्रायः बड़-बड़ाया करती है, जयन्त आँफिस जाता है तो स्वयं अपने सामने लीला को खाना खिलाकर जाता है। घर सम्पन्न है भोजन वस्त्र की चिन्ता नहीं है फिर भी लीला अस्थिपिंजरवत् होती जा रही है।

“लीला ! तुम्हें क्या हो रहा है ?”—एक दिन सिर पर हाथ रख जयन्त ने दुःख से पूछा। आज जयन्त ने कलकत्ते के सबसे बड़े डाक्टर को दिखा कर उससे परामर्श करने का निश्चय किया है। कुछ हो वह लीला के लिए प्राणोत्सर्ग कर देगा।

“मैं नहीं जानती !” लीला बोली, “बहुत सोचती हूँ। न जाने मुझे इन दिनों क्या हो गया है ? अपने मन को बहुतैरा सम्हालती हूँ। ढाढस बँधाती हूँ। क्या बताऊँ मुझे रात्रि में बड़ा डर लगता है।”

“डर ? काहे का डर ! डर की बाबत तो तुम आज मुझसे कह रही हो, आज तक मुझे नहीं बताया। बताओ, तुम्हें कैसा डर लगता है ?”

जयन्त को सहसा अपने मनोविज्ञान की स्मृति हो आई। जब वह बी० ए० में मनोविज्ञान का अध्ययन करता था तब उसने कच्चे दिमागों पर भय की प्रतिक्रिया के विषय में पढ़ा था। स्वयं वह डरपोक नहीं था। और प्रायः दूसरों को हीनत्व की भावना से मुक्त होने का उपदेश दिया करता था। अनेक मित्रों के मिथ्या भय उसने दूर किए थे। भय की बात पत्नि के मुख से सुन कर उसे कुछ उत्सुकता हुई। दाम्पत्य जीवन में कभी उसने लीला से उस के प्रारम्भिक जीवन के विषय में खुल कर बातचीत न की थी। वह जानता था कि विवाह के पश्चात् पूर्व की बीती घटनाओं का जिक्र केवल कटुता की ही वृद्धि करेगा। जो बीत गया उसकी स्मृति से क्या लाभ ?

विधवा लीला से उसने कभी पूर्व पति की उसके प्रारम्भिक जीवन या दुःख सुख की चर्चा न की थी। वह उन सभी अवसरों को साफ़ उड़ा जाता था। इन सबसे लीला को दुःख होगा। वह क्यों इनकी परवाह करे ? भविष्य उस के सन्मुख है। आज लीला के मुख से सहसा भय की बात सुन कर उस की उत्सुकता बढ़ी। वह प्रश्न कर बैठा—

“लीला ! अच्छा बताओ, तुम्हें काहे का स्वप्न दीखता है ? मैंने देखा है कि तुम आन्-

नक हड़बड़ाकर सोते सोते उठ बैठती हो। हाथ पांव पटकती हो। लम्बे साँस आते हैं। कई बार मैं प्रश्न करते करते रुक गया। क्या तुम मुझे बता सकती हो कि क्या बात है ?”

लीला बोली—“मुझे स्वप्न बताते हुए बड़ा संकोच हो रहा है। न जाने आप पसन्द करें, न करें। मुझे अपने पहले पति की यादगार एकाएक भयभीत कर देती है।”

“पूर्व पति की यादगार !” जयन्त गंभीर होकर बोला।

“जी हाँ। कई बार चाहा कि आप से कहूँ। आज याद आ ही गई। मेरे पूर्व पति पलटन में मेजर थे। बड़े मजबूत, खूबवार, कठोर। मैं उनसे अन्दर ही अन्दर डरा करती थी। कर कुछ भी न पाती थी। हिन्दू पति भला कर ही क्या सकती है ? वह पति के हाथ की कठपुतली है। उसकी इच्छाएँ, अरमान, कुचले जाते हैं। कौन उसकी परवाह करता है ? कौन।”

लीला कहते कहते आवेश में भर गई। उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—“माँ बाप की निम्न स्थिति से लाभ उठाकर बलपूर्वक ही उन्होंने विवाह किया था। वे हमारे पड़ोस में रहते थे। अच्छे रुपये पैसे वाले थे। बड़ी तण्डुलवाह मिलती थी। मैं उन्हें सौंप दी गई। एक अनपढ़ औरत की खुशी की, उस के मन इच्छाओं, रुचि की किसे परवाह ? समाज तो मनुष्यों का है न ? बस इसीप्रकार जीवन की नौका चलती रही। वह कटु और शूलमय जीवन आज भी स्मरण कर कांप उठती हूँ। पतिदेव ने मांस खाना सीखा। कहते रहे, पलटन की नौकरी बिना मांस खाये नहीं हो सकती। मैं घर में न बनाती, तब भी वे बाहर खाते। मांस भक्षण से उनकी तामसी वृत्तियाँ जाग्रत होने लगीं। अब मुझ पर गालियों की बौछार भी पड़ने लगी, कभी २ लात घूसा भी।”

अपनी आप बीती सुनाते २ लीला सिहर उठी। वह कांप सी रही थी। पुनः उसने कहना शुरू किया—

“पतन की भूमि इतनी ढालू होगी, यह मुझे स्मरण न था। मैंने देखा, मांस भक्षण के साथ उन्हें मदिरा का चस्का लगने लगा है। कई बार श्रवसर देख कर मना किया। प्रेम से, क्रोध से, अभिमान, हठ सभी सामदाम दण्ड भेद चलाये पर मेरी हार रही। उन की पशुता बढ़ती गई।”

मैं सुन्दर थी, वे तागसी वस्तुएँ खाने से काले तथा मटमैले रंग के पड़ने लगे। नेत्र हमेशा रक्त वर्ण के रहते। सिगरेट मुँह में लगा रहता। कभी २ मदिरा के नशे में मुझसे कहते—“लीला। मैं मर जाऊँ, तो विवाह न करना।” ऐसी शकशुबे वाली मनोवृत्ति का अर्थ मैं ठीक से समझती थी। उन्हें भय था कि उनकी अनुपस्थिति में मैं कहीं भाग न जाऊँ; मुक्त न हो जाऊँ। मेरे हज़ार आशवासनों पर भी उनका शक शुभा क्रमशः बढ़ता ही गया। ज्यों ज्यों मदिरा, मांस, तथा धूम्रपान बढ़ा त्यों त्यों उनके अत्याचार भी बढ़ते गये। उफ़ ! वे दिन ! ! और आ।”

लीला का सर चकरा गया। वह मूर्छित हो गई। जयन्त आज बड़ा अनमना हो, यह सब कुछ सुन रहा था। वह धबरा गया। मुँह पर पानी छिड़का। जल्दी २ हवा करने लगा। उसने देखा, लीला हवा में हाथ पाँव पटक रही है। उसका हृदय जोर २ से धड़क रहा है।

आखें फट रही हैं। आवाज नहीं निकल रही है। लीला की बत्तीसी वन्द थी। उसे धिग्धी बंध गई थी। वह जोर से काँप रही थी।

आध घंटे में लीला को होश आया। उसकी अवस्था से प्रतीत हुआ मानों उसका गला अवरुद्ध हो रहा हो। जयन्त विस्मय, उत्सुकता तथा आवेग में डूब रहा था।

लीला जैसी रहस्यमयी स्त्री उसने न देखी थी। उसने सुधारवादी होने के कारण विधवा लीला, जो अध्यापिका के रूप में उसके जगत् में प्रविष्ट हुई थी, से जान पहिचान कर, उस के रूप गुणों पर मोहित होकर विवाह कर लिया था। इस रहस्यमयी युवती में इतनी गूढ़ समस्याएँ छुपी होंगी, यह ज्ञान उसे न था। वह देख रहा था कि कुछ दिन से लीला अनमनी, कुछ चिन्तित कुछ खोई सी रहती है। वह मानसिक जगत् का कुछ ज्ञान रखता था। इसीलिए उस रमणी के हृदय में स्थायी शान्ति चाहता था। आज सायंकाल था। उस ने कुछ कहना उचित न समझा। वह चुप रहा। इधर उधर की बातों से लीला का मन बहलाता रहा। लीला भी घरेलू काम में लग गई। उस दिन कोई उल्लेखनीय घटना न घटी।

दूसरे दिन रात्रि में आधी रात के लगभग यकायक शोर सुनकर जयन्त उठ बैठा। बत्ती जलाई। देखा तो लीला को खाट पर तड़पते पाया। वह बुरी तरह हाथ पाँव पटक रही थी। उसका कण्ठ अवरुद्ध था। मुँह से एक शब्द भी न निकलता था। उसे बड़े जोर की कंपकंपी छूट रही थी। अब वह क्या करे? जयन्त से कुछ करते न बना। वह जोर से पुकार उठा “लीला! लीला!!”

लीला अचेत पड़ी थी। भय के अनेक चिन्हों से उस का मुख रंगा था। वह जल्दी से पानी लाया। नौकर को जगाया और भट डाक्टर के पास भेजा।

डाक्टर आया। लीला अब कुछ स्वस्थ थी। उसे भय का दौरा उठा था। अब नब्ज ठीक चल रही थी। दिल की धड़कन भी ठीक थी। डाक्टर बोले—“कुछ नहीं, भय था किसी भयानक सपने से डर गई।”

जयन्त एक नई बला में फँस गया था। बेचारा क्या करे? राम राम करके प्रार्थन: हुआ। वह लीला से रात्रि की घटना के विषय में पूछता रहा। लीला ने बताया कि रात में उसे भयंकर स्वप्न हुआ। उसने देखा—जैसे उसके मृत पति की छाया खट् खट् करती हुई चली आ रही हो। वह कह रही हो—तू! तू पापिष्ठा, तूने पुनः विवाह किया मैंने इतना मना किया। बार बार कहा पर मेरी मर्जी के खिलाफ तूने विवाह कर ही लिया। बुरा किया तूने! तुझे इसकी सज़ा दूंगा! तेरा लहू चूसूंगा।”

भयंकर सपने की बात सुनाते सुनाते लीला डरने लगी। जयन्त को बात बदलनी पड़ी। वह नहीं चाहता था कि उसकी पत्नी भूत-प्रेत की कोरी दलीलों में पड़ी रहे और दिन रात थोथी कलनाश्रों को मन में स्थान देती रहे।

जयन्त लीला का इत्ताज कराता रहा। उसके भोजन इत्यादि का सुचारु प्रवन्ध किया। देख भाल में सतर्क रहने लगा। लीला के आमोद-प्रमोद का विशेष ध्यान रखता, इधर उधर टहलता किन्तु अवस्था दिन प्रति दिन गिरती गई। वह अन्दर ही अन्दर घुलती जा रही थी। रक्त में स्वस्थ जीवाणु-तत्व कम होते जा रहे थे।

जयन्त क्या करे? ओम्हा, फ़कीर, स्थाने चट्टों में उसे विश्वास न था। वह लीला के

रोग का कारण अव्यक्त मन पर पड़े हुए भय के प्रभाव को ही मानता था। उसने संकेतों तथा आत्मनिर्देश द्वारा लीला की चिकित्सा प्रारम्भ की। एक रात्रि की बात है। जयन्त सोने से पूर्व बोला—“लीला ! आज तुम्हें कोई नहीं सताएगा। कोई नहीं आ सकता। न भूत, न प्रेत कुछ नहीं आवेगा। देखो मैं भी जागता हूँ।”

बत्ती बुझी। दोनों सोने के लिए लेटे। बाहर नौकर सो गया। जयन्त को नींद नहीं आई थी ! यकायक किसी के मिलटरी जूतों की खट् खट् आवाज़ सुनाई दी मानों कोई सीढ़ियों पर चढ़ रहा हो। लीला डर उठी। वह चिल्लाई— देखो ! देखो !! वह नरपशु आ रहा है ! उठो, उठो। मुझे बचाओ।”

पाँवों का खट् खट् शब्द बढ़ता गया। वे पाँव बन्द कमरे में दाखिल हो गये। लीला के हाथ पाँव कांप उठे। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई, उसके पास आ रहा हो। अरे ! उसने पहिचाना। यह तो वही उसका पूर्व पति है। कैसा डरावना, कैसा निष्ठुर, क्रूर। वह गिर पड़ी। उसे प्रतीत हुआ जैसे कोई उसको छाती पर बैठकर लहू पी रहा हो वह चिल्लाती रही। जयन्त कुछ न समझ पाया। उसे कुछ भी न दिखाई दिया। दस पन्द्रह मिनट पश्चात् नर-पशु चला गया। लीला का चेहरा पीला पड़ गया था।

इस घटना से जयन्त घबरा गया। उसे स्थाने चट्टों की कुछ भी बातें न समझ में आती थीं। उसी के नगर में पीपल के वृक्ष के नीचे जो स्थाने साहब रहते थे, वह उनका मज़ाक उड़ाकर निकल जाया करता था। अन्य लोगों को उनके पास बैठे देख कर वह हँसता था। आज उसने उन्हीं के पास जाने की सोची। वह जाकर सब कुछ सुनायगा और कुछ दवाई पूछेगा।

दूसरे दिन वह स्थाने साहब के पास गया। उन्होंने उत्तर दिया—“अतृप्त आत्माएं प्रायः इसी प्रकार मानव जगत् को व्यस्त किया करती हैं। किसी प्रेतात्मा का क्षोभ है। उसका प्रतिकार करना होगा।” उन्होंने एक लम्बी रक्तम जयन्त को बताई। कई अजीब प्रकार की औपधियाँ खान की। शनिवार के दिन रात्रि के एक बजे आन का आदेश दिया गया।

धीमी रोशनी के प्रकाश में तीन व्यक्ति बैठे थे। लीला, जयन्त और साई साहब। धीमी अग्नि में कुछ सुगन्धित पदार्थ जल रहे थे। आध घण्टे तक इसी प्रकार पूजा चलती रही कुछ देर बाद साई साहब झूमने से लगे उनका बदन विकृत सा हो उठा। वे मुख से अस्पष्ट भाषा में कुछ बोलने लगे।

“...मैं कहता न था... विवाह मत करना क्यों किया तूने... नहीं छोड़ूंगा, नहीं ! नहीं ! मैं इस औरत की जान लेकर रहूँगा। साई साहब आप क्यों इसकी माफ़ी चाहते हैं... इस का रक्त मीठा है। मुझे अच्छा लगता है... माफ़ी ! तू लजित है... अगर वास्तव में लजित है तो अगले शनिवार को इसी पीपल पर... ग्यारह रुपये, ग्यारह सैनक खड़ी, ग्यारह नारियल, सिन्दूर, ग्यारह शंख चढ़ा... तब छोड़ सकता हूँ...।”

बहुत रुक कर साई साहब इतना बोले जयन्त भी चक्र में आ गया। उसे बड़ी श्रद्धा हो रही थी। जब साई साहब होश में आ गये, तब बोले। “उफ़ कितनी पीड़ा हो रही है। राक्षस बड़ा कटु है। न जाने क्या क्या कह गया है। तुम ने सुना कुछ?”

जयन्त ने सब कुछ कह सुनाया।

दूसरे दिन से उसे नई फ्रिक सवार हो गई थी। बाज़ार में शंख न मिले। औफिस का समय था। सोना, सायंकाल देखा जायगा। दो दिन इसी प्रकार निकल गए। तीसरे दिन औफिस में जल्दी लुट्टी लेकर आया। माई साहब अन्दर थे। दोपहर का समय था वह बाहर खड़ा हो गया। अन्दर माई साहब तथा कोई और बातें कर रहे थे। उसने उस बातों का कुछ अंश सुना—

“अजी, बड़ी मुश्किल से बहकाया है” अध्यापिका बड़ी समझदार है “उसके जीवन की, पहले पति की बातें बड़ी मुश्किल से मालूम हुईं। उसे डराया, भूत-प्रेत का भय दिमाग में ऐसा बुसाया है कि अब आसामी हाथ में है। अब तो ज़रा में में ही डर जाती है। कहती है, मेरा रक्त चूस रहा है... खूब फँसी है।

साई—और मुझे देखा। उस दिन रात को कैसा बनाया दोनों को। पढ़े लिखा को भी खूब बनाया जा सकता है। वे शकशुबे वाले खूब होते हैं। लेकिन भोला ! इसे जल्दी नहीं छोड़ना है। अभी तो बहुत चीज़ें लेनी हैं... रबड़ी खूब उड़ेगी। शराब के लिये ११) रु० हैं० देखो ! शक करके हाथ में न निकल जाय। औफिस से आता कब है ?

भोला—यही ५ बजे लुट्टी होती है। अध्यापिका भी स्कूल से तभी आती है। अब चलूँ

जयन्त के कान खुले। वह चुपचाप चला आया। घर आकर सोचता रहा कि क्या करूँ। ५ बजे लीला स्कूल में आई। उसे सब कुछ सुनाया। भोला उनका नौकर था। लीला को बड़ा पछतावा हुआ कि क्यों उसने अपनी गुप्त बातें नौकर के मामले की, क्यों उस की प्रेत की कहानियां सुनती रही, क्यों उन पर विश्वास करने लगी और अन्त में क्यों उसके चंगुल में फँस गई।

दूसरे दिन भोला नौकरी में अलग कर दिया गया।



मैं महात्मा बनूंगा

ले० — श्रीयुत डा० इन्द्रसेन, एम. ए., पी. एच. डी. पांडिचेरी ।

“महात्मा बनना कुछ मुश्किल नहीं”, रामनारायण को प्रातःकाल अपने दुमंजिले में जागने पर अत्यंत ओजस्वी और विशाल विचार अपने मन में उपस्थित मिला । उसने आंख खोली और सामने की खिड़की में से वह बाहर का दृश्य देखने लगा । बिस्तर का सुख, प्रातःकाल का सुहावना समय और ऐसा विशाल विचार वह आह्लादित हो उठा । बिस्तर में जरा ऊपर को सरककर तकिये का सहारा ले आधा बैठा सा हो गया । उसने अपने अंदर विशाल आकांक्षा का उदय अनुभव किया । विचारों का एक अदम्य प्रवाह चल पड़ा ।

प्रबल इच्छा हुई, मैं महात्मा बनूंगा, आज ही से, इसी क्षण से । इच्छा में बड़ा वेग था, सोच-विचार की वहाँ गुंजाइश न थी । केवल अनुकूल सहायक विचार ही, जो सहवेग होकर चलने को तैयार थे वहाँ प्रवेश पा सकते थे । और वे तब खूबही उदारता से आये और बलवती इच्छा के साथ बलपूर्वक सहयोग देने लगे । रामनारायण की आकांक्षा ने निर्वाध आकाश को सैर की ।

“महात्मा बनना कुछ भी तो मुश्किल नहीं”, उसने पुनः विश्वासपूर्वक अनुभव किया । युक्तियों और अनुकूल विचारों की कुछ कमी न थी । उसने महसूस किया कि इसके लिये मुझे केवल विषय-विकार छोड़ देने होंगे और यह बहुत सरल है । किसी स्त्री में तो मैं अब प्रेम करूँगा ही नहीं । भोजन भी उतना ही पाऊँगा जितना शरीर के लिये आवश्यक होगा । किसी से द्वेष करने से मतलब ही क्या, सबका भला ही करना चाहिये । धनादि से मोह रखना भी किन्नूल है । मनुष्य को आविर खाना-पीना थोड़ा कपड़ा और एक छोटा-सा घर ही तो चाहिये ।

ऐसा करने से मनुष्य को हर तरह से सुख ही मिलेगा । विषय-विकारों के त्यागने से वितनी शांति मिलती है । स्त्रियों के साथ उलझकर हमेशा दुःख ही होता है । मनुष्य सौंदर्य के नाम पर स्त्रियों में आसक्त हो जाता है । परंतु मुझे इसमें कुछ धोखा नहीं । मैं स्त्री के मुख को देखकर प्रत्यक्ष अनुभव करूँगा कि यही जो आज गोल और सुडौल है कल सूखा सा और झुर्रियोंवाला हो जायगा । यही काले केश सफेद होकर झड़ जायेंगे । और शरीर में कौन नहीं जानता मल-मूत्र भरा पड़ा है । सो ‘काम के जीतने’ का प्रश्न ही मुझे व्यर्थ दिखाई देता है । महात्मा बनने के लिये जो सबसे बड़ी बात कही जाती है उसमें मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं ।

महात्मा के जीवन में खाना-पीना भी बहुत युक्त होना चाहिये । नशा तो किसी प्रकार का भी नहीं करना चाहिये और स्वाद के अधीन होकर कुछ खाना भी नहीं चाहिये । इसमें भी हर तरह से आराम ही है । पैसा कम खर्च हो और स्वास्थ्य अच्छा रहे । मैं नहीं समझता इसमें मुझे कुछ विशेष कठिनाई हो सकती है और जब मैं न किसी स्त्री से उलझूँगा

और न अनावश्यक रूप में खाऊँ-पीऊँगा तो मेरे पास समय भी खूब होगा आवश्यकताएं कम होने से धन की भी जरूरत ज्यादा नहीं हो सकती । निर्वाह-लायक धन आसानी से उपार्जित कर लूँगा । अवकाश का सारा समय परोपकार में लगाऊँगा ।

रामनारायण अत्यन्त उल्लास में उठकर बैठ गया । महात्मा बनने की उसकी सारी आयोजना पूर्ण हो चुकी थी । वास्तव में उसने अनुभव किया कि मानों वह चरितार्थ भी हो चुकी है ।

उसने अपने अंदर मानवजाति के लिये अपूर्व कृपा-भाव अनुभव किया और वह अपनी खिड़की की चौखट पर दाहिनी कोहनी टेककर और हथेली पर ठोड़ी रखकर, अत्यन्त सहानुभूति और प्रेम में, आते-जाते दुःखित मानवों को देखने लगा । वह दूसरों के चित्य तथा अचित्य दुःखों को अनुभव करने लगा और उपकार के लिये व्यग्र हो उठा ।

तभी उसने दो स्त्रियों को देखा । एक वृद्धा थी और दूसरी युवती । वृद्धा गंभीर और मौन थी और युवती आवेश में कुछ कह रही थी और बीच बीच में कभी रो पड़ती थी, कभी हंसने लगती थी । उसका मुख प्रत्यक्षात् किन्हीं आंतरिक सुख-दुःखों को प्रतिबिंबित कर रहा था । हमारे महात्मा के हृदय में सहानुभूति और प्रेम का समुद्र उमड़ आया । वे, निश्चय ही, उस स्त्री के चांचल्य-मय यौवन से किसी तरह भी प्रभावित नहीं हुए थे । इसका तो उन्हें पूर्ण विश्वास था । वे अपनी आयोजना द्वारा पहले ही इस मानवीय मूर्खता को निकाल चुके थे । शुद्ध सहानुभूति और प्रेम के वेग को अब वे रोक नहीं सके और शांत सुखद चितन को छोड़कर उन्हें सहज ही परोपकार में प्रवृत्त होना पड़ा । वे अपने दुर्भिक्ष से नीचे आ गये और वेग पूर्वक चलकर उन दोनों स्त्रियों के सम्मुख आ उपस्थित हुए । युवती को संबोधित करके बोले—

देवी तुम्हें क्या कष्ट है ?

वह युवती पहले तो भौचकी सी रह गई । मन में रोप उठा । परन्तु तुरंत ही मानों किसी आशय से, उसने अपना भाव बदला और अत्यंत विनम्र होकर बोली—

एक कष्ट हो तो कहूँ, मेरे कष्ट तो बहुत हैं और उन्हें सुनने का धीरज किस को है ?

राम नारायण—(परोपकार के लिये अधिकतर उत्साह अनुभव करते हुए) ना, आप अपने कष्ट कहिये, मैं हर तरह से उन्हें दूर करने का यत्न करूँगा ।

युवती—आपकी कृपा है । मैं क्या अब आप के समाने अपने रोने रोज़ और आपको भी दुःखित करूँ ।

रामनारायण—ना, मैंने आपसे, गंभीर सहानुभूति अनुभव की है । आप निःसंकोच अपने दुःख मुझसे कहिये, मैं उन्हें जरूर दूर करूँगा ।

युवती—यदि आप इतने कृपालु हैं तो मैं जरूर अपनी कथा आपसे कहूँगी । लेकिन यहाँ सड़क पर..... ।

रामनारायण—नहीं, मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ ।

युवती—ठीक । तो आइये मैं परदेसिन हूँ । यहाँ धर्मशाला में ही एक कमर में रह रही हूँ, वहीं आपसे अपने जीवन का दुःख कहूँगी ।

हमारे महात्मा उस युवती के साथ हो लिये परोपकार के उल्लास में वे उछलते-कूदते

धर्मशाला में पहुँच गये। युवती ने उन्हें अपना दुःख सुनाया, वे उसमें तल्लीन हो गये। उन्हें अपनी सुध-बुध ही न रही। उसी क्षण वहाँ कोई और व्यक्ति आ धमका, जिसने न आवा देखा न ताव, उन पर मुक़ाँ-घूसों की बौछार जमा दी और धक्के देकर धर्मशाला से बाहर किया।

हमारे महात्मा वही रास्ता, जो उन्होंने कुछ देर पहले उछलते-कूदते त किया था, अब इंच इंच करके मापने लगे। थोड़ा चलने पर उन्हें अपने जेब अत्यंत हल्के मालूम दिये। देखा कि सब धन जाता रहा है। अगले महिने का सारा खर्चा गायब हो गया है। चित्त में दुःख था, शरीर में मार-पीट की पीड़ा, अब धन के जाते रहने से भूखमरी की विभोषिका और सताने लगी। वे वापस मकान पर पहुँचे तो सही, पर दुमंजिले पर चढ़ना असम्भव पाकर सीढ़ियों में ही पड़े रहे। मस्तिष्क की स्थिति विचित्र थी। थोड़ी देर में ही वह थककर चूर हो गया और हमारे महात्मा की आँख लग गई और वे सो गये। जब उठे तो उन्होंने अपने को कुछ ताजा अनुभव किया और वे पुनः अपना साहम जुटाने लगे। धर्मशाला की दुर्घटना को भूलने का यत्न करने लगे। इतने में उन्हें सीढ़ियों पर ही एक चिह्नी दिखाई दी। देखा एक मित्र ने उसी दोपहर में भोजन के लिए निमंत्रित किया है। सोचा घर पर बैठे रहने से चित्त और खराब होगा, दो मित्रों की संगति से दिल बहल जायगा। भोजन के सम्बन्ध में उन्होंने पुनः संकल्प कर लिया कि वे केवल उचित वस्तुएं ही और उचित मात्रा में ही। इसमें सफल उतरने में उन्हें शंका कुछ थी ही नहीं। वे सीढ़ियों से उठे, ऊपर दुमंजिले पर गये, कण्ठ बदले और समय देखकर मित्र के घर की ओर रवाना हो गये।

वहाँ उन्हें कुछ लोगों से मिलना-जुलना अच्छा लगा। बातचीत में अपने आपको नया और उत्साहपूर्ण अनुभव करने लगे। भोजन के उपरान्त थोड़ी शराब उन्हें प्रसन्नतावर्धक प्रतीत हुई। अन्त में थोड़ा जुआ खेलने का प्रस्ताव भी उन्होंने मित्रों के लिये प्रेमवर्धक माना। कुछ देर जुआ खूब मजे में चलता रहा, परन्तु फिर कुछ पत्तों और लेन देन पर उनकी एक साथी से तकरार हो गई। मामला बढ़ गया, मारा-पीटी होने लगी। इसी में दुर्भाग्य से उनकी दाहिनी आँख जाती रही। जुए की पाटों बर्खास्त हुई और उन्होंने आँख पर पट्टी बांधे, दर्द से कराहते, पुनः घर की राह ली। घर पहुँचने में कुछ समय लगा। उससे पहले उनका जुए का साथी जिसे उनसे हारे हुए रुपये चाहिये थे, पोलिस लेकर पहुँचा हुआ था और उनके घर का फर्नीचर उठवा रहा था। उनको दुमंजिले पर चढ़ना फिर असम्भव प्रतीत हुआ। वे सीढ़ियों पर ही पड़ रहे और उनका क्लांत मस्तिष्क थोड़ी देर में सुन्न हो गया। जब वे पुनः चेते तो अंधेरा हो चुका था। वे उठे और ऊपर जाकर खाली कमरे में पड़ गये। उन्होंने हठात् चारों ओर देखा। कमरा वही था, उसकी खिड़की भी ज्यों की त्यों थी, पर वहाँ न उनका प्यारा बिस्तर था और न ही कुछ और सामान। शर्म के मारे उन्होंने आँख बन्द कर ली। परन्तु दिन भर की घटनाएं घूम-घूमकर उनके मन में आने लगीं। वे सोचने लगे एक ही दिन में इतनी विपत्ति! कैसा दुर्भाग्य! युवती का चंगुल, धन-हानि, मार-पीट, शराब, जुआ, लड़ाई-भगड़ा, आँख और सामान! सबके सब एक ही दिन में। जीवन भर के लिये भी ये अत्यधिक है। बार बार

उनके मन में प्रश्न उठता, “आखिर यह सब हुआ क्यों ?” तभी आकाँक्षा, अहमन्यता, आयोजना, परोपकार, ये शब्द उनके मन में अत्यन्त तीव्रता से चक्कर काटने लगे। वे विचारों के अति वेग से शीघ्र ही निर्विचार हो गये।

जब वे जागे तो उन्होंने अपने आपको अद्भुत अवस्था में पाया। वे अपूर्व रूप में शांत और प्रसन्न थे, विचारों का अभाव-सा ही था, परन्तु वे थे अत्यन्त सजग और सज्जन। लेकिन इस सजगता और सज्जनता में अद्भुत विनम्रता थी। क्षण भर में उन्हें पिछले दिन की प्रातःकालीन स्थिति का भान हो उठा उन्होंने उसकी उग्रता और अहमन्यता को देख लिया और फिर शांत और विनम्र हो गये। उन्हें वह स्थिति बहुत ही प्रिय लगी। पता नहीं कब तक वे उसी का आनन्द लेते रहे। अन्त में जब उन्होंने आँख खोली तब केवल यही कहा—“मैं अत्यन्त संतुष्ट हूँ।”

(वाल्टर की एक कहानी से प्रेरित)



दिवाली के दिन

लेखक—श्रीराम त्रिवेदी, 'मधुकर' पुखरायां, कानपूर

गांव के प्रांगण में रोती हुई टूटी-सी भोंपड़ी। प्रबल वर्षा से जिसका एक पाख नष्ट हो गया था और जिसका छप्पर वर्षा के तीव्र आघात सहता-सहता जीर्ण शीर्ण हो चुका था, उसमें अनेक छिद्र निकल आये थे। उसी भोंपड़ी में रहते थे इसी मानव-जगत के दो प्राणी—माँ, बेटे—निर्धन, असहाय, असमर्थ !

माँ का नाम रधिया था और पुत्र का मुनुआँ।

भगवान भास्कर छप्पर के छिद्रों में स्वर्ण-रश्मियों द्वारा भाँक-भाँक कर रोज ही देखते उन मानव-प्राणियों को दुख सहते, कष्ट उठाते। चन्द्रमा भी उन सूराखों में से रोज देखता उन्हें अतृप्त-क्षुधा से तड़पते हुए।

*

❀

*

भगवान अंशुमाली निकले संसार का निरीक्षण करने। प्रथम तो उन्होंने रजनी को जो अपने दुखों को प्रत्यक्ष चमका रही थी, सांत्वना दी। उसके दुख धूमिल पड़ने लगे, अदृश्य हो गए। उपा ने उनके चरणों को अर्घ्य चढ़ाया और लजाकर भाग गई अपने स्वर्ण-प्रासाद को। सूर्य की रश्मियां छप्पर के छिद्रों में से भोंपड़ी के अन्दर भाँकने लगीं—बालक उठ बैठा माँ काम पर जाने के लिए प्रस्तुत थी।

“ माँ मैं भी चलूँगा ”—बालक के करतल उसकी उनीदी आँखों को मल रहे थे।

“ नहीं बेटा तू यहीं खेल मैं जल्दी आ जाऊँगी। ” माँ ने उसे मना कर दिया (वह ले भी कैसे जाती उसके काम में बाधा जो पड़ती) वह खिन्न हो गई। बालक उदाम था।

“ माँ मैं तो चलूँगा ही। ”— बालक ने आग्रहपूर्वक कहा। उसकी आंखें आशा में चमक उठीं।

अपनी असमर्थता और बालक का दृढ़ देख उसका वक्ष दुख से फूल उठा, रो पड़ा। दो बून्द आंसू ने इसका परिचय दिया।

माँ ने बालक को समझाया। लालच दिया। ‘ अच्छा बेटा ’ बनाया। बहलाया, फुसलाया और वह मान भी गया।

मां चली गई । बालक घर की अस्तव्यस्त वस्तुओं से उलझ पड़ा ।

*

*

*

“ मां कल तो दिवाली है न ”—बालक के मुख पर प्रसन्नता खेल उठी ।

“ हां, बेटा ”—मां ने उत्तर दिया ।

“ तो मैं मिठाई खाऊंगा । रंगीन कुरता पहनूंगा और चमकती हुई टोपी लगाऊंगा वैसी ही जैसी परसाल ददा ने ला दी थी । अब ददा कहाँ गए माँ ?—बालक में जिज्ञासा जाग पड़ी उसका मुख उत्तर पाने के लिए उन्मुख हो गया ।

“ ऊपर भगवान के यहां ”—मा के पलक भीग गये ।

“ वे कैसे गये थे, मां । मैं भी जाऊँगा, ” बालक में बाल-सुलभ चापल्य थिरक उठा ।

“ नहीं बेटा, ऐसा नहीं कहते ” मां ने बालक की मूर्खता पर मन ही मन देवताओं को मनाया ।

हीजे में बिना दवाई के तप्त शरीर । उनका—रधिया के पति का लुधा से चिल्लाना, और फिर अंत.....भीषण अंत.....दर्दनाक अंत । उक्त घटना का स्मरण कर वह रो पड़ी हृदय का तरल-दुख आँखों से बरस पड़ा ।

बालक आश्चय से मां के मुँह की ओर निहार रहा था, एक-टक, निश्चल ।

*

*

*

आज दिवाली थी चमकती, मुस्कराती ।

रधिया प्रातःकाल ही काम पर चली गई कुछ अधिक पैसे पाने की लालसा को अपने हृदय में छिपाए ।

संध्या हो गई सूर्यनारायण अस्ताचल-गामी हुए । रधिया काम पर से लौटी अपने मन में प्रसन्नता का भार लिए हुए । उसे आज छैः आने मिले थे । आखिर काम भी तो उसने किया था सुबह से शाम तक, दस घण्टे लगातार ।

बाजार से उसने एक रंगीन कुरता लिया पूरे पांच आने में, और दौड़ पड़ी घर की ओर ‘ लाल ’ को कुरता पा मुस्कराते हुए देखने भर के लिये ।

“ देख बेटा । अच्छा है न । ”—रधिया के हृदय में प्रसन्नता आन्दोलित हो रही थी ।

“ हां मां,—बालक ने आतुर हो मां के हाथ से वह कुरता भपट लिया ।

“ और मां, मिठाई ”—बालक ने कुरते को अनवेक्षण्य नेत्रों से देखते हुए पूछा

“ अरे ! मिठाई तो भूल ही गई । खैर, ले ये चार पैसे । जब खौंचेवाला आए तो ले लेना । समझे । ”—रधिया ने चार पैसे धोती के पल्ले में से खोलकर बालक के हाथ में दिये ।

“ अच्छा, मां ” बालक प्रसन्न हो गया । जैसे उसने अपने हृदय से चिपका लिए ।

*

*

*

खौंचेवाला आया । बालक ने मिठाई खरीदी । वह प्रसन्न हो गया ।

संध्या हो चुकी थी । रजनी अपने मुख-चन्द्र पर तारों से झिलमिल श्याम-आवरण डाले चमक उठी । पत्नियों ने अपने नीड़ों में सुख श्वास ली, सो गए । मनुष्य, वैभव सम्पन्न मनुष्य, कौड़ियों को हाथ में ले अपने भाग्य निर्णय पर तुले बैठे हैं । पर उसी भोपड़ी में रधिया लुधा से पीड़ित थी किन्तु प्रसन्न थी कि आज उसका प्यारा पुत्र मनुआं प्रसन्न है ।

रात्रि को नगर दीपावली एवं विद्युत् प्रकाश में चमक रहा था, पर रधिया की भोपड़ी में अंधकार का साम्राज्य था और उस अंधकार में रधिया अपनी लुधा को पुत्र की प्रसन्नता से बुझाने का प्रयत्न कर रही थी ।



जीवन का शास्त्र

लेखिका—कुमारी विपुला देवी, सीतापुर

यह बात जिस समय की है, उस समय मैं युवक था। मेरी अवस्था केवल बीस वर्ष की प्रचलित प्रथानुसार मैं समस्त वेद-वेदाङ्गों का सविधि अध्ययन समाप्त करके घर वापस लौट रहा था। परन्तु जिस समय मैं तत्तशिला से थोड़ी दूर ही पहुँचा था, एक दीर्घ काय वयस्क पुरुष मुझे मार्ग में मिला। उसने मुझे देखकर तत्काल पूछा—‘तुम कौन हो ? कहाँ जा रहे हो ?’

उसकी गंभीर वाणी और तेजस्वी रूप से प्रभावित होकर मैंने उत्तर दिया—‘मेरा नाम सत्यकाम है। मैं ब्राह्मणकुमार हूँ। तत्तशिला से शिक्षा ग्रहण करके आचार्य से अनुमति पाकर स्वगृह जा रहा हूँ।’

उसने प्रश्न किया—‘शिक्षा ग्रहण करके तुमने क्या सीखा है ! यह संसार क्या है ? मनुष्य क्या है ? जीवन क्या है ? मनुष्य के सबसे बड़े धर्म की बात क्या तुमको विदित है ?’ मैं घबराया नहीं। उसके कंठस्वर में जिस प्रचंड अभिमान का आभास था, उसने मेरे अहंभाव को जाग्रत कर दिया। मैंने उत्तर दिया—‘संसार मिथ्या है। माया के रज्जुपाश में जकड़ा मनुष्य पशु है। मैंने शिक्षा पाकर पशुता से ऊपर उठना सीखा है। मृत्यु से जो बचा हुआ है, वही जीवन है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म सत्कर्म है !’

वह अट्टहास कर उठा। बोला—‘मूर्ख ! संसार मिथ्या नहीं सत्य है। मनुष्य इस पृथ्वी का राजा है, प्रभु है। जो शिक्षा पुरुषार्थ के द्वारा स्त्री-पुत्रादि से प्राप्त सुखों को उपलब्ध नहीं कराती वह व्यर्थ है। धन-संपत्ति ही जीवन है और उससे सुखों को प्राप्त करने की कुशलता ही सबसे बड़ा धर्म है। तुम्हारे गुरु ने तुम्हें कुछ भी नहीं सिखाया है।’

मैं स्तब्ध होकर कुछ देर खड़ा उसके मुख की ओर ताकता रहा, फिर बोला—‘यह आप क्या कह रहे हैं !’

‘महासत्य का उद्घाटन कर रहा हूँ। तुम्हारे गुरु ने क्या ‘समावर्त्तन’ करते समय तुम्हें कुछ उपदेश दिया था ?’ उसने परिहास किया।

मैंने कहा—‘हाँ। उपदेश दिया था कि संसार में जो भी वस्तु सामने आए, उसका अन्तिम सीमा तक अनुशीलन करना। इस प्रकार वह महाज्ञान तुम्हें प्रवृत्ति से प्राप्त होगा जिसको मैं देने में अममर्थ रहा हूँ। परन्तु आप तो.....’

‘मैं क्या हूँ। क्यों, क्या कभी चार्वाक वृहस्पति का नाम नहीं सुना है तुमने ? प्रकृति मेरी अनुचरी है, मैं उसका अधिष्ठाता हूँ। उसके सम्बन्ध में मैं जितना जानता हूँ, उतना दूसरा कोई नहीं जानता। यदि तुम उसे जान लो, सचमुच सत्यकाम हो जाओ। किन्तु बदले में मुझे क्या दोगे ?’

मैंने चार्वाक वृहस्पति का नाम सुना था । उसको सम्मुख देखकर मैं विस्मित हुआ, किन्तु निर्भय आर्चाय का निर्भयशिष्य सत्यकाम उससे डरता क्यों ? क्या मेरी शिक्षा इतनी दुर्बल थी, क्या मैं इतने निर्बल तर्कों की आधार शिला पर अवस्थित था कि उससे भयभीत होकर पलायन करता ? मैंने कहा—“जैसी महाशिक्षा, जैसा महाज्ञान, आपसे मुझे प्राप्त होगा वैसी ही गुरुदक्षिणा मैं आपको दूंगा !”

‘मैं संतुष्ट हुआ । देखता हूँ कि तुम मेरे योग्य शिष्य बनने के सर्वथा उपयुक्त हो । क्योंकि तुमने यह नहीं कहा कि जो गुरुदेव माँगेंगे । मूर्ख लोग ऐसा उत्तर देते हैं, बुद्धिमान नहीं देते । मैं क्या माँगूंगा, यह कोई क्या जाने ? मान लो, मैं कहूँ कि इस ऊँचे शिखर से कूद कर अपनी गुरुभक्ति का परिचय दो, तो क्या तुम ऐसा ही करोगे ? जिस जीवन के लिए शिक्षा लो जब वही न रहेगा, तो क्या बचेगा ? मूर्ख कहते हैं कि परलोक । परन्तु बुद्धिमान जानते हैं कि परलोक कोई वस्तु नहीं । जब मनुष्य मर जाता है, तब वह मोक्ष पा जाता है, । पर ऐसी अवस्था में ‘मोक्षशास्त्र’ में कुशल होने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती कारण, मरा एक बार जाता है । मर चुकने पर कैसी विद्या और कैसी कुशलता ? अतएव वास्तव में इस मोक्षशास्त्र में कुशल होने का अर्थ एक ही है । मरने में नहीं, मारने में कुशल । जो मनुष्य दूसरों को भली-भाँति मारने का उपाय जानता है और इस प्रकार उनकी सम्पत्ति हथिया कर जीते रहने की विद्या जानता है, वही इस संसार में यथार्थ सुख भोग सकता है । समझ रहे हो ?’

‘नहीं । अभी तो नहीं समझ पा रहा हूँ । परन्तु आपका शिष्य हो जाने पर पूर्ण रूप से समझने लगूंगा ।’

‘मूर्ख, यदि इतनी साधारण बातें भी नहीं समझ सकता तो आगे क्या समझेगा ! मैं तत्वज्ञान का उपदेश एकाधिक बार नहीं करूँगा । यह समझ ले !’ उस पुरुष ने चिढ़ कर कहा ।

‘गुरुदेव ! तब मैं भी अपना मार्ग लूँगा । आप इस बात की चिन्ता न करें कि मैं क्या समझ रहा हूँ और क्या नहीं । आपका कार्य केवल समझाना मात्र है ।’ मैंने सविनय उत्तर दिया । मेरा उत्तर सुनकर वह पुनः उत्फुल्ल हो उठा । हर्षित होकर मेरी पीठ पर हाथ ठाँक कर कहा—‘वत्स, तुम पूर्ण रूप से मेरे शिष्य होने के योग्य हो । दो बार तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । उपयुक्त उत्तर यही है । तत्वज्ञान का जो उपदेश गुरु करता है, वह शिष्य के लिए करता है, अपने लिए नहीं । यदि समझ में न आने पर वह विभिन्न उदाहरणों से शिष्य को समझाने सके और पुनः उपदेश भी न करे, तो व्यर्थ कालक्षेप करने में अच्छा है कि शिष्य अपना मार्ग ले । मार्ग नापने का उपयुक्त समय कौन है, यह समझने की बुद्धि अपने पास रखनी चाहिए । मैं तुमको अमरत्व के उस सोपान पर चढ़ा दूँगा, जहाँ तक तुम्हारा पूर्ण आर्चाय अपने शिष्यों को कभी नहीं चढ़ा सकेगा !’

‘यही तो चाहिए । जैसे अद्वितीय ज्ञानी चार्वाक वृहस्पति हैं उससे बढ़कर जब चार्वाक सत्यकाम हो !’

‘ठीक है । तो अब सबसे पहले यह बताओ कि तुम्हारा विवाह हो चुका है ?’

‘नहीं, अभी नहीं ! मैं तो आर्चाय कुल से सीधा चला आ रहा हूँ ।’

उस पुरुष ने कहा—‘तब सबसे पहले तुम अपना विवाह करो। मेरा शिष्य होने की योग्यता की यह पहली सीढ़ी है।’

मैंने इस बार सोच कर उत्तर दिया—‘कान्यकुब्ज देश में मेरे पिता के वाल्यमित्र सोमदत्त ब्राह्मण हैं। उन की कन्या से मेरा विवाह करने का निश्चय मेरे पिता ने किया है, क्या मैं……।’

‘मूर्ख ! चूक गए इस बार। कन्या केवल तुम्हारे वाल्यमित्र सोमदत्त ब्राह्मण के ही नहीं है। कन्याएँ इस धरा-धाम को तृणवत् आच्छादित किए हैं। विवाह करने के लिए तुमको कारस्कर छोड़ने और कान्यकुब्जदेश जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारे पास कुछ स्वर्णमुद्राएँ हों, तो……।’

‘काश्मीर के राजपुराहित मेरे पिता के श्रुणी हैं, उन्होंने दससहस्र स्वर्ण मुद्राएँ मेरे पिता से ली थीं। मैं उनसे कुछ स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कर सकता हूँ, परन्तु उसकी आवश्यकता……।’

‘अरे मूर्ख, क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि जीवनोपयोगी सामग्रियाँ एकत्र करने में द्रव्य की आवश्यकता पड़ा करती है। मेरे साथ तुम रहोगे, तों क्या उसमें कुछ व्यय नहीं होगा……।’

‘अवश्य होगा, देव ! आवश्यकतानुसार सब द्रव्य मैं देता रहूँगा।’

इस प्रकार चार्वाक बृहस्पति का मैं शिष्य बना। वे अपने साथ मुझे अपने आवास स्थान पर ले गए और एक नवयुवक को बुला कर उससे कहा—‘भद्र हरिणात्। यह तुम्हारा नवीन साथी सत्यकाम है। इसे ज्ञाननेत्र होने की लालसा है। अतः यह मेरे साथ ही रहेगा। इससे उपयुक्त काम तुम लेते रहना।’

वे चले गए। मैंने हरिणात् से पूछा—‘बन्धु हरिणात्, यज्ञशाला किधर है ? तुम क्या कार्य करते हो, मुझे भी बता दो।’

हरिणात् मुस्काराया। उसके नेत्र अत्यन्त ही मनमोहक थे। उसकी मुसकान अतीव प्रिय प्रतीत होती थी। उसने कहा—, यज्ञशाला और यहाँ ? व्यस्य सत्यकाम कदाचित् अभी तुम्हें इस परमसत्य का साक्षात्कार नहीं हुआ है कि परलोक प्राप्त करने के हेतु यज्ञादि साधन व्यर्थ है।’

मैंने कहा—‘हाँ, गुरुदेव की अमृतवाणी को श्रवण करने का सुयोग, तुम्हारी तरह मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ है। तो बताओ, मैं करूँगा क्या ?’

हरिणात् ने हँसकर कहा—‘वह मैं तुमको बता दूँगा। परन्तु इस बात को तुम गाँठ में बाँध लो कि अब तक तुमने जो कुछ पढ़ा और सीखा है, उसे भूल जाना पड़ेगा।’

‘एवमस्तु ! मैं इसके लिए प्रस्तुत हूँ।’

‘दूसरी बात यह है, जो सदैव स्मरण रखनी पड़ेगी कि वेदादि धूर्तों एवं स्वार्थियों की रचना है, जिन्होंने लोगों से धन पाने के लिए इन आकाशकुसुम, की रचना की है।’

‘बस या और भी कुछ ?’

‘केवल इतना और कि देह ही आत्मा है। काँटा चुभने आदि से जो कष्ट होता

है, वही नरक है तथा स्त्री पुत्रादि सुख ही स्वर्ग। स्वर्ग को प्राप्त करने का प्रयत्न करना हमारा ध्येय है।' उसने कहा।

'मित्र, इन दानवीय सिद्धान्तों को मैंने पहले भी सुना है। ये मेरे लिए नवीन नहीं हैं मैं इन्हें स्मरण रख सकूंगा, ऐसा विश्वास होता है। परन्तु तुम कौन हो तथा तुमने किस महाभाग से शिक्षा पाई है!'

'तत्त्वशिला के प्रसिद्ध आर्चाय महेंद्रदेव की चरण सेवा का सौभाग्य मुझे प्राप्त रहा है। और तुम?'

आर्चाय महेंद्रदेव के लघुभ्राता देवव्रत मेरे शिक्षक थे।'

वह पुनः मुस्कराया। देवांगनाओं को लजित करनेवाली निर्मल हास रेखा उसके मुख मंडल पर खेलने लगी। उसने कहा—'तभी!'

किन्तु इसके उपरान्त उसने मुझसे कभी इस सम्बन्ध में नहीं पूछा। हम दोनों बृहस्पति की सेवा में ग्रहनिशि लगे रहते। बृहस्पति जो कुछ कहते उसे ध्यानपूर्वक सुनते। परन्तु आपस में इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं होती।

एक दिवस आर्चाय बृहस्पति ने मुझे बुलाकर कहा—'सत्यकाम देखते हो?'

'देखता हूँ। किन्तु यह कौन वस्तु है, यह समझ नहीं पा रहा हूँ।'

'यह देवताओं की चिर आकांक्षित, स्वर्ण के समान कान्तिमान और जल में प्रकट होने वाला सोम है, इसका नाम रजतप्रभ है। दीर्घ जीवन को चाहो तो अमृतत्व कह सकते हो। इसके रस के पान से दस हजार वर्ष तक देह का हास रुक जाता है। यदि दस हजार वर्ष से अधिक समय तक जीवित रहने की आकांक्षा हो, तो इतने समय के अनन्तर दूसरी मात्रा लेनी पड़ेगी। जो इसे पान करता है, अग्नि, जल, विष, शस्त्रादि उसके शरीर को क्षति नहीं पहुँचा सकते। क्या तुम तत्त्वज्ञान के लिए दस हजार वर्ष की आयु पर्याप्त नहीं समझते?'

प्रश्न विचित्र था, परन्तु और बातें भी विचित्र थीं। मैं शीघ्र समझ नहीं पाया कि आर्चाय बृहस्पति ने मुझसे क्या कहा है। पीछे चक्रित होकर पूछा—'सोमकन्द? ...'
'हाँ। तुमने तो क्या, तुम्हारे गुरु ने भी उसे कभी न देखा होगा। फिर भी लक्षण ज्ञान के द्वारा तुम इसकी परीक्षा कर सकते हो। सब प्रकार की सोमलता में पन्द्रह पत्ते होते हैं। वे शृङ्गपत्र में उत्पन्न होकर कृष्णपत्र में गिर जाते हैं। इसके बाद शृङ्गपत्र की प्रतिपदा से नित्य एक पत्ता निकलने लगता है और पूर्णमासी को उनकी संख्या पूरी हो जाती है। अच्छा अब तुम मुझे एक महस्त्र मुद्राएँ काश्मीर के राजपुरोहित के पास से ला दो।'

'जैसी आज्ञा! मैं कल ही काश्मीर की ओर प्रस्थान कर दूंगा।'

'राजकन्या शिवानी से मेरा आशीर्वाद भी कहते आना। और देखो, जब तक तुम वापस लौटोगे मैं तुम्हारे व्याह की तैयारी कर रखूंगा।'

'तैयारी कर रखियेगा, पर निर्वाचन मैं ही करूँगा।' 'साहस बटोर कर मैंने कह ही डाला। जानते हो क्यों? बृहस्पति वेद नहीं मानते थे, वर्णाश्रम के विरुद्ध थे, परन्तु मैं इतनी प्रगति नहीं कर सका था। बृहस्पति ने केवल एक बार मेरी ओर देखा और मौन

हो रहे। मुझे प्रतीत हुआ कि वे जैसे हँसना चाहते हैं, किन्तु हँसे नहीं। यह क्यों, मैं समझ नहीं सका।

पैदलमार्ग से मैं काश्मीर पहुँचा। किन्तु राजपुरोहित के समीप जाने का साहस नहीं हुआ। कारण, वह मेरे पिता का ऋणी नहीं था। ऋण की बात नितान्त असत्य थी, किन्तु उसे सत्य प्रमाणित करना अत्यन्त आवश्यक था। स्वर्ण मुद्राएँ तो चाहिए ही थीं, किन्तु उसके साथ एक और लोभ मेरे मन में आ मगाया था—सोमरस पान करने का। किन्तु यह संभव कैसे था ?

मैंने मन में एक दूरभिसंधि की। राजकन्या शिवानी के धवल प्रस्तर-निर्मित उच्च राज मन्दिर के सामने पहुँच कर मैं बोला—‘राजकन्या शिवानी को सत्यकाम का आशीर्वाद पहुँचा दो।’

राजभृत्य ने वापस लौटकर मुझे बताया कि राजकन्या मेरे दर्शन करना चाहती हैं। मैं जब राजकन्या के समीप गया, मैंने मूर्तिमान सौन्दर्य देखा। आर्चाय वृहस्पति ईश्वर को नहीं मानते, पर मैंने सोचा कि इस अभिनव रचना का देखकर किसी न किसी निर्माणकर्त्ता के सम्मुख उन्हें सिर झुकाना ही पड़ता।

‘ब्राह्मण सत्यकाम, कहां से आपका आगमन हो रहा है !’ शिवानी ने पूछा।

मैंने उत्तर दिया—‘देवि ! कारस्कर मे...’

राजकन्या ने किंचित भू निक्षेप करके कहा—‘कारस्कार आजकल नास्तिकों का आवास हो रहा है। आप वहां क्या करते हैं ?’

‘देवि, महत्ज्ञान की आकांक्षा हो तो फिर क्या नास्तिक और क्या आस्तिक, सबके लिए सर्वत्र मार्ग खुला है। कारस्कर ज्ञान की ज्योति से प्रभावित हो रहा है, स्वतः आर्चाय वृहस्पति वहाँ विद्यमान हैं। आपने क्या उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं सुना ?’

राजकन्या मुस्करा दीं। मैं आगे कुछ कहने का साहस नहीं कर सका। वे बोलीं—‘आर्य हेम प्रभ आजकल यही हैं। आर्चाय वृहस्पति के वे बड़े भक्त हैं। आप यदि उनकी जिज्ञासा शान्त कर सकें, तो बड़ी कृपा हो’

मैं मान गया। आर्य हेमप्रभ को राजकन्या ने बुलवा भेजा। मैंने देखा कि वे तो वही पूर्व परिचित हेमप्रभ हैं, जो आर्चाय महेन्द्रदेव की गोशाला की संभाल करते थे। देखते ही बोले—वयस्क सत्यकाम ! क्या तुम अभी अपने घर नहीं गए ?’

‘नहीं। और यह तुम देखते हो हो। किन्तु तुम बोलने कैसे लगे ? मैंने आर्चाय के समीप रहते समय तो तुम्हें कभी बोलते नहीं सुना था।’ मैंने आश्चर्य के साथ पूछा। हेमप्रभ ने हँसकर कहा—‘सौन्दर्य बोलना सिखा देता है और खोई वाणी वापस मिल जाती है। तुम कारस्कर में क्यों रुके हो ?’

मैंने उत्तर दिया—‘मेरे पिता के महाजन ने मुझे रोक रखा है। क्या करूँ, लाचार हूँ।’

‘कितना ऋण है तुम्हारे ऊपर ?’

‘दो सहस्र स्वर्णमुद्रा ?’

‘अच्छा, तो दो सहस्र स्वर्णमुद्रा ले जाओ और उस देकर मेरे पास वापस लौट आओ।’ हेमप्रभ ने कहा—और पूछा—तुम इतने उदास क्यों दिखाई देते हो ?’

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। दुबारा पूछने पर कहा—‘एक नागमणि में मेरे प्राण अटकते हैं किन्तु मैं उसे प्राप्त नहीं कर सकता।’

हेमप्रभ ने हँसकर कहा—‘वह मैं तुम्हें प्राप्त करा दूंगा। मुझे नागसम्मोहन मंत्र विदित है। तुम उसकी चिन्ता छोड़कर बताओ कि आचार्य बृहस्पति कैसे हैं?’

‘बहुत विद्वान किन्तु भयानक!’

‘यह क्या कहते हो?’

अच्छी बात नहीं है, किन्तु मैं और क्या कहूँ। समझ नहीं सकता। मुझे उनसे डर लगता है…………।’

‘सत्यकाम, क्या मैं तुम्हारी सहायता के लिए आ जाऊँ? मैंने भी बृहस्पति के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सुना है, किन्तु उनसे व्यापक रूप से परिचित होने की उत्कंठा मुझे व्यग्र बना रही है।’

‘नहीं मित्र, व्यग्रता सदैव निन्दनीय है। चार्वाक बृहस्पति के सिद्धान्त, वनचारी सिंह की दहाड़ से भी अधिक आतंकप्रद हैं।’

हेमप्रभ हँस पड़े। उन्होंने कहा—‘मित्र सत्यकाम, तुम अब भी सत्य से बहुत दूर हो।’

‘मैं समीप होने का प्रयत्न कर रहा हूँ।’ मैंने उत्तर दिया। मैं राजकन्या शिवानी के सौन्दर्य और हेमप्रभ के वैभव को देखकर अमित हो गया था। यद्यपि मैं जानता था कि गर्न्धर्व राजपुत्र हेमप्रभ के वैभव की कोई समानता मैं नहीं कर सकता। किन्तु हरिणाक्ष की बात याद आई—स्त्री पुत्रादि का सुख ही स्वर्ग है। गुरु बृहस्पति का प्रथम उपदेश हृदय में प्रतिध्वनित हो उठा—‘जो मनुष्य दूसरों को मारने का उपाय जानता है, और इस प्रकार उनकी सम्पत्ति हथियाकर, जीते रहने की विद्या जानता है वही इस संसार में यथार्थ सुख भोग सकता है।’

मैं शीघ्र ही अभीष्टतत्त्व स्वर्ण मुद्राएँ लेकर वापस लौट पड़ा। जो मार्ग पहले बीस दिन में पार किया था उसे दस दिन में पार करके बृहस्पति के गृह में जा पहुँचा। हरिणाक्ष ने मुझे देखते ही कहा—‘एक के अन्दर एक तीन घरों के भीतर आचार्य बृहस्पति बैठे हैं। तुम जाकर उनसे वहीं मिल लो।’

‘यह क्यों …?’ मैंने पूछा।

‘वे सोमरस पान करके अमर होने की तैयारी कर रहे हैं।’ उत्तर मिला।

मैं गया। आचार्य बृहस्पति ने मुझे देखते ही पूछा—‘ले आएँ स्वर्ण मुद्राएँ?’

अविचल धैर्यपूर्वक मैंने उत्तर दिया—‘हाँ ले आया हूँ। ये दो सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ हैं, आप एक सहस्र ले लीजिए।’

‘एक सहस्र? मूर्ख, तू मेरा शिष्य होने के योग्य नहीं है। मैंने तुझसे एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ माँगी। यद्यपि मेरा कर्म पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं से ही चल जाता, तथापि मैंने सोचा कि कुछ अधिक धन संग्रह कर रखना अच्छा है। यह भी संभव है कि तू इतना धन देना स्वीकार न करे। किन्तु तू तो इतना मूढ़ निकला कि दो सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ ले आया और अब मुझसे कहता है कि मैं केवल एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ लेकर शेष तुझे छोड़ दूँ। किन्तु मैं तेरे समान मूर्ख नहीं हूँ कि इस धन को अपने हाथ से चला जाने दूँ।’

थैली मुझे दे और जहां तेरी इच्छा हो, चला जा ।’ ‘कहते हुए आर्चाय वृहस्पति ने चोट खाए सर्पवत् फुफकारते हुए थैली मुझसे ले ली और उसे संभाल कर रखने के लिए उस घर से बहिर्गत हुए ।’

यह अच्छा सुअवसर था मैंने चटपट आर्चाय वृहस्पति के आसन पर आरूढ़ होकर सोमफल को उठा लिया और स्वर्णपात्र में रखकर उसे स्वर्ण शलाका से चौर दिया । रस से वह पत्र भर गया । मैंने उसे उठाया और आनन्दपूर्वक आर्चाय वृहस्पति का नाम लेकर पान कर गया ।

थोड़ी देर के उपरान्त वृहस्पति लौटे । मुझे देखकर वे क्रोधित होकर बोले—‘अब भी तू यहीं है ?’

मैंने विनम्रपूर्ण स्वर में प्रार्थना की—‘तब कहा जाऊँ ?’

‘मृत्यु के मुख में, और कहाँ जाएगा !’ उन्होंने कहा और चारों ओर देखकर बोले—‘यह क्या ? सोमफल को किसने काटा ?’

‘आर्य मैंने और मैं सब रस पान कर गया ।’ अतिशय विनम्र भाव से मैंने उनकी सारी शंकाओं का समाधान एक साथ कर दिया ।

वज्राहत से वृहस्पति कुछ क्षण खड़े रहे । तदनन्तर संभल कर बोले—‘नीच तूने गुरुघात किया है, तेरे लिए सर्पदंशन का दंड भी न्यून है ।’

‘आर्य, क्रोध न करें । आपने ही कहा था कि यदि स्वजीवन ही न रहा, तो फिर शिक्षा-दीक्षा का क्या प्रयोजन ! मैंने अपनी देह को नाश होने से बचाने के लिए, आपके उपदेश का पालन किया है । इस सोमरस को पान करके अब मैं विप, जल और शस्त्रादि के भय से मुक्त हो गया हूँ । और अब मैं आपके अमर उपदेशों को श्रवण करके, मनन करने के लिए बहुत समय तक जीता रहूँगा ।’ मैंने कहा ।

आर्चाय का क्रोध ठंडा हो गया । वे हँसकर बोले—‘तथास्तु । सत्यकाम वास्तव में तुम्हारी सत्य कामना अत्यन्त शुद्ध है । परन्तु तुमने बहुत सा सोमरस व्यर्थ नष्ट कर दिया है । यह रस तो दो व्यक्तियों के लिए पर्याप्त था । हम-तुम दोनों इसके द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते थे ।’

‘देव, सत्य है ! किन्तु मैं इसे जानता नहीं था और फिर सोमरस पान के अनन्तर जिन आवश्यक विधि-विधानों का पालन आवश्यक होता है, वह आप ही भलीभाँति करा सकते थे ।’

‘वह हरिणान्न करा देता । उसे मैंने यही शिक्षा दी है । किन्तु जो हुआ, सो हुआ । चार महीने तक तुम यहीं रहो । मैं स्वयं शेष कार्य पूरे करूँगा, किन्तु इसके बाद तुमको यहाँ से चला जाना पड़ेगा । गुरुदक्षिणा में मैं जो कुछ चाहूँगा, ले लूँगा, यह तुमको मानना होगा ।’ आर्चाय वृहस्पति ने कहा और वक्रदृष्टि से स्वर्णपात्र की ओर देखकर बोले—‘मुझे अब दूसरा सोमफल प्राप्त करना पड़ेगा ।’

इसके अनन्तर और कितने ही दिन बीते । सोमरस के प्रभाव से मेरी देह के कण-कण से स्वर्ण रश्मियाँ सी फूट निकलीं । मुझे विश्वास हो गया कि अब मुझे देख कर कोई

लौ बिना मुग्ध हुए न रहेगी। मैंने एक दिन आचार्य से कहा—‘आर्य ! आपकी गुरुदक्षिणा क्या है जिसे देकर मैं चला जाऊँ ?’

‘थोड़े दिन और ठहरो। फिर बताऊँ

‘नहीं, अब मैं नहीं ठहर सकता। मेरा जी बहुत ऊब गया है।’ मैंने कहा।

‘तो जाओ, कुछ दिन इधर-उधर भ्रमण कर आओ। एक वर्ष अनन्तर आना। सब तक मानसरोवर से मैं रजतप्रभ सोम लेकर वापस लौट आऊँगा।’ ‘बृहस्पति बोले। मैं चल पड़ा। अनेक स्थलों पर भ्रमण करते-करते मैं पुनः हेमप्रभ के समीप जा पहुँचा। उसने मुझे देखकर सविस्मय कहा—‘आप कौन हैं, देव !’

‘पहचाना नहीं, मैं सत्यकाम हूँ।’ मैं बोला।

‘सत्यकाम ! आश्चर्य ! तुममें इतना विशाल परिवर्तन किस प्रकार हुआ !’

‘सोमरस से। उसके नाम से तुम परिचित हो। कहां राजकन्या शिवानी के क्या समाचार हैं ? वे सकुशल तो हैं ?’

‘सकुशल हैं। शीघ्र ही उनके साथ मेरा विवाह होने वाला है। आशा है कि तब तक तो तुम रुकोगे ?’ हेमप्रभ ने हर्षपूर्वक मुझे कंठ में लगा कर कहा।

मैं चौंक उठा। परन्तु हृदयगत भावों पर अधरगुण डालते हुए बोला—‘अवश्य ! तुम जैसे नर रत्न के उपयुक्त ही वह मणि है। मैं सोमफल तुम्हें पान कराऊँगा और राजकन्या शिवानी को भी !’

हेमप्रभ अतीव प्रसन्न हुआ। उसने मेरी बड़ी आवभगत की। मैं उसके साथ रहने लगा। कुछ दिन बीते। एक दिवस चाँदनी रात में राजकन्या शिवानी अपनी सखियों सहित उद्यान में अवस्थित थीं। हेमप्रभ मुझे साथ लेकर उन मिलने वहीं जा पहुँचे। वार्ता आरंभ हुई सुन्दर रात्री पर और तत्काल सोम तथा अमरता पर जा पहुँची। मैंने कहा—‘देवि ! सोम सत्य है, अमरता भी सत्य है। किन्तु वेद सत्य नहीं है, ईश्वर भी सत्य नहीं। मनुष्य और जोव मात्र ही अपने स्वभाव से विवश हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अग्नि उष्ण है, जल ठंडा है, वायु शीत स्पर्श वाला है। इन्हें ऐसा किसने बनाया ? किसी ने नहीं। इन तत्वों का ऐसा विचित्र स्वभाव ही है। इन्हीं त्वाणों के मेल से देह बनी है। जिस प्रकार जिन वस्तुओं के मेल से मदिग बनाई जाती है, उनको पृथक्-पृथक् सेवन करने से नशा नहीं होता, वरन् सबके संयोग से निर्मित मद्य को पान से करने नशा होता है। उसी प्रकार चारों तत्वों के पृथक् रहने पर चैतन्य नहीं प्रतीत होता, किन्तु इनके एक स्थान पर मिल जाने पर ही शरीर में चैतन्य रूपी जीव उत्पन्न हो जाता है। उस शरीर के नष्ट हो जाने पर वह चैतन्य भी नष्ट हो जाता है।’

‘तो फिर स्वर्ग उसके संपर्क की बात ...’

‘देवि ! स्वर्ग कहां और कैसा ? जो लोग परलोक के सुख को अधिक शुद्ध सुख मानते हैं, वे वायु में महल रचते हैं, क्योंकि परलोक तो है ही नहीं। उसका सुख कैसा ? देह जब तक धरती पर वर्तमान है, तब तक ही सुख है और स्वर्ग समीप है सोम से जिस अमरता की प्राप्ति होती है, वह प्रत्यक्ष प्रमाणित है। और जो कुछ शरीररक्षा के लिए किया जाता है, ठीक किया जाता है।’

‘यह चरम सत्य नहीं हो सकता !’ हेमप्रभ ने विरोध प्रकट करते हुए कहा ।

‘परन्तु आर्चाय बृहस्पति ने तो मुझे यही शिक्षा दी है ।’

राजकन्या शिवानी ने प्रश्न किया—‘तो क्या दस्युकर्म भी ठीक है ।’

‘अवश्य देवि ! उससे-धन संपत्ति प्राप्त होती है ।’ मैंने बेहिचक उत्तर दिया ।

‘और उच्च भावों जैसे मित्रता और एक निष्ठा के सम्बन्ध में आपका क्या मत है ?’

‘अपने-अपने स्थान पर इनकी उपयोगिता है । किन्तु.. !’ मैं कहने जा रहा था ।

अपनी देह रक्षा को ध्यान में रखकर, किन्तु सहसा कुछ स्मरण आ जाने पर उसे न कह कर कहा—‘जहाँ सर्प-द्वारा अपने डसे जाने का भय हो वहाँ मित्र के हेतु नागमणि की खोज में जाना मूर्खता है ।’

हेमप्रभ मधुर भाव से हँस दिया । उसने कहा—‘मित्र यह उपालम्भ क्यों ? नागमणि की बात मैं भूला नहीं हूँ और उसे तुम्हें ला दूंगा । किन्तु न स्वर्ग है और न अपवर्ग है, और न परलोक से सम्बन्ध रखने वाली आत्मा है, यह किस प्रमाण से कहते हो ? न होना तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकता और न यह दावा हो सकता है कि हमने सारी सत्ता को प्रत्यक्ष कर लिया है ।’

‘तो तुम्हारा क्या मत है ?’

‘मैं अपने नहीं, तुम्हारे ही मत की बात कहता हूँ । प्रत्यक्ष में सत्ता की उपलब्धि भी तो अनुमान है, प्रमाण नहीं अतः फिर इसी अनुमान के द्वारा यह मानने में क्या हानि है कि जिसके सम्बन्ध में हम सदैव से सुनते आए हैं, वे सच भी हो सकते हैं । जिस प्रकार नदी तट पर फल देख आए व्यक्ति के कथनानुसार हम मान लेते हैं कि वहाँ फल होंगे और जैसे सिंधु नदी में जल है, सीता नदी में भी जल होगा ।’

मैं यह सुन कर चिढ़ गया, परन्तु तत्काल कोई उत्तर न दे सका । राजकन्या शिवानी ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा—‘आर्य हेमप्रभ, इनका कहना प्रकारान्तर से सत्य है । जगत में प्रायः सब प्राणी स्वाभाविक दृष्टिफल के अनुरागी होते हैं । और वे नीति शास्त्र एवं व्यवहार शास्त्र के अनुसार ‘अर्थ-काम’ को ही पुरुषार्थ मानते हैं । अतएव आर्य सत्यकाम मैं आपके इस कथन को मानती हूँ कि जहाँ सर्प द्वारा डसे जाने का भय हो, वहाँ और के लिए दूर रहा, अपने लिए भी नागमणि लेने नहीं जाना चाहिए ।’

मैंने हेमप्रभ की ओर देखा । वे मुस्का रहे थे । उन पर राजकन्या के कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

दूसरे दिन वे मेरे समीप आकर बोले—‘बन्धु सत्यकाम ! चलो मुझे वह सर्प दिखा दो मैं उसकी मणि छीनकर तुम्हें दे दूँ ।’

‘चलो चलता हूँ ?’ कहकर मैं रथ पर चढ़ उसका पार्श्वर्ती हुआ । अनेक नद-नदी पार करके हम कारस्कर के पश्चिम तट पर पहुँचे । वहाँ सघन वन था । मैंने कहा—‘अब रथ से उतर कर चलना पड़ेगा ।’

हेमप्रभ ने रथ रोक दिया । हम दोनों सघन वन में प्रविष्ट हुए । ऊँचे कगार के ऊपर एक भूविबर था । उसे ही दिखाकर मैंने कहा—‘उसी में सर्प है ।’

हेमप्रभ ने कहा—‘मैं सर्प-जीव मोहित करनेवाली वीणा को बजाकर सर्प को पकड़ लूंगा और तुम उसके माथे से मणि ले लेना ।’

किन्तु ज्यों ही उसने वीणा के तार चढ़ाकर, उसमें प्रथमवार टंकार दी, उसकी दृष्टि बाँबी पर जमी देवकर, उसकी असावधानी के क्षणों में मैंने भरपूर लात उसकी पीठ पर मारी। दूसरे ही क्षण वह कारस्कार की तीक्ष्ण जल-धारा की ओर जाता दिखाई दिया। चिल्लाकर मैंने कहा ‘हेमप्रभ घबराना नहीं ! महासर्प की नागमणि मैंने पा ली है ।’

जिस धारा में बड़ी-बड़ी शिलाएँ भी गिरते ही असंख्य भागों में विभाजित हो जाती थीं, उन्हीं में हेमप्रभ का शरीर विलीन हो गया। प्रसन्नता से अट्टहास करते हुए मैं वापस लौटा और सारथि के समीप जाकर विषयण भाव दिखाते हुए बोला—‘शिला पर खड़े हुए बन्धु हेमप्रभ वीणा बजा रहे थे। उसकी प्रतिध्वनि से मुग्ध होकर नाग सरसराता हुआ बाँबी से बाहर निकला। हेमप्रभ ने उसे पकड़ने के लिए ज्यों ही अपना हाथ आगे बढ़ाया, सहसा शिलापात होने से वे नदी के गर्भ में समा गए। तुम जाओ। राजकन्या शिवानी को यह समाचार सूचित कर देना। कहना कि मेरे लौटने तक वे मेरा मार्ग देखें। मैं नदीगर्भ में घुसकर हेमप्रभ को खोजूंगा।’

सारथि मेरी कठोर वाणी सुनकर हतप्रभ हो गया। उसके मुख से वाणी न निकली। मैं भी उसे सचेत होने का अवसर न देकर तत्काल चल पड़ा। एक वर्ष पूरा होने में पर्याप्त दिन शेष थे, किन्तु जब मैं जाकर बृहस्पति के सन्मुख खड़ा हुआ, वे हर्षित हो उठे। उन्होंने कहा—‘बेटा सत्यकाम, तुम ठीक समय पर आए हो जो सोमफल मैं मानसरोवर से लाया था, उसे दुष्ट लोमड़ी ने कारस्कार की धारा में फेंक दिया है। तुम उसे ढूँढ़ने में मेरी सहायता करो।’

‘सो किस प्रकार ?’

‘सोमपान किये हुए सिद्ध पुरुष की मृत्यु नहीं होती और जल में उसे हानि भी नहीं पहुँचती। तुम रस्सी बाँधकर कारस्कर की धारा में उतर जाओ और उसे निकाल लाओ।’ मैंने कहा अच्छा मैं ऐसा ही करूँगा। किन्तु तब गुरुदक्षिणा में आपको कुछ नहीं दूँगा।’

‘सो क्यों ? क्या शिवानी और उसका राजवैभव तुम अकेले डकार जाना चाहते हो ?’

मैं घबरा उठा बोला—‘यह आप क्या कहते हैं ?’

मैं सच कहता हूँ। शिवानी के लिए तुमने हेमप्रभ को मार डाला है, यह मैं जानता हूँ। तुम नहीं जानते कि मैं अपनी सहज दिव्य दृष्टि से बहुत दूर तक देख सकता हूँ। हेमप्रभ नदी के गर्भ में इतने गहरे गिरा है कि वहाँ से कभी ऊपर न उठ सकेगा। किन्तु तुमने भूल की। शिवानी को पाने के लिए, हेमप्रभ की हत्या करने की आवश्यकता नहीं थी। सोमरस पान करने वाली सिद्ध बुद्धि की इच्छा मात्र ही पर्याप्त थी, और शिवानी तुम्हारी हो जाती। जो हो, अब उसके रत्नकोप का आधा भाग तो तुम्हें मुझे अवश्य देना पड़ेगा। क्योंकि मेरी दी हुई शिक्षा से ही तुम्हें इतना लाभ पहुँचा है...। उन्होंने कहा।

मैं लुब्ध हो उठा। सोचा कि रत्नकोष का आधा भाग इस प्रकार दे देने से मेरे पास कुछ नहीं बचेगा। अतएव रस्सी के द्वारा कारस्कर में उतरते हुए मैंने अनेक बातें सोच डालीं। किन्तु अन्त में सोमफल को हाथ में पाते ही, मैंने तत्काल ही किए निश्चय के अनुसार उसे वृहस्पति के कपाल को लक्ष्य बना कर, बड़े वेग से फेंका। हरिणाक्ष के आगे रस्सी पर झुके हुए आर्चाय वृहस्पति के ललाट पर वह फल भीषण वेग से लगा और पलट कर, मेरे देखते-देखते कारस्कर के जल में समा गया।

ऊपर आते हुए मैं चिल्ला उठा—‘वह क्या हुआ।’

हरिणाक्ष ने उत्तर दिया—‘सर्वनाश ! जिस सोमरस को पान करके मनुष्य दस सहस्र वर्षों के लिए मृत्युभय से छुटकारा पा जाता है, उसी सोमफल के आघात से आर्चाय वृहस्पति के प्राण-पखेरु उड़ गये।’ मैंने अति शोक प्रदर्शित करते हुए कहा—‘हरिणाक्ष अब क्या होगा ? ‘अन्तिम देह संस्कार ! हम लोगों को जो ज्ञान संग्रह करना था, कर चुके। अब चलो, घर लौट चलें।’ उसने शान्तिभाव से परामर्श दिया।

‘और वह सोमफल ? क्या मैं फिर निकाल लाऊँ ...।’

नहीं उसे वहीं पड़ा रहने दो। सब क्षणिक है दुःख है, शून्य है और अपने मन में स्वयं ही व्याप्त स्वतन्त्र है। वस्तु का क्रिया करने का स्वभाव ही सत्ता है। काम हो गया, बस सत्ता समाप्त हो गई।’ उसने कहा।

तब हम दोनों ने वृहस्पति का अन्तिम देह संस्कार किया। किन्तु जब हरिणाक्ष अपने घर की ओर चला गया, मैंने अवसर पाकर उस सोमफल को कारस्कर से निकाल लिया ! अब तक वह लता रूप में परिणत हो चुका था।

किन्तु जब मैं काश्मीर पहुँचा, तब सुना कि राजकन्या शिवानी अब इस धराधाम में नहीं है। उसने हेमप्रभ के जल-पतन का समाचार सुनते ही अग्नि प्रवेश करके प्राण त्याग दिए। उसका शरीर पंचतत्वों की भेट हो चुका है।

मेरा हृदय फटने लगा, पर फटा नहीं। मैं चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि—‘वेह ही आत्मा है तब हे सुन्दरी, किस लिए उस नष्टप्राण के पीछे तुमने अपने प्राण दिए ? तुमको आर्चाय वृहस्पति की क्या ठीक शिक्षा नहीं मिली थी, जो सन्मुख का छोड़कर अशांत अप्राप्य के पीछे गई हो ? इस सुन्दर जगत में बचे रहने की इच्छा त्यागकर मरना क्यों पसन्द किया ?’

तब एक पुरुष ने जो गैरिक वसनधारी था आकर कहा—‘मूर्ख तू क्यों उसके लिए शोक करता है ? बादल की घटाएँ प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं, परन्तु क्षणमात्र में पता नहीं वे कहाँ चली जाती हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत क्षणिक है, इसे तू क्यों नहीं समझता ?’ मैंने आर्तनाद करते हुए उस कथन को सुना-अनसुना करके पर्वत का मार्ग लिया। हिमालय के उत्तुंगशिखर पर, प्रभात के बाल रवि की सुनहरी किरणों के बीच खड़ी शिवानी पल भर को दिखी। मैंने सुना वह कह रही है—‘सत्यकाम, चिन्ता न करो। तुमने जो किया है, उसे कोई नहीं जानता। अदृश्य धर्माधर्म, केवल आगम और अनुमान से ही सिद्ध है। किन्तु न आगम है और न अनुमान। परलोक और पुण्य-पाप केवल पाखंड है।’

मैं पागलवत् एक ओर चल पड़ा।

चार सौ बीस

लेखक:—प्रो० मोहनलाल 'जिज्ञासु' एम. ए. एल. एल-बी., जोधपुर

और उस दिन जब मैंने बहुत देर तक लड़-भिड़ लेने तथा धक्का-मुक्की के बाद गाड़ी में प्रवेश कर लिया, तो सच मानिये मेरा चप्पल टूट गया, कमीज फट गई और हाथ की अंगुली से खून भी निकल आया। यह सब कुछ कैसे हो गया, इसका मुझे कुछ पता ही न चला और जब पता चल भी गया तो उन सबकी ओर देखने तक की मेरी हिम्मत न हुई। गाड़ी के अन्दर उस तीसरे दर्जे के मुसाफिर तो क्या कहूँ, आपस में मिलकर मुझे खूब उड़ाने लगे, जैसे गाड़ी उनकी और उनके बाप-दादों की है, जिसमें किसी दूसरे को सफर करने का कोई अधिकार ही नहीं है उन लोगों की बातों को सुनकर मुझे बांध्य होकर कुछ खरा-खोटा सुनाना ही पड़ा। मैंने धारावाहिक भाषाओं में ऐसे मुहँ-तोड़ उत्तर दिये कि फिर तो सब लोग मेरा लोहा मानकर चुप हो गये। मैंने अटेची और बेडिंग को, जिन पर कि मेरा पूरा पूरा पता लिखा हुआ था, सीट के नीचे दबा दिया और फिर बैठने के लिए हाथ-पैर फैलाना आरम्भ किया, क्योंकि मेरे लिए खड़ा रहना और विशेषतः उस समय जब कि मुझे तेरह-चौदह घंटों के लिए गाड़ी में सफर करना था, किसी यन्त्रणा से किसी प्रकार कम न था।

जब मैंने अपना एक पैर पड़ोस की सीट पर रखने का साहस किया तो एक मुस्टंड जो वहाँ लेटा हुआ कुंभकरण सी खराटों मार रहा था आखिर जग ही पड़ा और बिगड़ कर बोल उठा—‘सारी गाड़ी में एक यही जगह मिली है तुमको !’

‘और भी होगी, लेकिन अब गाड़ी सीटी जो दे रही है !’

‘सौ बात की एक बात, तुम यहां नहीं बैठ सकते !’

‘तो फिर क्या आप सो सकते हो ?’

‘मैं तो सोऊँगा और तुम अब इसी तरह खड़े-खड़े सफर करोगे !’—कहते हुए उसने अपने पाँव फैला दिये।

‘इन व्यर्थ की बातों में कुछ नहीं रक्खा है जनाव ! अभी स्टेशन आया नहीं कि तबियत दुरस्त कर दूँगा !’

‘तुम तो दुरस्त करोगे तब की देखी जायगी, लेकिन लो मैं तो अभी किये देता हूँ—’ कहते हुए वह मुस्टंड अपना एक विकराल जूता, जिसका वजन करीब पाँच सेर का होगा, निकाल कर मेरी ओर लपकने लगा।

मेरे सिर पर वह जूता पड़ने ही वाला था कि पड़ोस के दो चार मुसाफिर बीच बचाव के लिए आ पड़े और उन्होंने बहुत सरदर्दी के बाद जैसे तैसे हम लोगों को शान्त किया। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि मुझे उस जगह पर तो नहीं—जिसके लिए इतना बवंडर उठ खड़ा हुआ था, लेकिन ठीक उस के सामने बैठने के लिए जगह मिल गई। जगह मिल जाने के बाद तो मुस्टंड बार बार मेरी ओर घूँसा रहा और न मालूम क्या सोचता रहा ? उसे अपने पचपन इन्च के घेरे वाली तोंद को किसी प्रकार

कष्ट न पहुँचने से मतलब था और जब वह सिद्ध हो गया, तो फिर तनाजा ही किस बात का था ? या केवल शरीर के थोड़े से आराम के लिए चन्द मिनटों तक शारीरिक कष्ट !

(२)

गाड़ी द्रुत-गति से भाग रही थी और मैं खिड़की के बाहर शून्य की ओर देखता हुआ अपने भाग्य को बारम्बार कोस रहा था । आज यदि लक्ष्मी की अनुकम्पा होती तो क्यों इस सड़ियल तीसरे दर्जे में सफर करना पड़ता ? इतने ही में मुस्टंड महोदय तोंद के नीचे सरकती हुई धोती को ठीक करते हुए उठे और नीचे रक्खी हुई सुराही में से पानी पीने लगे । उन्होंने हल्के हाथ छः गिलास (१ गिलास=१ पाव) बड़ी तेजी से साफ कर दिये, पर कमबख्त टंकी जैसे अधूरी ही भरी रह गई । उस सुराही को सम्पूर्ण रूप से परास्त कर हो वे अपने दो गज के आसन पर विराजमान हुए । इधर मुसाफिरों में बढ़ती हुई कीमतों और जीवन-निर्वाह की कठिनाइयों पर गरमागरम बहस छिड़ी हुई थी । सबको बीच ही में रोकते हुए मुस्टंड महोदय ने उसमें भाग लेना आरम्भ किया—‘मुझे से पूछो ! मेरे जैसे अकेले आदमी को इस जमाने में कम से कम ढाई सौ-रुपया तो खाने-पीने के बिल के ही चुकाने पड़ते हैं । उस पर भी होटल वाले मेरी सूरत तक से घबराने लगते हैं । जब भगवान ने इतना बड़ा पेट दिया है तो उसकी रक्षा करना, मैं भगवान की सेवा करना मानता हूँ, चाहे उसमें मुझे किसी भी रास्ते को क्यों ना अपनाना पड़े ।’.....यह सुनकर मुझे हँसी आई, साथ ही उस पेट पर दया भी । मुझे मुस्टंड महोदय को नीचा दिखाने के लिए इन बातों को लेकर उड़ाना ही पड़ा और जब इस वाद-विवाद प्रतियोगिता में वे सिर के बल गिर पड़े तो शायद सब लोगों के सामने अपनी भैंप मिटाने के लिए पूछने लगे — ‘एम० ए० मालूम देते हैं ।’

‘कैसे ?’—उत्तर देने की कोई इच्छा न होते हुए भी मेरे मुँह से न जाने कैसे निकल गया !

‘आपकी हर बात से यही ज्ञात होता है, इसलिए ।’

‘अजी, एम० ए० होने से क्या होता है ?’

‘बिल्कुल ठीक कहते हैं आप ! हम इस के बिना भी आप लोगों से आगे निकल जाते हैं !’

‘असली एम० ए० तो आप लोग ही हैं ?’

‘यू० पी० के मालूम देते हैं !’

‘यह आपको कैसे पता चला ?’

‘आदमी भी कहीं छिपा रहता है ? मैं तो नक्शा देखकर ही भोंप जाता हूँ !’

‘बड़े विचित्र हैं आप !’

‘पूछिये मत सब भगवान की देन है ! और आप ?’

‘मैं तो आपकी दुम के बराबर भी नहीं !’

‘क्या नाम है आप का ?’

‘मुझे कैलाश कहते हैं !’

‘कैलाश !’—जैसे एक विस्मृत बात को याद करके उन्होंने एक बार फिर पूछा !

‘आप को कोई सन्देह है ?’

‘हाँ उसी को दूर करने के लिये आप से कुछ पूछ रहा हूँ ।’

‘शौक से अवश्य पूछिये’.....

‘उन्होंने प्रश्नों का वही क्रम जारी रखते हुए आगे पूछा—‘जोधपुर में अध्यापक तो नहीं हैं !’

‘आप ठीक कहते हैं !’

‘शांति बाबू बड़े भले आदमी थे । उन्हें मैं आजन्म नहीं भूल सकता !’.....

अपने पिता तथा नौकरी का सही-सही विवरण सुनकर मैं चौंक पड़ा और मुँह से यकायक निकल गया—

‘आप कोई ज्योतिषी हैं ?’

‘नहीं’

‘आप की बातों से तो यही स्पष्ट होता है ।’

तुम नहीं जानते, मैं तुम्हारा मामा होता हूँ ।’

‘ऐं, मामा जी !’

‘हाँ, यही’

‘तब तो सचमुच मेरे से बड़ा भारी अपराध हुआ । क्षमा करिये, मुझे क्या पता था कि आप मेरे.....’

‘अब भूल भी जाओ उसे ! आओ मेरे पास बैठो । रेल में तो ऐसा हो ही जाया करता है ।’

(३)

अपने मामा को मैं तो सर्वथा भूल सा बैठा था, क्योंकि जब माता-पिता जीवित थे तब मैं करीब चार वर्ष का था । उस समय की बातें किसे याद रहती हैं ? उन दिनों मामाजी का आना जाना अवश्य लगा रहता होगा और तब शायद इनसे मेरा मिलन भी हुआ हो, लेकिन उसके बाद, जहाँ तक मुझे याद है, मैंने इन्हें कभी नहीं देखा । माता-पिता जीवित होते तो मामाजी मेरे जीवन के एक अभिन्न अंग बन ही गये होते, इसमें क्या सन्देह ? लेकिन मुझे उनके न रहते हुए यह क्या पता था कि एक दिन मेरा परिचय उनमें इतने भयंकर रूप में होगा ! यदि मुझे उसका कुछ भी आभास होता तो मैं मामाजी जैसे प्रिय व्यक्ति के साथ ऐसा अन्याय कभी न कर बैठता ! इस प्रकार जब वे मेरे मामाजी सिद्ध हो चुके तो मुझे उठकर उनके पास बैठना ही पड़ा । बात-चीत के बीच मैं पता चला कि मामाजी व्यापार सम्बंधी काम के लिये अजमेर जा रहे थे । मैं तो कालेज सम्बन्धी कार्य से निवृत्त होकर जयपुर से जोधपुर लौट रहा था । जब फुलेरा नजदीक आने लगा तो मैंने मामाजी से अनुरोध किया कि वे एक-दो दिन के लिए अतिथि बनकर हमें अनुगृहीत करें । पहले तो उन्होंने बहुत आनाकानी की, लेकिन मेरे बहुत जोर देने पर वे राजी हो गये और कहा कि—अच्छा ! तुम्हारी इच्छा है तो मैं चला चलूँगा, बच्चों से भी मिलना हो जायगा और जोधपुर भी देख लूँगा ।’.....

फुलेरे पर हमने गाड़ी बदली। मामाजी से पूछने पर मालूम हुआ कि उन्हें आगरा से फुलेरा तक का ही टिकट मिल सका था। मैंने सोचा चलो, यह भी अच्छा हुआ। फुलेरे से मैंने उनके लिए जोधपुर का टिकट खरीद लिया तथा उनके खाने पीने के लिए मिठाइयाँ और पूरियाँ लाकर भी रख दीं। इतना ही नहीं इनके साथ मैंने अपने छः दिन के नारते को और मिलाया और अन्त में, खाना खाते समय थोड़ा बहुत लिहाज भी रक्खा, लेकिन मामाजी की कढ़ाई में यह सारा सामान जिस तरह समा गया, उसका कुछ पता न चला—कोई डकार तक नहीं सुनाई दी। इतना होने पर भी मुझे यह सन्देह बराबर बना रहा कि मामाजी कहीं भूखे तो नहीं रह गये हैं। मैं कुछ और सामान लाने के लिए भी जाने लगा, लेकिन गाड़ी चल दी। रास्ते में मामाजी मुझे अपने एक-एक सम्बंधी का बच्चा चिढ़ा खोलकर बतलाते जाते थे और मैं उनकी हाँ में हाँ मिलाता जाता था। मामाजी अजमेर के गुड्स क्लर्क विजय बाबू की प्रशंसा में पुल बाँध रहे थे। कहते थे—‘इस जीवन में मेरा एकमात्र सहारा वही है।’ यद्यपि मैं विजय बाबू से सर्वथा अपरिचित था। इस प्रकार मैं बातों ही बातों में अपने मामाजी सहित संध्या के सात बजे जोधपुर पहुँच गया।

(४)

घर पर आते ही दौड़े दौड़े मैंने सबको मामाजी के आने की खबर दी। तो प्रत्येक सदस्य ने बारी बारी से उन्हें विधिवत, दण्डवत किया, स्त्री ने उनके पैर छुये, बच्चे उन के गले लग गये और पड़ोसियों ने उन के आने पर अपूर्व हर्ष प्रकट किया। मुझे अपने मामाजी की पूरी पूरी खातिर करनी ही पड़ी। उन्हें ठहरने के लिये एक बड़िया कमरा दिया गया। खाने के लिए बड़िया भोजन बना। सैर सपाटे के लिये एक मित्र की कार माँगकर दरवाजे पर खड़ी कर दी गई। शाम को पिकनर का प्रोग्राम बना। कहने का अभिप्राय यह कि एक महमान के लिये मेरी हैसियत वाले आदमी को जितना करना चाहिए, उससे कुछ अधिक ही मैंने किया और क्यों न करता ? मैं तो बड़ा खुशनसीब था कि मामाजी इतने वर्षों के बाद प्रथम बार मेरे यहाँ आये थे। अन्यथा महमान और मामाजी जैसे व्यक्ति किसके यहाँ, कितने दिन तक ? मामाजी उस दिन के कार्य-क्रम से बहुत प्रसन्न हुए। हमारे घर में उनका यह पहला दिन था।

अपने घर में जिन लोगों को हमारे मामाजी के सदृश्य महमानों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि उनकी सेवा: सुश्रूषा करना राम-भक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। मैं तो यही समझता हूँ, अतः एक सच्चे और सद्व्यय भक्त की तरह मैं अपने भगवान की पूजा करता रहा, करता गया और दिन ढलते गये।

दूसरे, तीसरे, चौथे अथवा पाँचवें कहिये कि एक पूरा सप्ताह मामाजी को हमारे यहाँ रहते बत गया और हमें कुछ पता ही न चला। इन दिनों बड़िया बड़िया पक्वान बनते और सैर-सपाटों की धूम रहती। फिर तो मामाजी बिल्कुल वे तकल्लुफी से हमारे घर में व्यवहार करने लगे और धीरे धीरे इतने खुल गये कि उनमें तथा अन्य सदस्यों में कोई भेद ही नहीं रह गया। उस में कुछ बड़े होने में तथा मामाजी के नाते घर पर और विशेषतः मेरे ऊपर वे अपना पूरा पूरा रोब भी गँठने लगे। बात बात में उनकी और मेरी भिन्नता हो जाया करती थी। मेरी बातें चाहे वे कितनी ही सरल अथवा सही क्यों न होतीं, उनमें

अनावश्यक संशोधन करना वे अपनी शान समझते थे। मुझे कई बार चुप रह जाना पड़ता और कई बार खीझकर जब मैं उनसे तर्क करने लगता तो हार अनुभव करते हुए भी वे उसे स्वीकार नहीं करते थे। ऐसे समय उनके पास एक ब्रह्मास्त्र था, जिसका प्रयोग वे बहुधा किया करते थे— जानते हो, मैं तुम्हारा मामा हूँ..... यहाँ आकर मेरी बुद्धि मन्द हो जाती और मैं हार मानकर सारा दोष अपने ऊपर ले लेता। मामाजी का वह ब्रह्मास्त्र मेरे ऊपर धीरे धीरे कुल्हाड़े का काम करने लगा। फिर तो वे दिन में तीन-तीनवार इसका प्रयोग करने लगे। मुझे इसी के मारे घर के अन्य सदस्यों के सामने तथा कभी कभी जब और लोग भी बैठे होते, मुँह की खानी पड़ती थी।

(५)

एक दिन कमल की स्कूल से शिकायत आई कि वह कुछ नहीं पढ़ता और स्कूल में भागकर सारे दिन बाजार में मारा मारा फिरता रहता है तो मैंने गुस्से में आकर उसकी मरम्मत कर दी। मामाजी को कमल पर बड़ी दया आई और वे उसका रोना नहीं देख सके। उन्होंने बच्चे के सामने मुझे केवल डाँटा डपटा ही नहीं, वरन् एक लम्बा चौड़ा व्याख्यान भी दे डाला। इतना ही नहीं उस छोटे से किस्से को लेकर वे धीरे-धीरे आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पर पहुँच गये। मुझसे नहीं रहा गया। बाध्य होकर कहना ही पड़ा !—‘मामाजी आप सब कुछ ठीक कहते हैं, लेकिन आज यदि इन बच्चों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रखा तो वे सिर पर सवार हो जायेंगे और कल, आप तथा मुझे बाजार में बेचकर रसीद भी नहीं देंगे।

‘तुम गलत कहते हो। बच्चों को लाड़-प्यार से जितना समझाया जा सकता है, उतना मारने-पीटने से नहीं।’

‘और यदि वे लाड़-प्यार से नहीं मानें तो’

‘जरूर मानेंगे, ऐसा कभी नहीं हो सकता।’

‘नहीं मामाजी, कमल तो बड़ा उधमी हो गया है। मैंने लाड़-प्यार से भी देख लिया। यह अपनी हरकतों से बाज आता ही नहीं’

‘मैं तो इसे तुम्हारी ही कमजोरी कहूँगा.....’

‘तो आपके कहने का मतलब यह है कि इन्हें कुछ कहा ही न जाय !’

‘बिल्कुल’

‘यह कैसे सम्भव है ?’

‘सब-कुछ सम्भव है, यदि करना चाहो !’

‘मैं आपसे असहमत हूँ।’

फिर वही, ‘जानते हो मैं तुम्हारा मामा होता हूँ !’

‘बार बार जानते हो मैं तुम्हारा मामा होता हूँ !’ से मैं तंग आ गया था। इस बार मैं उनके ब्रह्मास्त्र को सहन नहीं कर सका। मैंने सोच समझकर उत्तर देते हुए कहा—‘मैं जान गया हूँ आप मेरे मामाजी होते हैं, लेकिन मामाजी हो जाने भर से ही तो आप ईश्वर नहीं बन जाते कि जिस समय जैसा नाच नचाना चाहें, नचा लें और मैं नाचता जाऊँ !’.....

यह मैं कब कहता हूँ !’

‘मैं तो यही देख रहा हूँ कि आप मेरी हर बात में अपना यह अधिकार ठोक-पीटकर जता देना चाहते हैं, जैसे मामाजी की इस मोहर के बिना कोई बात इस दुनियाँ में सही होती ही नहीं। सही के लिए तो मुझे कुछ नहीं कहना, लेकिन गलत के लिए तो चाहे मामाजी हों चाहे माई जी, मैं मानने के लिए तैयार नहीं हूँ और इसके लिए आप बुरा मानें चाहे भला’

‘अच्छा भाई, तुम जीते और मैं हारा ! अब मैं यहाँ से कल चला जाऊँगा । जब हम घर में मेरी कोई कोई इज्जत ही नहीं है, तो यहाँ ठहरने से क्या लाभ ?’

‘आपकी इच्छा, ठहरने अथवा नहीं ठहरने के लिये तो मैंने कुछ नहीं कहा है ?’ और यदि आप मेरे शब्दों का यही अर्थ लें तो यह आपकी बड़-बुद्धि, इसमें मेरा क्या दोष ?’

‘कैलास ! छोटे मुँह बड़ी बात मत करो ! जानते हो मैं तुम्हारा कौन होता हूँ ?’

‘हाँ, अब मैं अच्छी तरह जान गया हूँ, आप मेरे मामा होते हैं ?’

‘तो जाकर अपना काम करो ?’

‘अच्छा मामाजी, चला जाता हूँ ।, ...’

‘मुझे अनेकों बार मामाजी के पास से खीझ कर उठ जाना पड़ता, लेकिन मामाजी कभी भी इस बात का विचार नहीं करते कि इन बातों का घर पर क्या प्रभाव पड़ता होगा ? बस, छोटी-छोटी बातों को लेकर ही मामाजी दिन भर हम सब को कोसते रहते थे । मामाजी को मेरे यहाँ आये दम दिन हो गये, पन्द्रहवा भी लग गया, लेकिन वे अपने स्थान पर अड़े रहे — हिलने तक का नाम नहीं लिया । राशन का जमाना नपातुला राशन मिलता था । चोर बाजारी से खाने-पीने की चीजों को खरीदने के लिए मेरी जेब में पैसे नहीं थे । तनख्वाह में गुजारा ही मुश्किल में चलता था । फिर मामा जी तो अकेले ही चार राशन-कार्ड थे । घर में जा कुछ भी पहले से बचाया हुआ रखता था, वह सबका सब चौपट हो गया । पड़ोसियों से उधार मँगाना पड़ा, आखिर उधार की भी एक सीमा होती है । धीरे-धीरे हम सब लोग मामाजी से ऊबने लगे । मामाजी जाने का नाम क्यों लेते ? वे तो हमारे यहाँ अपनी सुसुराल का सा सुख अनुभव कर रहे थे — खाना, पीना और मौज उड़ाने के मिवःय उन्हें और कोई काम हा क्या था ? मुसीबत तो मेरी थी, अकेली जान के पीछे सौ-सौ जञ्जाल लगे हुए थे । अब मामाजी ऐसे जम गये कि उन्हें हिलाना मुश्किल हो गया । मैंने अपने महमान को जितना सस्ता समझा उतना ही वह मंहगा सिद्ध हुआ । अन्त में, जब मैंने अच्छी तरह देख लिया कि मामाजी स्वयं तो हिलने में रहे तो मुझे ही उन्हें बसकाने के व्यूह रचने पड़े ।

सबसे पहले मैंने उनके अतिथि-सत्कार में बड़ी तेजी से और सफाई से कमी करना शुरू किया । पहले तो मैं उनके साथ खाना खाने बैठ जाता था, लेकिन अब मैं पहले से ही खा-पीकर तैयार हो जाने लगा । घर में भी सभी सदस्यों से कह दिया कि वे भी पहले से ही खा-पीकर तैयार रहा करें और बाद में जैसा जो कुछ बचा हो, वह उन्हें परोस दिया जाय । पूरियाँ और दो-तीन साग सब्जों के स्थान पर मोटी मोटी जौ की रोटियाँ तथा दाल तक की नौबत या पहुँची जिनसे मेरे पेट में तो दर्द होने लगता पर उन सबको मामाजी बड़ी आसानी से पचा जाते थे । हम लोग सुबह का खाना शाम को और शाम का खाना सुबह

को भी परोसने लगे, लेकिन वह भी उन्हें गरमागरम लगता था। मामाजी की पखाल में सड़ा-गला, कच्चा-पक्का और रूखा-सूखा, प्रायः सभी तरह का भोजन समा जाता और किसी तरह की कोई शिकायत सुनने में नहीं आती थी। मालूम होता, ईश्वर की ओर से उन्हें कोई विशेष वरदान प्राप्त था; जिसमें उनकी काया पर किसी प्रकार का प्रभाव हो नहीं पड़ सकता था। ऐसी अवस्था में मुझे दूसरा उपाय ढूँढ़ना पड़ा।

फिर मैंने बातों ही बातों में लड़ाई मोल लेने की सोच ली ! सोचा तंग आकर अपना रास्ता ले लेंगे, इसलिए मैं उनकी प्रत्येक बात में अड़ जाता। मामाजी कितना ही सही क्यों न कहते, मैं जान-बूझकर उनकी मजाक उड़ाने में लग जाता वे कहते सिगरेट पीना हानिकारक है, मैं कहता 'बहुत लाभदायक है। आप क्या जाने ग़म भुलाने का यह एक सीधा सस्ता और सरल उपाय है। मैं एक सिगरेट पीकर चार घंटे कसकर काम कर सकता हूँ ! आप तो न मालूम महीने की मन भर तम्बाकू पाँक लेते होंगे, फिर भी कुछ नहीं कर सकते,' इस प्रकार हर बात में उनका और मेरा मत-भेद रहता था। केवल मैं ही नहीं, वरन् घर के सभी लोग मेरे आदेशानुसार उनका उपहास करते थे, लेकिन वे न मालूम क्या सोचकर चुपचाप सह लेते। इस से भी मुझे कोई कामयाबी नहीं मिली।

इसके बाद कुछ दिनों तक उपेक्षा-भाव काम में लाया। दो-तीन दिन तक घर में उनसे कोई नहीं बोला और न किसी ने उनके लिए किसी बात की परवाह ही की। मैं भी कालेज से आकर जान-बूझकर बाहर निकल जाता। मामाजी स्वयं ही रसोई घर में घुसकर खाना ले आते, पानी पीने की इच्छा होती तो स्वयं ही उठकर पी लेते और अवकाश के क्षणों में उपन्यास से जी बहला लेते ! इस प्रकार उन्होंने अपनी दैनिक जीवन-चर्या ही ऐसी बना डाली कि उसमें किसी के बोलने की आवश्यकता ही न पड़ती थी। मामाजी को इस क्षेत्र में भी एलेक्जेंडर देवकर मैं हैरान हो गया। मेरा उन पर कोई वश नहीं चली सका सो नहीं चल सका।

इतवार के एक दिन मैं अपनी स्त्री तथा बाल-बच्चों सहित करीब बारह बजे खा पीकर अपने मित्र से मिलने के बहाने बाहर निकल गया। उस दिन जान-बूझकर हम वहाँ टैडियन के फास्ट शो में चले गये। रात्रि के साढ़े नौ बजे घर लौटे। मुझे निचश्य रूप से मालूम था कि आज इस चाल से मामाजी को रात भर भूखे पेट कराहना पड़ेगा और वे सुबह की गाड़ी से चल देंगे। दरवाजे में घुसते ही देखा धुँये से सारा घर घुट रहा था। मामाजी रसोई में बैठे पूरियाँ निकाल रहे थे। बाप रे बाप ! उस समय का दृश्य देखकर तो मैं दङ्ग रह गया। पसीने से तर मामाजी कढ़ाई से मलह-युद्ध कर रहे थे। रसोई बनाने की विद्या में पूर्ण पटु वे उस छोटे से रसोई घर में ऐसे विराज मान थे कि शायद ही मेरे जैसा कोई व्यक्ति उसमें पाँव रख सके। धी, आटे तथा मसाले की तो मौत आई थी—सब अपना-अपना साकार-रूप छोड़कर निराकार बन गये। मामाजी उनका पीछा कब छोड़ने वाले थे ! मुझे देखकर वे तनिक मुस्कराये और बोले—मैंने सोचा तुम लोग तो मित्र के यहाँ खा-पीकर आओगे, इस विचार से मैंने तुम लोगों का कष्ट बचाते हुए स्वयं ही भोजन तैयार कर लिया है। तुम तो नहीं आओगे न ?'

मैंने मन ही मन में उन्हें गालियाँ देते हुए उत्तर दिया—‘नहीं मामाजी, नहीं, आप आराम से खाइये । हम तो खा-पीकर आये हैं ।’

और उस दिन हम सब लोगों को उन्हें धन्यवाद देते हुए भूखे पेट सो जाना पड़ा ।

अब तो मामाजी निःसन्देह मेरे जीवन में एक गूढ़ पहेली बन गये, जिसे सुलझाना अत्यन्त ही कठिन हो गया । बहुत सोचा-विचारा, लेकिन कोई सीधा रास्ता नहीं दिखाई दिया । मित्रों से राय ली । वे भी हँसने लगे और बेसिर पैर की बातें बनाकर रह गये । मेरे लिए मामाजी का एक-एक पल भारी होने लगा । अब तो घर से डंडा लेकर मार भगाना शेष रह गया था । एक दिन मैं इन्हें मामाजी के रूप में पाकर कितना प्रसन्न हुआ था और आज वे धीरे-धीरे मेरी आँखों से इतने नीचे गिर गए कि मैं उनसे घृणा तक करने लग गया ।

लगातार बीस घंटों तक विचार करने के अनन्तर मामाजी की तरह मुझे भी निर्लज्जता का एक माग दिखाई पड़ा और उस पर चलना ही अब मेरा अन्तिम उपाय रह गया था । विजय बाबू उनके जीवन का एक मात्र महारा थे और यह बात मुझे उनके जेब के पत्रों द्वारा भी सिद्ध हो गई थी । मैंने उसी का लाभ उठाया ।

एक दिन प्रातः जब हम सब लोग खाना खा चुके थे तो मैं बाहर खिसक गया । मामाजी चारपाई पर लेटे-लेटे अखबार पढ़ रहे थे । इतने में ही डाकिये ने उन्हें एक तार लाकर दिया । तार उन्हीं विजय बाबू का था । उसमें लिखा था—‘मृत्यु-शैया पर पड़ा हूँ, तुरन्त चल दीजिये ।’...मामाजी उस तार को पढ़कर ऐसे चिन्तित हो गये जैसे उनका कोई ग्वां गया हो । जब मैं मकान लौटा तो देखा वे सामान बाँधकर अजमेर जाने के लिए तैयार बैठे हैं । मुझे अपने तीर के ठीक निशाने पर लग जाने का अपूर्व हर्ष हुआ । सब कुछ जानते हुए भी मुझे कर्गव्य-वश पछुना ही पड़ा—

‘आज आप इतने उदास क्यों हैं ?’

‘क्या बताऊँ ? एक तार आया है ?’

‘तार ! कहाँ से ?’

‘अजमेर से’

‘किसका ?’

‘विजय बाबू का’

‘खैरियत तो है !’

‘वे मृत्यु-शैया पर हैं’

‘तो फिर आप अब चले जायेंगे !’

‘हाँ, आज शाम की गाड़ी से !’

‘नहीं मामाजी, आज हम आपको नहीं जाने देंगे !’

‘नहीं भाई, विजय के लिये तो मुझे जाना ही पड़ेगा और कोई होता तो दो-चार दिन की छोट मैं यहाँ कुछ दिन और रह जाता !’

मन ही मन यह कहते हुए कि आप अपनी यह कृपा जाने दीजिये, मैंने उत्तर दिया—‘आपके आने से हमें जितनी खुशी हुई थी, आज आपके जाने से हमें उतना ही दुःख हो रहा है, इसलिये आप—’

‘जहाँ मृत्यु का प्रश्न है, वहाँ बच्चों जैसी बातें नहीं किया करते, समझे !’
‘अच्छा ! आपकी आज्ञा है तो मैं बाल-हठ नहीं करूँगा !’

मैंने जिस गम्भीर वातावरण की कल्पना की थी ठीक वैसा ही अब उपस्थित हो गया था और उसमें मुझे बड़ी होशियारी से काम करना पड़ा। मामाजी को मैंने इस बात का रत्ती भर भी शंका नहीं होने दिया कि मुझे उनके साथ सहानुभूति नहीं है। इसीलिए हृदय में सुख का अनुभव करते हुए भी मैंने अपने चेहरे पर उदासी के भाव ही प्रकट किये। इसका अभ्यास मैंने पहले से ही कर लिया था। बराबर एक महीना और सत्तरह दिन के बाद मामाजी जाने के लिये तैयार हुए। हमारे घर से उन्हें बहुत अच्छी विदाई दी गई। कमल पूजा की थाली लेकर मामाजी के पास आया, जिसमें केसर, कुंकुम, चावल तथा पन्द्रह रुपये थे। उसने सबसे पहले मामाजी के चरणों का स्पर्श किया, फिर मस्तक पर तिलक निकाला और अन्त में, वे पन्द्रह रुपये हाथ पर रख दिये। मामाजी ने रुपये लेकर चट से जेब में डाल दिये। ये हमारी ओर से उनके अजमेर तक पहुँचने का सफर-खर्च था ! तांगे में बैठकर हम लोग स्टेशन पहुँचे। गाड़ी चलने ही वाली थी। जब छूट गई और स्टेशन से करीब एक मील दूर चली गई तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे सिर पर का एक बड़ा बोझ उतर गया।

+

+

+

आज उस घटना को व्यतीत हुए चार वर्ष होने आये हैं और अब यह मिथ हो चुका है कि वे मेरे मामा नहीं थे !



शेख सलीम

लेखक—श्री वैकुण्ठ नाथ मेहरोत्रा एम० ए०

काश्मीर और पाकिस्तान की सीमा पर शान्त तथा रमणीक पहाड़ों की तलहटी में बसा हुआ वह गाँव काफी बड़ा, खुशहाल, और महत्वपूर्ण था। खुशहाल था इसलिये कि वहाँ, हर हफ्ते, एक बहुत बड़ी बाजार लगा करती थी, जिसमें, दूर दूर के सौदागर अपना सामान लाते थे। और महत्वपूर्ण था राजनैतिक दृष्टि से क्योंकि वहाँ से काश्मीर की सीमा में घुसने का बड़ा सरल मार्ग था।

वहाँ के सब से बुजुर्ग और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे शेख सलीम। वही एक तरह से गाँव के मुखिया भी थे। वैसे तो गाँव में उमर में उनसे बड़े बहुत से लोग पड़े पड़े मौत की घड़ियाँ गिन रहे थे पर सम्मान था उनका ही सबसे अधिक। हर मामले में वही अग्रग्राह्य रहे और गाँव का प्रतिनिधित्व करते। सारा गाँव उनको अपने पिता की तरह मानता और उनकी आज्ञा का पालन भी करता। वह दयालु, विनोद प्रिय तथा उदार विचारों के थे, पर यदि अनुशासन के विरुद्ध कोई भी बात होती तो उनके क्रोध का पारावार न रहता।

और जब से क्वाथलियों और पाकिस्तान का आक्रमण आरम्भ हुआ, तब से तो वह गाँव एक युद्ध-शिविर में परिणत हो गया। आक्रमणकारी सहधर्मों थे, इसलिये प्रारम्भ में कुछ अड़चन हुई पर शेख सलीम ने स्थिति सम्भाल ली। एक दिन उन्होंने सारे गाँव की एक सभा बुलाई और बड़े जोश के साथ भाषण देते हुए कहा :—

“.....जब तक इस गाँव का एक भी मर्द जीता रहे, इस पर दुश्मन के नापाक कदम नहीं पड़ने चाहिये। मैं जीते जी आप लोगों की रहनुमाई करूँगा..... और अगर इस पाक काम में मैं काम भी आजाऊँ तो आप लोगों को मायूस होने की ज़रूरत नहीं.....आप में से हर एक सरदार होने की काबलियत रखता है..... हमारा गाँव सरहद का काफी खास और अहम मुकाम है... दुश्मन इस पर बार बार हमला करेगा.....इसे हर तरह से फतह करने की कोशिश करेगा.....पर, खबरदार! हमें अहद करना होगा कि हमारे जीते जी वे सरहद के इस पार न उतर पायेंगे... हम अपने वतन की हिफाजत करेंगे.....चाहे जो भी कीमत इस के लिये देनी पड़े.....”

कहते कहते वह जोश से तमतमा उठा। बूढ़ी उमर का आदमी, जोश में जवानों से कम न लग रहा था। सारे मजमे ने उसकी हामी भरी और जोर से तालियाँ बजाईं। थोड़ा रुक कर उसने फिर कहानी शुरू किया :—“और याद रखिये, इस वक्त हमारा कोई मजहब नहीं है..... मुल्क या यों कहिये वतन-परस्ती ही हमारा मजहब है। मैं जानता हूँ..... हमलावर भी मुसलमान हैं.....और हममें से भी बहुत से मुसलमान हैं.....पर क्या वे सच्चे मुसलमान हैं ?..... जो बिना बात अमन पसन्द पड़ोसियों पर

हमला करते हैं... मैं पूछता हूँ क्या वे कुरान की बताई हुई राह पर चल रहे हैं ?..... वे हर तरह से हमें जीतने की कोशिश करेंगे.....लालच भी दे सकते हैं.....पर आप लोग इससे खबरदार रहियेगा.....हम लोग हिन्दू और मुसलमान...दोनों ही तो साथ साथ रहते हैं कभी तो कोई भगड़ा नहीं हुआ.....न कोई फर्क मालूम हुआ.....आज ये छुटेरे हमलावर हम से मज़हब के नाम पर वतन फरोख्त करने को कहते हैं.....मज़हब के नाम पर जहर फैला रहे हैं.....खबरदार! इस चाल में कोई न फंसे.....नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा ।... ..”कहते कहते बुढ़ा हाँफने लगा । लोग एक आवाज़ में चिल्ला उठे :—

“हम जान देंगे पर वतन में छुटेरों को न घुसने देंगे.....हम अहद करते हैं..... आपकी रहनुमाई में जी जान से लड़ेंगे —.....”

ये जोशभरी आवाज़ें सुन कर शेख सलीम की छाती दूनी होगयी । उनकी आँखों में खुशी के आँसू छलछला आये ।

फिर धीरे धीरे उन्होंने गांव वालों को फौजी दंग पर तैयार करना शुरू किया । करीब करीब हर गांव वाले को एक एक बन्दूक दे दी गई । रोज़ शेख सलीम गांव के नौजवानों को कवायद करवाते, और इस में उनका एकलौता लड़का गफूर उनका बहुत हाथ बटाता । वे गफूर को जी जान से प्यार करते थे, क्योंकि वही उनके बुढ़ापे का सहारा था; उनके खानदान का चिराग था । और गफूर ने भी बाप के काम में ऐसा हाथ बटाया कि वह निहाल हो गये ।

कई बार दुश्मनों ने हमले किये पर शेख सलीम ने उनके दांत खट्टे कर दिए और उन्हें उल्टी मुँह की खानी पड़ी ।

फिर, बहुत दिनों तक सरहद के उस हिस्से में दुश्मन दिखाई न दिये । एक दिन गांव में एक फकीर आया । मांगते मांगते शेख सलीम के दरवाज़ों पर भी पहुँच गया । बूढ़ा सतर्क हो गया ।

“कौन हो तुम ?” उन्होंने रोबदार आवाज़ में पूछा ! “हम खुदा के बन्दे हैं दरवेश..... आप ऐसा सवाल एक फकीर में क्यों करते हैं ?” उमने बड़े इत्मीनान से उत्तर दिया ।

“क्यों नहीं !” आजकल लड़ाई के दिन हैं...हो सकता है तुम खुफिया तौर पर दुश्मन की कार्रवाई कर रहे हो” । “खुदा की इबादत करता हूँ.....मुझे लड़ाई भगड़े से क्या मतलब” । खैर अधिक बातें नहीं हुई और फकीर आगे बढ़ गया । गाँव के एक छोर पर उसने अपना अड्डा जमा लिया । हर रोज़ वह भोले भाले गाँव वालों का हाथ देखता और उन्हे तरह तरह की बातें बताता । फकीर की बताई हुई जो दो चार बातें संयोग से सही निकल गईं, उन्होंने उसका मान बढ़ाया, और अधिकांश जो झूठी निकलीं उनके लिए भाग्य और भगवान दोषी मान लिए गए । धीरे धीरे उसने इतना रोब जमा लिया कि गांव वालों ने उसके लिये एक छोटी सी कुटिया बना दी और वह आराम से

उसमें रहने लगा। वह ऐसी चालाकी से बातें करता कि थोड़े दिनों के बाद शेख सलीम ने भी उसके ऊपर शक करना छोड़ दिया और उसे एक बड़ा नज़मी समझने लगे।

पर वह चुपके चुपके अपना काम करता रहा। उसे गांव वालों की एकता को तोड़ना था। उनमें मज़हब का ज़हर फैलाना था; और उसके लिए उसने गफूर को ही चुना। गफूर, करीब करीब, रोज़ ही उसके पास कुछ पूछने जाता और वह तरह तरह की बातें बता कर उसे फंसाता जाता। एक दिन उसका हाथ देखते हुये आश्चर्य भरी मुद्रा बना कर बोला,

“शेख गफूर ! तुम्हारे हाथ में बादशाह होना लिखा है...ये देखो !...यह लाइन कितनी दूर तक सीधी चली गई है...लगता है खुदा तुम को बहुत दिनों तक तख्त पर बैठायेगा।”

नज़मी की बात सुन कर गफूर की उत्सुकता बढ़ गई। उसने लालच भरी निगाह से उसकी ओर देखते हुये पूछा, “सच ?”

“शक करते हो...क्या मेरा नज़्म कभी ग़लत भी होता है ?” उसने गंभीरता से उत्तर दिया, “पर हाँ !...किमी को बताना मत; नहीं तो सारा अस्तर जाता रहेगा।

और इस प्रकार गफूर की उत्सुकता बढ़ा कर वह कुछ दिनों के लिए चुप हो गया। उस दिन से गफूर की अज़ब हालत हो गई। उसने बात किसी से बताई नहीं और मन ही मन बादशाहत के सुहावने सपने देखने लगा। फकीर के प्रति उसकी श्रद्धा दिन-प्रति दिन बढ़ती ही गई।

एक दिन जब वह उसके पास गया तो उसने फिर उसी बात की चर्चा करते हुये उससे कहा,

“क्या शेख !...क्या तुमने कभी सोचा कि तुम कैसे बादशाह हो सकते हो ?...मैं जानता हूँ तुम पाकिस्तान के बादशाह होगे...तुम्हे सुन कर ताज़ुब होगा पर यह तो होना ही है...तुम्हारी तकदीर में ऐसा ही लिखा है...” कह कर वह थोड़ा रुका।

“पाकिस्तान का ?...पर वह तो हमारा दुश्मन है” बीच में बात काटते हुये गफूर ने पूछा।

“हाँ शेख !...पाकिस्तान के...तुम्हारी तकदीर में ऐसा ही लिखा है मेरा नज़्म...आज तक कभी झूठा नहीं हुआ है...” उसने उसे समझाते हुये कहा। “तो यह सब होगा कैसे ? मेरे तो कुछ भी समझ में नहीं आता...” वह ताज़ुब से बोला।

“होगा और ज़रूर होगा...मैं जानता हूँ यह कैसे होगा—पहले तुम पाकिस्तान से हमदर्दी दिखाओ...अपने अब्बा के काफिराना चंगुल से अपने को छुड़ाओ...फिर सब अपने आप हो जायेगा।”

और इतनी बात करके वह इस विषय पर फिर चुप हो गया।

धीरे धीरे गफूर की मनोदशा बदलने लगी। वह दिन-रात बादशाहत के सपने देखने लगा और फकीर की बातों में पूरी तौर से फंस गया। अपने पिता की बातें अब उसे जहर लगने लगीं; पर वह कभी भी अपने मन की बात जुबान पर न लाता। चुपचाप, लोगों को अपने पिता के विरुद्ध और पाकिस्तान के पक्ष में भड़काने लगा। वह धर्म की तुहाई देता और उन्ही लोगों से ऐसी बातें करता जिन्हें वह दुर्बल चरित्र वाला समझता था।

धीरे धीरे कुछ लोग उसके पक्ष में आने लगे। यह सब इतने छुपे-छुपे होता कि उसके पिता को सन्देह करने का अवसर ही न आता।

फकीर ने मौका देख कर एक दिन उसमें फिर कहा, “अब तो दिन कुछ नज़दीक आते नज़र आते हैं - मेरी एक तरकीब मानोगे?”

“क्यों नहीं! ... हुक्म दीजिये” गफूर ने दीनता से उत्तर दिया। “अपने अब्बा से कहो कि गांव भर की सब बन्दूकें और गोलियां घर पर रखवा लें - अभी तो हमले का डर है नहीं सफाई करवाने का बहाना बना देना” फिर एक दिन चुपचाप सब लेकर सरहद पार कर जाना... पाकिस्तानवाले यह सब देख कर बहुत खुश होंगे तुम को बड़े बड़े ओहदे देंगे और फिर, धीरे-धीरे, तुम वहां के बादशाह हो जाओगे और घबराना मत... तुम मजहब की खातिर यह सब करोगे इसमें खुदा बहुत खुश होगा... और मैं तो तुम्हारे साथ चलूँगा ही - डरने की कोई बात नहीं; सब कुछ ठीक करवा दूँगा ” इतना कह कर वह गफूर की ओर प्रश्न भरी मुद्रा में देखने लगा।

मैं ऐसाही करूँगा - आप मेरी मदद करेंगे इसमें मुझे बड़ी तमन्नी है” गफूर पर उसकी चाल पूरी तौर से चल गई थी।

और फिर गफूर ने बातें बना बना कर अपने पिता को सब बन्दूकें और गोलियां अपने घर रखने पर राजी कर लिया। भोला और सच्चा शेख सलीम समझा कि उसका बेटा यह सब बतन की हिफाज़त के लिए कर रहा था।

फिर उस फकीर ने गफूर से सब बातें तय कर लीं। एक दिन, बहुत रात गये, फकीर चार-पाँच आदमियों के साथ शेख सलीम के घर पर गया। गफूर पहले ही से तैयार था। उसने चुपचाप उन लोगों को पिछवाड़े की कोठरी में घुसा लिया। इन्हीं कोठरी में सब बन्दूकें और गोलियाँ रखी थीं। बाहर अन्धेरे में आठ दस घोड़े कमे खड़े थे।

कुछ खटपट की आवाज़ से शेख सलीम की नींद टूटी। उन्हें कुछ शक हो गया। और वे चुपचाप अपनी बन्दूक भर कर पिछवाड़े की ओर बढ़े। चलते चलते उन्होंने धीरे से गफूर की आवाज़ दी पर कोई उत्तर न पाया। अब वे और भी घबराये। उन्हें पूरा सन्देह हो गया कि कुछ दाल में काला अवश्य है। तभी उन्होंने ओर से चिल्ला कर पुकारा—“गफूर! ओ गफूर!!”

पिछवाड़े से गफूर ने धीरे से उत्तर दिया, अब्बा !!!...आगे न बढ़ना वरना गोली मार दूँगा ...मैं जा रहा हूँ पाकिस्तान मुझे शर्म आती है तुम जैसे काफिर का बेटा कहलाने में ...”

शेख सलीम सन्न रह गये। एक क्षण को तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हुआ। लगा जैसे सपना देख रहे हों। पर दूसरे ही क्षण वे सतर्क हो गये। खून—क्रोध और घृणा से खौलने लगा। यह सब उनसे बरदाश्त न हो सका। उनका एकलौता बेटा उनमें इस प्रकार कह रहा था। यह उनमें किसी प्रकार भी सहन न हो सका। उनका लाड़ला उन्हीं के आदर्शों की विपक्षता कर रहा था, और उन्हें अपना शत्रु बना रहा था। इसमें उन्हें एक बड़ा धक्का लगा पर साथ ही साथ क्रोध भी बहुत आया। उन्होंने बन्दूक तान ली और कोठरी में टार्च फेंक कर देखा—गफूर उस फकीर तथा पाँच और आदमियों के साथ बन्दूकें घोड़ों पर लाद रहा था। उनका सारा शरीर क्रोध से कांपने लगा और वे चिल्ला पड़े—“खबरदार !...एक कदम भी आगे बढ़ा तो अभी मार दूँगा...गद्दार कहीं के...शैतान !...तू इस जासूस की बातों में आकर बतन-फरोशी कर कहा है ?...तू मेरा बेटा नहीं है - दर्गिज़ नहीं...मुझे पूरा यकीन है...”

तब तक एक गोली उनके पाम से मन में निकल गई। वे बच कर फिर चिल्लाये, “गफूर !...मान जा...वरना मैं अभी तुझे गोली मार दूँगा...तू गद्दार है...बतन—फरोश !! दगाबाज !!...”

तभी गफूर उपेक्षा में हँस कर बोला, “अरे काफिर !...बकवास बन्द कर...मुझे तो खद इसकी शर्म है कि एक काफिर मेरा बाप है -”

तभी शेख सलीम ने आवाज़ से अन्दाज़ लगा कर अन्धेरे में गोली चला दी। सरे ही क्षण गफूर चीख कर जमीन पर गिर पड़ा। बन्दूक की आवाज़ में बंदूकों में लदे हुये घोड़े इधर-उधर भागे। तब तक वहाँ साग गाव जमा हो गया। फकीर और उनके साथी घेर लिए गये।

और देखते ही देखते चारों ओर मशालें जल उठीं। शेख सलीम ने पाम आ कर देखा—गफूर की लाश खून से लथपथ पड़ी थी। तभी एक आदमी चिल्ला उठा—

“अरे ! यह क्या !! गफूर मियाँ के गोली लग गई !!”

“हाँ ! इस गद्दार कुत्ते को मैंने अपने हाथों में गोली मारी है यह मेरा बेटा नहीं...बतन-फरोश...”

कहते कहते वे फिर क्रोध में कांप उठे। सामने वही फकीर और पाँचों आदमी कैदी बने खड़े थे। उन्होंने बन्दूक उठाई और पारी पारी में उन सब को भी गोली का निशाना बना दिया। गाँव वाले इक्के-बक्के से खड़े उनके मुँह की ओर ताकते रह गए।



करणी

लेखक—श्री विष्णु अम्बालाल जोशी, अजमेर ।

(१)

छः बजे होंगे, अधिक नहीं । मैं कॉलेज से पढ़ाकर घर आया ही था, यकायक आकाश में हलचल हुई और फिर सर्वत्र अभेद्य अंधकार छा गया । भंभा के गर्म भोके प्रवल थे और बालूकण उपल-से तीखे बरसने लगे थे । बंद खिड़कियाँ ऐसी खड़खड़ा उठती थीं कि अब उखड़ीं, तब उखड़ीं । मैं अपने कमरे में मौन बैठा था, गोद में था चुन्नुला श्रीकण्ठ, मेरा बड़ा लड़का । वह भय से अवाक् था, कभी मेरे मुख की आर आश्वस्त होने के लिए देख लेता था और मेरे मुस्करा कर यह कहने पर 'आँधी आई न !' वह थोड़ी दिलासा पा पुनः अपने नेत्र बंद कर मेरे शरीर से चिपट जाता था ।

प्रभंजन की भयंकर आघात-ध्वनि बाहर से बराबर आ रही थी । सामुद्रिक ज्ञान में डगमगाते जहाज़ का दृश्य मेरे सम्मुख आ-आ जाता था । मुझे शंका होती थी कि यह मकान किसी भीषण भोके के आघात को न सह सकने के कारण उलट-पुलट न हो जाय । मेरे अनुभवी-हृदय में भी तब एक शीतल सिहरन उठ जाती थी ।

खिड़की के शीशे में दिखाई देता कि सूरज, चाँद तथा तारों का आसमान इस रेत के अग्रम वितान के परे चला गया है । बंद कमरे तक में मेरा कण्ठ सौंसे के साथ बालूकण जाने से अवरोध हो रहा था । उस भंभा में उड़ती हुई, मैं देख रहा था, एक चील छुटपटा रही थी । उसे विश्राम की ठौर नहीं मिल रही थी । भूला-भटका यह जीव कितना निःसहाय है ! पर... क्या इस धरती पर कई बेघरबाग मानव ऐसे वास नहीं कर रहे हैं जो इस जीव के समान ही अपनी रक्षा के साधनों से ही बेबस हैं और इस भंभा की दुर्दमनीयता में छुटपटा रहे हैं ? कल कितनी दुःखद घटनाएँ कही-सुनी जायगी !

धीरे धीरे आँधी की तीव्रता दूर हुई । अंधकार मिटा और आसमान गँदला-गँदला सा दिखलाई देने लगा जैसे वर्षा के बाद जलाशय का वर्ण हो जाता है । सूरज का प्रकाश बालूकण पर थिरक उठा, चारों तरफ एक अपूर्व चमक का प्रसार हो उठा । बालक श्रीकण्ठ सो गया था । उसे पलंग पर लिटाकर मैं उठा । खिड़कियाँ खोलीं, देखा, सब कुछ बालू से ढंका पड़ा है । शीशे में देखने पर मैं खुद भूत-सा लगा । अपने ही इस महानट-रूप को देखकर मैं हँस पड़ा ।

आँधी आई और चली गई । केवल पन्द्रह-बीस मिनट लगे थे इस हलचल में, पर मुझे वह अवधि कितनी लम्बी प्रतीत हुई थी !

इधर आज-कल ज्यों ज्यों दिन बड़े होते जाते थे, हमारी मित्र-मंडली के घूमने का दायरा भी त्यों-त्यों विस्तृत होता जाता था । इच्छा होती थी कि शहर की इस गर्मी से कहीं

दूर थोड़े समय के लिए जाकर हरे हो आये। आज इस आँधी से देह और दिमाग और भी भारी हो गये थे। मैं शीघ्र ही निवृत्त कर बाहर निकलने के लिये व्याकुल हो उठा।

कमरे के बाहर निकला ही था कि मैंने श्रीमती को नीचे से ऊपर आते हुए जीने में देखा। मुझे देखते ही वह खिलखिला कर हँस पड़ी, बोली—

“वाह, आँधी ने तो आप को ही ढंढा है जैसे !”

बालों और कपड़ों को झाड़ते हुए मैंने कहा—

“हाँ, मुझ पर बड़ी कृपा हुई है आँधी माई की। पर तुम भी तो महरूम नहीं रहीं।”

“मैं भी ?”

हाँ, देखो न ज़रा... ” और इस बार मैं खिलखिला कर हँस पड़ा। फिर श्रीमती मैं संकोच को अनुभव कर मैंने कहा—

“कैसी भयंकर आँधी थी !”

मैं तो बहुत डर गई थी। मुन्ना को लेकर ऊपर आने का साहस ही न कर सकी। और... अरे नीचे जली बत्ती छोड़ आई हूँ, अंधेरा ऐसा हो गया था जैसे आधी रात बीत रही हो। आप निरटियेगा... ”

×

×

×

स्नानादि से निवृत्त हो कर मैं भोजन करने बैठा। बातचीत में श्रीमती ने कहा :—
“कोई मिला ?”

“कोई कौन !” प्रसंग-उल्लेख के बिना भी बात समझी जा सकती है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता; पर इस समय कुछ ऐसा भारीपन मेरे दिमाग में छाया हुआ था कि श्रीमती का प्रश्न उस क्षण मेरे लिए अस्पष्ट ही रहा।

वह आश्चर्य से मेरी ओर देख कर कह उठी :

“कोई कौन ! कह गए थे न मुझ कि आज जरूर कोई इन्तजाम करूँगा। फिर भी पूछते हो कौन ? कब तक दुःख सहा जायगा ?”

“अरे नौकर के लिए न।—मैं तो बिल्कुल ही भूल गया। मैं...”

इसी समय द्वार से एक भिखारी की आवाज आई—

“भगवान तुम्हारा भला करे ! भूखा हूँ, एक टुकड़ा दो मेरे दाता !”

मैं चुप हो गया। श्रीमती ने कहा—

“दिन भर ऐसा ताँता लगा रहता है कि कोई क्या करे ? और...”

“और इस महँगाई के जमाने में, क्यों ?”

मैंने स्मृकराते हुए धीरे से कहा कि बाहर तक आवाज़ न चली जाय।

वह मुस्करा कर बोली—

“हाँ जी, नाज तो तोला-तुलाया मिलता है। अपना पेट भी पूरा नहीं भरता, और ये दया-धर्म की दुहाई देते द्वार द्वार फिरते रहते हैं।”

बाहर से फिर आवाज़ आई :

“दया करो मेरे दाता ! भूखे को एक रोटी दो ।”

इस बात से श्रीमती के मुख पर खीझ की रेखा खिंच गई, तब कर उसने मुझे कहा :

“कह दो न कि...”

मुख पर ऊँगली रखकर मैंने मना किया । सुन कर न सुनना, देख कर न देखना और होकर न होना बचने का अमोघ साधन है । इससे शिष्टता भी कायम रहती है । इस मंत्र को मैं जान गया हूँ, अतः धीरे से मैं बोला :

“अरे चला जायगा अपने आप ही । बोलने से तो वह सिर पर सवार हो जायगा ।”

“तो गया !” गरम फुलका हाथ में लिए थी, वह जल्दी से बोली :

“लीजिए, लीजिए ! मेरा हाथ जला जा रहा है !”

फुलका लेकर मैंने कहा :

“बिना माँगे तो मुझे दे रही हो, और वह...”

“तो उसे आप दे आइये न ! मना कौन करता है ?”

तुम्हारे हाथ से धर्म होना चाहिए !”

“एक ही धर्म-पालन मेरे लिए बहुत है ।”

उसके कथन के ढंग में और उसके अर्थ में मृदुता थी, मैं आकृष्ट हुआ । श्रीमती नत-गर्दन मुस्कान को अधर-कम्पन में छिपाये रोटी बेल रही थीं । मेरी हँसी फूट पड़ी, तब एक बार मेरी ओर कटान कर श्रीमती भी हँस पड़ीं ।

भिलारी की आवाज़ फिर आई, पर हमें संतोष हुआ कि वह अब हमारे द्वार के सामने नहीं खड़ा था । पासवाले मकान वालों में वह याचना कर रहा था ।

भीख माँगने का कारण हमने आदमी की निष्क्रियता समझ लिया है । इसी विचार के आधार पर हम सदा याचक के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं । मानव-जीवन के प्रत्येक पल में कुछ असन्तोष, कुछ अपूर्णता, कुछ व्यथा रहती है । प्रत्येक प्राणी अपनी ही चहारदीवारी के दुःख को अजेय समझता है । श्रीमती ने अपने दुःख की बात कही थी । भोजन बनाने मिसरानी आती थी, पर आवश्यकतावश कई दिनों से वह नहीं आ पा रही थी, समय समय पर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो ही जाती थी । विवश होकर श्रीमती को भोजन बनाना पड़ता था । बच्चे घर सिर पर उठा लेते, वह परेशान हो जाती । नौकरी से आकर उन्हें मुझे सम्भालना पड़ता, मैं भी भुँझला उठता । कोई लड़का मिल जाता, तो सुगमता हो सकती थी । इसी दुःख के लिए श्रीमती ने कहा था कि सदा वह सहा नहीं जा सकता ।

तब मैंने साँचा भी नहीं था कि द्वार पर भीख माँगने वाले की व्यथा सही नहीं जा सकती मुझे तो उसी समय उस भिलारी के दूर चले जाने पर संतोष ही हुआ था ।

आज जब मैं बीती बातें लिखने बैठा हूँ, मेरे मन में यह विचार उठ रहा है कि वास्तव में हमारा दुःख हमारी चहारदीवारी का ही दुःख है । मनुष्य अपने घेरे से परे-आँखों से देखने पर भी नहीं देखता । हमें अपनी ही विवशता, अपनी ही असुविधा,

अपनी ही बाधा विचलित करती रहती है, यह कभी नहीं सोचा जाता कि ऐसे भी प्राणी इन दीवारों से बाहर वास करते हैं जिनके सामने ये मुसीबतें मुसीबतें नहीं हैं, ये परेशानियाँ परेशानियाँ नहीं हैं !

हाँ, तो श्रीमती आग्रह कर रही थीं :

“लीजिये, एक और ले लीजिये ।”

“नहीं, अब तो पेट भर गया । अब नहीं ।”

“ले भी लीजिये न !” और उसने जबर्दस्ती एक फुलका मेरी थाली में डाल दिया ।

(२)

हमारे पैर जिधर उठ जाते थे, उधर ही हम घूमने निकल पड़ते थे । हमारी मित्र-मंडली में एक राय-साहिब थे । वे दूध-मलाई के चट्टू थे । यदि साथ होते और जीभ सताती, तो वे जरूर हम सब को मदार-गेट की ओर घसीट कर ले जाते । अजमेर में मदार-गेट की वह कोने वाली दूध की दूकान उन्हें अधिक पसंद थी । दूकानदार भी जाना-पहिचाना था, वे वहीं आध सेर का सिकोरा बनवाते । दूसरे मित्र या तो तब तक पास वाली पान की या फिर उसी दूध की दूकान के पास खड़े बातें करने में मशगूल रहते । कभी कभी एक-दो और भी मागी राय-साहिब का साथ देते । मेरी ऐसी आदत थी नहीं, यह सब वे जानते थे ।

आज भी राय-साहिब साथ थे । कहने लगे :

“आज तबियत उचट्टी हुई है । दूध पियें, तो कुछ जी में जी आये ।”

हम सब मदार-गेट की ओर मुड़ पड़े । राय-साहिब से बातें करता हुआ मैं उनके साथ ही दूध की दूकान तक जा पहुँचा । राय-साहिब ने दूकानदार से कहा :

“बनाना भाई, एक सिकोरा !”

और वे फिर मुझे बातों के सिलसिले में अपने दफ्तर के अंदर की ताज़ी घटना सुनाने लगे । कैसे एक पेचीदा केम सामने आया, कैसे आज के नवजवान छोकरे ने नासमझे-बूझे किसी तरह हल कर साथ के सामने पेश कर दिया, कैसे हजरत साब बहादुर ने भी आँख मंद कर स्वीकृतकर आगे भेज दिया, कैसे ऊपर से डाट आने से दफ्तर में हड़बड़ाहट मची और अंत में कैसे उन्होंने पलक मारते न मारते उस केस को सुलझा दिया--ये ही सब बातें थीं । मुझे रुचिकर था राय-साहिब के बात कहने का ढंग और उन्हें रुचिकर थी नानमैट्रिक होते हुए भी अपनी कार्यदक्षता की उज्ज्वल स्वानुभूति ।

बातों के बीच मेरी दृष्टि एक वस्त्रहीन लड़के पर जा पड़ी, जो दूध पी लेने वाले एक व्यक्ति के हाथ से सिकोरा लेकर कहीं चला जा रहा था । खयाल हुआ कि वह दूकान का नौकर होगा । एक क्षण भर की मेरी अन्यायमनस्कता भी राय-साहिब ताड़ गये । वे मेरे हाथ को झकझोर कर बोले :

“समझे ?”

“हाँ, हाँ ! कहे जाओ ।”

वे फिर कहने लगे और मैं सुनने लगा ।

राय-साहिब के लिए सिकोरा बन गया । दूकानदार ने आवाज़ दी :

“लीजिए राय-साब ! आज आप की तबीयत बागबाग हो जायगी । सच, दिल से बनाया है मैंने !”

“आया !” राय-साहिब मुस्करा कर दूकानदार से बोले और फिर मेरी ओर देखकर वे अपनी बात पूरी करने लगे, “साब भी दंग रह गया । हाँ जनाब, मान गया कि बंदा भी कुछ है !”

“अरे लीजिये भी, रायसाब !” दूकानदार ने व्यस्तस्थिति की आतुरता व्यक्त करते हुए कहा, पर उसकी ध्वनि में मृदुता लिपटी थी, “आज यह क्या बात है ? सिकोरा तैयार है और आप . . .”

राय-साहिब की स्वानभूत आँखों में चमक उमड़ी और अधरों पर फूट पड़ी, उन्होंने हसते-हसते सिकोरा लेलिया और दूकानदार से कहा :

“यह तेरे दूध का ही प्रताप है नन्दा !”

फिर मेरी ओर देखकर वे अट्टहास कर उठे ।

भावावेश में यह जानते हुए भी कि मैं इस प्रकार बाज़ार में दूध नहीं पीता, वे मुझ से आप्रह्न करने लगे । मैंने क्षमा चाही ।

वे शान्ति से दूध पीने लगे । मैं बैठ हिलाते हुआ बेमतलब इधर-उधर देखने लगा । फिर वही लड़का मेरी नज़र में आया । एक व्यक्ति ने दूध पीकर खाली सिकोरा ज़मीन पर रखा ही था कि वह लड़का उस पर झपटा, और उसे उठाकर वह एक कोने में जा छिपा ।

मुझे आश्चर्य हुआ । पहिला अनुमान कि वह दूकान का नौकर होगा मुझे गलत लगा, क्योंकि दूकान के सामने ज़मीन पर ढेर से सिकोरे लुङ्के पड़े थे । और दो-चार कुत्ते उन में मुँह डाल-डाल कर चाट रहे थे । दूकान की सफाई के लिए नौकर रखवा गया है, इस अनुमान में मुझे कुछ भी तथ्य मालूम न हुआ । मैं उत्सुकता से राय-साहिब के दूध पी लेने और उस लड़के के आने की प्रतीक्षा करने लगा ।

राय-साहिब सिकोरे को खत्म करने ही वाले थे कि लड़का चुपचाप कुछ दूर पर आकर खड़ा हो गया । इधर एक कुत्ता भी राय-साहिब के पैरों के पास ही खड़ा अपनी पूँछ हिला रहा था । शायद इस बालक के अन्धकार में छिपे हुए मुख पर भी वैसी ही उत्कण्ठा तथा वैसी ही व्याकुलता रही होगी !

राय-साहिब, धर्मपरायण राय-साहिब ने जीव-निमित्त कुछ दूध सिकोरे में रहने दिया था, वे झुक कर उस सिकोरे को ज़मीन पर रखने लगे कि बालक का पैर काँपा और वह आगे बढ़ा । जैसे वे उस बालक की मन्शा को जानते हों, वे उसे डाट-डपट के साथ कहने लगे :

“हट यहाँ से ! साले कुत्ते का हिस्सा भी नहीं छोड़ते !”

राय-साहिब की भर्त्सना का कुछ प्रभाव बालक पर पड़ा होगा जरूर, पर मुझे अनुभव हुआ कि उनके शब्द मेरे हृदय को बेध गये। मैं अवाक् उस लड़के की ओर देखने लगा, जो कुत्ते के हिस्से को छीनना चाहता था !

राय-साहिब मेरी ओर देखकर बोले :

“देखा आपने ? कैसा बदज़ात है यह ! इस कुत्ते के मुँह से मिकोरा छीनते इसे लाज नहीं आती !”

लड़के को आतुर, पर निराश दृष्टि से ज़मीन पर पड़े उस सिकोरे की ओर, जिसे वह कुत्ता चाट रहा था, देखते-देख राय-साहिब ने उमे और कठोर स्वर में डाँटा।

“अरे भागता है कि नहीं !”

वेब्स लड़का पीछे हट कर खड़ा हो गया। वह मानव होकर इन अपमान-भरे शब्दों को सब के सामने सुन रहा था, और मुन कर भी वह वहाँ से दो-चार कदम हटा तो बे मन-सा, विवश-सा। उसका कुश शरीर, उसकी दीनता भरी आँखें मुझ से कुछ कह गईं; मैं सोचने लगा कि इस लड़के की भी अपनी परिस्थिति है तथा इसकी भी अपनी व्यथा है !

राय-साहिब ने कहा :

“चलिए वे आ रहे हैं !”

पर मैं वहाँ से जा न सका, मैंने उस लड़के को पाम बुलाया।

वह आया। मैंने उससे पूछा :

“तू दूध पियेगा, रे !”

वह चुप रहा। मेरे मुँह की ओर वह करुणाद्र दृष्टि से देखने लगा। जैसे सोच रहा हो कि इस बात का वह क्या कहकर उत्तर दे।

मैंने फिर पूछा : “भूखा है ?”

नीचे ज़मीन की ओर देखता हुआ वह धीरे से बोला :

“हाँ।”

मैंने दूकानदार से आधा मेर वाला सिकोरा बनाने को कहा, राय-साहिब ने बाधा दी :

“अरे, आप क्या कह रहे हैं मास्टर जी ? ऐसे बदज़ात को दूध पिलाना धरम है क्या ?”

वह लड़का कुछ हिला-डुला। उसने एक बार मेरी ओर देखा, फिर अपने मस्तक को उसने नीचे झुका लिया। बोला नहीं।

सिकोरा तैयार हुआ तो मैंने दूकानदार से लेकर लड़के को देना चाहा, पर उसका सिर और न हाथ ही ऊपर उठा। मैंने कहा : -

“ले रे !”

अपने पैरों की उँगलियों से जमीन को खुरचता हुआ वह नतमस्तक ही धीमे से बोला :

“नहीं, बाबू !”

बालक का इन्कार मुझे अपूर्व लगा, आश्चर्य-भरे स्वर में मैंने कहा :

“क्यों रे ?”

“बाबू, मेरी बड़ी बाई ..देखिये न-मेरी नाक में उसने कुरक डाल दी है। एक दिन एक बाबू ने मुझे पूरियाँ दिला दी थी, उन में से कुछ मैं बड़ी बाई के लिए ले गया। उसने पूछा, कहाँ से लाया रे, तो मैंने सच सच कह दिया। वह बहुत नाराज़ हुई, उसने मुझे पीटा और यह कुरक उसी समय मेरी नाक में डाल दी। कहने लगी—तू मर्द नहीं हिजड़ा है हिजड़ा। तूने कुल में दाग लगाया है। कोई मर्द होकर भीख माँगता है। बाबू, भीख नहीं लूंगा !”

सुन कर मैंने कहा :

“और यह झूठे सिकोरें चाटना क्या मर्द का काम है रे ?”

बड़ी बाई कहती है कि पड़ी चीज को अपने काम के लिए उठा लेना, हिकमत से कब्जे में करना मर्द का काम हो सकता है। वह बुरा है, पर भीख माँगना तो.....”

राय-साहिब के मुख पर क्रूरता नाच उठी, वे बीच ही में कह उठे :

“देखा बदमाश को ? कह रहा है”

जो भिखारी संध्या समय मेरे द्वार पर याचना कर गया था, उसकी मूर्तिभी इस बालक के पास आकर खड़ी हो गई। दोनों की आवश्यकता एक है, पर विचार तथा मार्ग कितने भिन्न हैं। एक धर्म की दुहाई देकर संसार की महानुभूति पा सकता है, दूसरा कर्म की दुहाई देकर तिरस्कार तथा लांछना पाता है !

तब मैंने उससे कहा :

“अच्छा ले मैं इसे यहाँ रखे देता हूँ। तू उठा लेगा न तब ?”

एकाएक उसकी आँखें चमक उठीं, वह खुश हो कर बोला :

हाँ, बाबू !”

×

×

×

लम्बी सड़क के दोनों ओर बिजली के खम्भे खड़े थे। सड़क पर प्रकाश फैला हुआ था, और सड़क का सामने वाला कोना तथा दोनों पार्श्व-भाग प्रगाढ़-अन्धकार के आवरण में लिपटे पड़े थे। अंधकार के उस परदे के भीतर मेरी आँखें उस लड़के और उसकी बड़ी बाई की झुधा-पीड़ित मूर्तियाँ देख रही थीं। मुझे अनुभव होने लगा कि उस लड़के के समान अमंख्य लड़के अपने माँ-बाप, अपने भाई-बहिन के साथ उस अंधकार में आर्तनाद करते हैं।

मेरे साथी मार्ग पर बढ़ते हुए भिन्न-भिन्न विषय पर विनोदमय विवाद कर रहे थे, कभी कभी मैं भी उस में योग देता था। पर आज मेरे कानों में उनके उत्तेजित

शब्द आ भर रहे थे, मैं उनके अर्थ को ग्रहण नहीं कर पा रहा था। मुझे उस लड़के की बातें सुनाई दे रही थीं और उस अपरचित बड़ी बाई के विचार जो उसके कथन में व्यक्त हो गये थे ध्यान मग्न बना रहे थे। कर्म-धर्म के प्रति वह कैसी आस्था है।.....

मुझे एक आंगल-कविता याद आई जिस में ग्रीष्म-ऋतु में वर्षा का वर्णन किया गया है। अन्त में कवि कहता है कि वर्षा की रिमझिम झड़ी में एक पेड़ के नीचे खड़ा हुआ प्रसन्न किसान अगर सामने लहराती हरी-भरी बालियों को देख कर अपने श्री-लाभ की उमंगभरी कल्पना करता है, तो वह पाप नहीं करता। उसकी आशा में स्वार्थ अवश्य है, पर जो निश्छल तथा निर्दोष लहरियाँ उस स्वार्थ की हलकी आदिभ धारा में संचरित हैं, क्या वह मानवी प्रवृत्ति का सत्य रूप नहीं है? उसकी भलाई में किसी अन्य की बुराई नहीं है। लड़के की बड़ी बाई की सीख में क्या ऐसी ही निर्दोषिता नहीं है? राय-साहिब की भाँति संसार उस विचार-धारा का कटु उपहास कर सकता है, मेरा मानस तो कटु वेदना-कसक से उठेलित था। पेट भोजन चाहता है, वैसे-तैसे कर्मरत होकर पेट की आग को बुझाते हैं; शरीर ढका रहने के लिये कपड़े की कोर चाहता है वे जैसे-तैसे अपनी लाज की रक्षा करते हैं; और इसी तरह वे जैसे-तैसे अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। क्या अपने जीवन की ऐसी मोटी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये त्याज्य वस्तुओं को उठाना भी पाप है?....

हम सड़क पर बढ़ चले जा रहे थे।.....

(३)

कुछ दिन बीत गये। मैं उस लड़के को भूला नहीं था, पर वह फिर मिला नहीं। कभी उस दूकान की ओर जाना होता, तो राय-साहिब मेरी ओर कटाक्षा कर कहते—‘मैं अकेले ही जाकर दूध निगल आता हूँ। वहाँ पर ऐसे पात्र भी दिखाई दे जाते हैं, जिनको देख कर किसी के दिल में दया-धर्म का भावना जम जाती है! मेरे साथ चलने वाला साथी ऐसा कर बैठता है, तो मुझे लजित होना पड़ता है।’ मैं स्वयं ही ऐसे मौके पर तब से दूकान से दूर किसी काम में लगने का बहाना ढूँढ़ लेता। अतः फिर कभी उस लड़के से मिलने का मुझे मौका नहीं मिला।

श्रीमती रोज़ मुझे अपनी परेशानी की याद दिला देती थीं। मैं चाहता था कि वह लड़का मुझे कहीं मिल जावे, तो उसे ही नौकर रख लूँ। मैंने श्रीमती से उसके सम्बन्ध में कहा भी, तो वह कहने लगी—रोज ही तो घूमने जाते हैं। उसे पकड़ क्यों नहीं लाते? पर अपने साथियों और विशेष कर राय-साहिब के सामने उस लड़के से मिलना और ऐसा प्रस्ताव करना मैं नहीं चाहता था।

एक दिन कॉलेज में लौट कर मैंने घर की पौल में पहिला कदम रखा ही था कि देखा एक पराया लड़का मुका जूतियों को छोट-छोट कर उठा रहा है। द्वार खुला था और मैं रबर-शू पहिने था, इसलिए मेरे आने की उसे खबर न थी। उसकी पीठ मेरी ओर थी, मैं एक क्षण भर मौन देखता रहा और फिर झटकर बोला :

“कौन है रे?”

वह लड़का काँप उठा, घूम कर सीधा खड़ा हो गया भय से उसके हाथ शिथिल पड़ गये, उसके पीत हाँठ खुल गये थे । मैंने उसे देखते ही पहिचान लिया और उसने मुझे । वह दूसरे ही क्षण मुस्करा कर कह उठा :

‘अरे बाबू जी !.....मैया जी ने पालिश करने को कहा था ।...’ उसके कथन के सत्यासत्य की बिना मीमांसा किये ही मैंने कहा :

“तू पालिश करने लगा है रे ?”

“हाँ, बाबू !”

“अच्छा इधर आ ।”

मैं उसे बैठक में ले गया । मैंने और भी जूते पालिश के लिए ला पटके । उसने अपने टीन के डिब्बे को जमीन पर रखकर खोला, उस में से पालिश की डिब्बियाँ निकाली, और एक ब्रश तथा मटमैले कपड़े के टुकड़े ।

मैं पास ही कुर्सी पर बैठा बैठा उसका यह साज-सामान देख रहा था । एक पालिश की डिब्बिया को हाथ में लेकर खोलते हुए उसने मेरी ओर देखा और मुस्कुराकर बोला :

“अच्छा ही लगाऊँगा बाबू !”

“देखूँ तो कैसा है ?”

“एक नम्बर का माल है, बाबू !” और फिर एक दूसरी डिब्बिया को उठा कर उसे वहीं तिरस्कार-भाव से जमीन पर पटकता हुआ कहने लगा : “यह तो रंग है । दूसरा का इससे एक पैसे से लेकर चार पैसे तक का काम कर देता हूँ । याँही चलता है, बाबू ! पर आपका...”

वह रुका, और वही हाथ वाली पालिश की डिब्बिया खोल कर बोला :

“इससे करूँगा ।”

“अच्छा है ?”

“बहुत अच्छा है, बाबू जी ! देखिये न ।”

मैंने पहले ही देखकर पढ़ लिया था कि पालिश साधारण ही था । गरीब लड़का बढ़िया पालिश खरीद कर कमा क्या सकता है ? आखिर उसे खरीदार ऐसे ही तो मिलते हैं जो एक पैसे से लेकर ज्यादा से ज्यादा चार पैसे देने की मेहरबानी करते हैं । मैंने कहा :

“इसे रहने दे, तेरे और काम आयेगा । देख उस ताक में वह शीशी पड़ी है । पहिचान गया न, उसे उठा ला । उसी से पॉलिश कर दे ।”

शीशी लाकर वह जूतों पर पॉलिश करने लगा । और मैं एक पुस्तक उठा कर पढ़ने लगा । कुछ देर बाद भीतर से श्रीमती की आवाज़ आई :

“अजी, कॉलेज से आते ही क्या करने लगे । ज़रा इधर आइये न ।”

“आया ।”

और अन्दर जाकर श्रीमती के सामने खड़ा हो गया, मैंने कहा :

“कहो ।”

“बया कर रहे थे जी ?”

“अरे, वह लड़का आया है । उससे जूतों पर पॉलिश करा रहा हूँ ।”

“उससे कहा ?”

“यही तो सो सोच रहा हूँ ?”

“सोच क्या रहे हो ? पूछ लो । काम करेगा, तो झूठे सिकोरे तो नहीं चाटता फिरेगा !”

“हाँ तैयार तो वह जरूर हो जायगा ।”

मैं बैठक में लौट कर पुनः अपनी कुर्सी पर बैठ गया । लड़के की चमकती आँखें मेरी ओर उठीं, और फिर नीचे की ओर झुक गईं । वह मंद स्वर में बोला :

बाबू, सच कहूँ ।”

“क्या रे ?”

सच कह दूँ क्या ?—आपने छिपाते नहीं बनता ।”

मुझे विस्मय हुआ कि वह ऐसी कौन-सी अद्भुत बात कहने जा रहा है ! फिर भी मैंने उपेक्षा से पूछा :—

“पर क्या कहना है आखिर ?”

“जानता होता कि यह मकान आपका है तो मैं कभी इधर न आता ।”

वह रुका ! मैं मौन रहा । उसने फिर मेरी ओर देखा और धीरे-धीरे अपनी गर्दन झुकाते हुए कहा :—

“मैं चोरी करने आया था, बाबू ।”

सुन कर मैं गर्दन झुकाये हुए उस शान्त बालक की ओर एकटक देखने लगा । क्या वह ठीक कह रहा है ? अविश्वास भी कैसे किया जा सकता था ? मैंने और स्पष्ट करा लेने के अभिप्राय से पूछा :

“चोरी ?”

“हाँ बाबू, चोरी । जूते ले जाना चाहता था । भैया जी की बात मैंने पहिले से गढ़ ली थी । मंदेह न हो, इसलिए मैंने आप से वही बात अनायास ही कह दी थी । पर वह झूठ थी, अब जो कुछ कह रहा हूँ वह सच है । और, बाबू, यह पहिला ही मौका नहीं है !”

क्या कह रहा है, बदमाश ?”

मेरे कथन में जो आक्रोश व्यक्त हुआ था, उसकी ओर बालक ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया जैसे मेरे निकट वह अभय हो । वह शान्त स्वर में कहने लगा :

“धन्रा काका आपके यहाँ से खूब माल मार कर ले गया है । एक दिन मैं भी उसके साथ इधर निकला, तो वह बोला कि यहाँ रहने वाले बड़े भोले हैं !” कह कर वह मेरी ओर देखकर मुस्करा उठा ।

मुझे लगा जैसे वह अपढ़, अज्ञानी, अर्द्धनग्न, भूखा बालक मेरे ज्ञान तथा शक्ति पर कटु व्यंग्य कर रहा है, अपनी कूट-छलना के साथ मेरी भलमनसाहत को तोल रहा है। मैं अत्यंत ही कुपित हो उठा पर मेरे मुख से केवल इतना ही निकला :

“बदमाश !”

मेरे भाव-विकार को वह मुख नीचा किये हड़ता से सह रहा था। उसका हाथ काम में लगा था कम्पित ! वह फिर बोला :

“धन्ना काका मेरा सगा-संबन्धी नहीं है, बाबू ! साथ रहता है हमारे गिरोह में। बड़ी बारी उसे काका कहती है, मैं भी कहता हूँ। वह बड़ा शैतान है, उसने मुझमें कहा कि उसने यहाँ खूब हाथ मारा है। इन्दौर वाला एक आदमी बन कर वह यहाँ आया था। कुछ याद है बाबू ? और उसने एक दिन पहिले ही एक पड़ोसी से आपके मकान, मकान-मालिक आदि के संबन्ध में पृछ-ताछ कर ली थी, फिर दूसरे दिन वह एक मुसीबत का मारा चमड़े के सौदागर के रूप में आपके पास आया था। कुछ रुपये, कुछ वर्तन - ”

यह घटना अधिक पुरानी नहीं हुई थी, मुझे अच्छी तरह याद थी। धोखा खाकर श्रीमती और मुझे—दोनों को त्रामा हुआ था, पर घटना-क्रम ऐसा रहा था कि अपने ही हाथों खुशो से किये हुए नुकसान पर क्रोध से हृदय जल भी उठा था और साथ ही मुख से हँसी भी फूट पड़ी थी।

घटना यों घटी थी। उस दिन कॉलेज से लौटते मुझे एक घंटा ही बीता था कि एक आदमी ने मेरा नाम लेकर द्वार खटखटाया। मैं बाहर आया। एक अपरिचित व्यक्ति को सामने देख कर मैंने उससे आने का कारण पूछा। वह कहने लगा—‘दिन बीतने जा रहा है, बाबू जी, पूछते पूछते अब आपका पता लगा सका हूँ। इधर पहिली बार तो आना हुआ, पण्डित दीनानाथ जी अजमेर आते समय मुझे हर बार कहते—कुएँ के मेड़क, चल पुष्कर स्नान कर आ। तर जायगा। तीरथ स्नान में आना तो भाग की बात है मैं घर की पोल को लांच न सका। और इधर जब पैर उठाये तो स्वारथ की गाँठ बाँध कर; सो अब पछता रहा हूँ, अपने आप को ही कोस रहा हूँ। कुछ कहने न सुनने का। पण्डित दीनानाथ जी की कृपा की क्या कहूँ, बाबू जी ! जब इन्दौर से चला, उन्होंने मुझे कोसा, पर फिर दितासा देते हुए बोले—अजमेर में मेरे अपने ही मकान में रहते हैं, जरूरत पड़े, तो वहाँ जाते हिचकना मत। तकनीफ न उठाना। और किस्मत खोटी थी, सो तक्लीफ में पड़ ही गया हूँ। मन में गैल रखकर तीरथ आना, पाप है बाबू बड़ा पाप। पर स्वारथ से तो गने तक भरा हूँ न, चमड़ा डाल कर ले आया। इन्दौर में इसका ही व्यापार करता हूँ। माल आ गया है, पर जो रुपये मैं इन्दौर से लेकर चला था वे खो गये हैं बाबू जी ! करम फूटने थे, सो हो कर रहा। एक खत इन्दौर लड़के को लिखा है, करम आते आते आयगी और माल आज ही छुड़ाना लाज़िमी है। देर होगी, हरजाने के पैसे जुड़ते जायेंगे। साथ ही, माल ज्यादा दिनों तक पड़ा रह गया तो यह भी मुमकिन है, उसके भाव गिर जाय। मेरी लाज आप के हाथ है। आप पण्डित जी के अपने ही हैं।

उनकी मुभ पर पूरी दया है, बाबू जी ! यह सब सुनकर मैंने उससे पूछा कि कितने रुपये चाहिए । वह बोला कि कुछ तो उसके पास बच रहे हैं, फिलहाल दस रुपये की और जरूरत है मैंने उसकी जरूरत बिना आगा पीछा सोचे पूरी कर दी । और फिर रात्रि को मैंने श्रीमती से सुना कि मेरी अनुपस्थिति में वही इन्दौर वाला सौदागर आया था और मेरी दुहाई देकर खाना बनाने के लिये कुछ बर्तन ले गया है । कह गया था कि कल सुबह वह लौटा देगा । पर वह फिर कभी नहीं आया ।***

हमें धोखा दिया गया था, यह तो श्रीमती और मैंने जानने में देर न की, पर उसका रहस्य इस लड़के के कथन के बाद ही खुला ।

उस घटना के प्रति उपेक्षा-भाव प्रकट करता हुआ मैं बोला :

हाँ, याद तो है एक***”

“बाबू, उसने आपके पैसों से खूब शराब पी थी । उसी दिन की बात है कि उसने मेरी बड़ी बाई का हाथ पकड़ लिया था । बड़ी बाई ने उसे ऐसा धक्का दिया कि शराबी पास ही बहते गंदे नाले में गिर पड़ा । उसके मन में पाप था बाबू, क्यों न ? ऐसा ही तो कहते हैं । मेरी बड़ी बाई उसमें नज़रत करती है ।”

“वह अब भी है यहीं ?”

“नहीं, वह चला गया यहाँ से । और होता भी तो बाबू, आप उससे क्या पाते ?”

“क्यों ?”

“जो कुछ चोरी करता था, वह उसे बेच देता था । और मिले पैसे से शराब पी लेता था ।”

“मैं उसका मिर फाँड देता !” अनायास ही मैं उत्तेजित हो गया था ।

“उसका सिर कई बार फूट चुका है ! और आप से वह होता भी नहीं । आप न आते, बाबू, तो मैं भी चोरी ही करता ।”

वह उदण्ड बालक मेरी ओर देखकर हँस रहा था ।

चोर चोरी की असफलता पर तथा पकड़े जाने पर दण्ड का स्वयं ही खुशी से आह्वान कर रहा यह कैसा चोर है ? मुझे प्रतीत हुआ कि जैसे उसके सब कार्यों में तथा विचारों की तह में उसकी बड़ी बाई की छाप लगी हुई हो, इसलिए मैंने सीधा प्रश्न किया :

“तेरी बड़ी बाई चोरी का माल पाकर तुझे शाबाशी देती है, क्यों रे ?”

“नहीं बाबू, आप मेरी बड़ी बाई को नहीं जानते !”

“क्यों ?”

“उसे पता लग जाय, तो मेरी खाल खींच ले ?”

मैंने देखा, लड़का वास्तव में काँप उठा है । उस के कथन में झूठ का लेशमात्र भी अंश नहीं है ।

“तो तू चोरी क्यों करता है ?”

“काका ने सिखा दी है ।”

“और तेरी बड़ी बाई ने पॉलिश का काम करने को कहा है ?” मेरी आशा के विपरीत उस लड़के ने उत्तर दिया :

“नहीं । एक लड़का मेरा साथी है, उसने मुझे पॉलिश करना सिखा दिया है । धीरे धीरे मैंने यह सब सामान खरीद लिया है । मौका पाकर यह काम कर लेता हूँ, नहीं तो इस टीन को अपने इसी साथी के यहाँ रखे रखता हूँ । वह हमारी जात का नहीं है, बाबू !”

मैं विस्मित हुआ । उसकी बड़ी बाई जैसी अपरचित थी, वैसे ही दुर्बोध भी प्रतीत हुई । उसी समय मुझे श्रीमती की बात याद आ गई, मैंने कहा :

“तो मेरे यहाँ नौकरी क्यों नहीं कर लेता रे ?”

सुन कर लड़के के नेत्र खिल उठे, उनमें कृतज्ञता झलक पड़ी । पर दूसरे ही क्षण गंभीर होकर वह बोला :

बड़ी बाई से पूछ लूँगा ‘बाबू !’

“अच्छा !”

काम समाप्त हो गया था, उसने अपने सामान को बटोर हर टीन के डब्बे में रखा । फिर वह उठा, और बोला :

“जाऊँ, बाबू ?”

मैंने उसके हाथ में एक अठन्नी रख दी, वह चुपचाप चला गया ।

(४)

उस दिन की गरमी ऐसी थी जो अजमेर के लिए अपरचित-सी थी । कुछ दिनों में तापमान धीरे-धीरे बढ़ रहा था और वह ऐसा बढ़ा कि घर घर भट्टी की तरह दहकने लगा । उधर कॉलेज में ग्रीष्म-ऋतु की लुट्टियाँ हो रही थीं । मेरे एक अध्यापक मित्र उस दिन अपने निवास-स्थान जाने वाले थे उन्होंने मुझे तथा अन्य साथियों को साग्रह अपने यहाँ बुलाया था । इच्छा की अस्थिरता में भ्रमते हुए और साथ ही श्रीमती के मन करने पर भी मैं वहाँ के लिए निकल पड़ा ।

साइकिल पर बैठे मैं करीब करीब मुनसान सड़क पर आगे बढ़ा जा रहा था । उपर से अविरल गति में गिरने वाली तप्त किरणों का स्पर्श ऐसा प्रतीत होता था जैसे सूर्य अब पृथ्वी के एक हाथ दूर पर ही आकर स्थिर हो गया है । इसके अतिरिक्त लू के प्रबल झोंके झपटे ले लेकर चल रहे थे और नीचे डामर-रोड से उष्ण वाष्प के ‘गोट’ उमड़ रहे थे । घायल-सा मैं पैडल पर पैर मारता जा रहा था ।

एकएक मैंने सुना कि कोई मुझे ‘बाबू’ कह कर पुकार रहा है । पीछे घूमकर मैंने देखा । वही लड़का सड़क के नीचे दाहिनी ओर वाले मदान में भगा आ रहा है पुकारता हुआ :

“बाबू, रुकिये ज़रा !”

मैं रुक गया; सड़क के पास वाले वृक्ष के नीचे आकर खड़ा होगया । वदन पसीने-पसीने हो रहा था । प्रतीक्षा में उपेक्षा-भाव व्यक्त करता हुआ मैं जेब से रुमाल निकाल कर

मुँह का पसीना पोंछने लगा। पोंछ कर मैंने सामने जो देखा, तो वह लड़का हर्ष तथा भय के अपूर्व मिश्रित भाव से द्रवित अपना हाथ एक ओर उठाये कह रहा है:

“वह...बड़ी बाई !”

सड़क का स्थल उठा उठा था, और उसी के किनारे कुछ नीचे एक बड़ा मैदान फैला पड़ा था। वहाँ दस-बारह गाड़ियाँ कतार में खड़ी थीं। स्थल-स्थल पर अर्द्ध-नग्न काले व्यक्ति आग की भट्टी में लोहे को गर्म कर और पीट पाटकर भिन्न-भिन्न रूप दे रहे थे। इस गरमी में यह काम कितना कठोर था ! उसी स्थल की एक पगडंडी पर अपने हाथ में चिमटा लिए भगी आती हुई एक युवती चिल्ला रही थी।

“ठहर तो, तुझे बताऊँ ”

यह मैंने चाण भर में देख-सुन लिया, उसके बाद मेरी दृष्टि हठात् उस युवती की ओर जम गई। वह उस बालक की ‘बड़ी’ बाई थी। इस अरसे तक मेरे हृदय में उसके प्रति एक अपूर्व आकर्षण घनीभूत हो चला था।

वह दौड़ी चली आ रही थी कोसती हुई, भय दिखाती हुई। रेज़े की ओढ़नी खिसक कर उसके कन्धों पर टुलक पड़ी थी, और ऊँचा गागरा भागने की क्रिया तथा लू के भोंकों में उड़ा जा रहा था। कानों के नागल्या व जूठणों, हाथ की लाख की चूड़ियाँ व मादल्या, गले की हँसली और पैरों के तेज्यों सब हिल-हिल कर मंद ध्वनि कर रहे थे, उसकी कैसी कुट्ट मुद्रा थी, और काँसी के उसके गहनों का कैसा विलास था !

वह हौफती हुई मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। उग्र दृष्टि से देखती हुई उसने मेरे पास खड़े लड़के का हाथ पकड़ लिया और कठोर-स्वर में कहा :

“बता, अब कहाँ जायगा ?”

लड़के का हुलास मेरी उपस्थित के कारण बढ़ा हुआ था, पर अपनी बड़ी बाई के इस बर्ताव से लुब्ध था। प्रथम भेंट का प्रभाव बाबू पर अच्छा पड़े, यह उसकी उत्कट इच्छा थी इसीलिए परिस्थिति को अधिक अनुकूल बनाने के हेतु उसने कहा :

“ये वही हैं, बड़ी बाई !”

उसकी आँखें भरी और घूमि। मुझे ऐसा लगा जैसे उसके विस्फागित नेत्रों में तिरस्कार की तड़ित् चमक उठी हो। क्षण भर या मेरी ओर देख कर वह उस बालक की ओर मुखातिव हुई और बोली :

“बाबू ?”

बालक के अधर हलकी मुस्कान से खिल उठे :

हाँ, बड़ी बाई !”

मैंने देखा उस युवती का मुख धुँएँ में काला हो रहा है; केवल पसीने की बहती हुई क्षीण धारायें उसके गेरुएँ वर्ण को उन्मीलन कर रही हैं बालक के पुष्टिवत् कथन को सुन कर जैसे बीती अनेक बातें घिर-घिर कर उसके मस्तिष्क में छा रही हैं। उसके मस्तक पर वक्र रेखायें खिंचने लगीं और काली भीड़ें मध्य में मिलने लगीं। वह इसी बीच, बोली :

“बाबू कौन ?”

इस प्रश्न से वह बालक अवाक्-सा अपनी बड़ी बाई की ओर देखता रहा, मानों वह मौन-संकेत से ही प्रश्नोत्तर दे सकता हो। आखिर वह क्या मेरा परिचय दे ? वह तो मुझे केवल बाबू ही जानता था। उसने फिर मेरी ओर सलज भाव से देखा, और अपनी बड़ी बाई से कहा :

‘वही जो मुझे नौकर रखना चाहते थे ! मैंने कहा था न...’

मैं उस युवती के मुख की ओर ही यह जानने को देख रहा था कि बालक द्वारा यह मेरा परिचय उस पर क्या प्रभाव डालता है। उसके मस्तक की रेखाएँ और काली भौंहें एक ही बिन्दु पर आ मिलती थीं उसने एकाएक मेरी ओर निगूढ़ तिरस्कार भरी दृष्टि से देखा। ‘चार आँखें हुईं’, तो भी उसकी अडिग नज़र मेरी ओर स्थिर ही रही। वह बोली।

‘तुम इसे मुझसे छीन कर, बताओ, क्या करना चाहते हो ?’

उसका कथन मस्तिष्क में उद्भूत अनेक विचारों का निष्कर्ष लिए था कठोर आक्षेप-सा ! उसके मानसिक भावों से अनभिज्ञ रहने के कारण मैं इस आक्षेप के लिए बिल्कुल तैयार न था। इतना अवश्य समझ गया था कि इस युवती के हृदय में मेरे प्रति—हम सभ्य लोगों के प्रति तिरस्कार तथा हो सकता है घृणा की भावना भरी हुई है। पर नौकरी के लिये कहने और छीनने में क्या कोई संबन्ध हो सकता है—ऐसी जो कटुता किसी के दिल में भर जाय, मैं कुछ सोच न सका।

मुझे मौन देख कर ही वह दृढ़ स्वर में फिर बोली :

“सो नहीं हो सकेगा, कहे देती हूँ।”

वह लड़का अटपटा-सा कहने लगा :

“पर...पर, बड़ी बाई, ये बाबू...”

चुप रह, काले मुँह के बंदर !” गरज कर वह बोली, ” इस चीमटे मे तेरा सिर फोड़ दूंगी ! चुप रह नू !”

मुझे यह मध कांड अप्रिय-सा लगा। अन्तराल के किसी अन्धकारमय कोने में जो इस बालक की बड़ी बाई के जानने की जिज्ञासा जग उठी थी, एक तीव्र विरक्ति की भावना में वह इस समय डूब गई। चाहने लगा कि यहाँ से खिसक जाऊँ, पर ऐसा कर न सका। भला यही था कि सड़क उस चिलचिलाती धूप में मुनसान थी और दूर पर वे अर्द्ध-नग्न काले-कलूटे गाड़ों ने अपने अपने काम में तल्लीन थे।

मेरी विचार-धारा में एकाएक व्याघात हुआ। कुछ संयत स्वर में लड़के की बड़ी बाई मुझे ही लक्ष्य कर कह रही थी :

“बाबू, तुम्हारा इरादा कैसा ही हो ! पर तुमने यह नहीं सोचा कि यह लड़का तुम्हारी भलाई पाकर विगड़ रहा है। वह देखो...” वह रुकी अपने चीमटे वाले हाथ को फैला उस मैदान में काम करते हुए एक वृद्ध की ओर संकेत कर कहने लगी—वह इस काले मुँह के बंदर का बाप है, बुढ़ापे में उसका हाड़ क्या इस आग के सामने जलने लायक

हे रोज-ब-रोज ! यह बाप खाणों छोरा उसे जीते जी ही आग में जला रहा है !—और मैं— मैं इसकी बड़ी बाई हूँ। माँ के मरने के बाद से मैंने इसे पालपोस कर बड़ा किया है, अब यह धींगरा हो गया है। फिर भी मुझे हथौड़े से अपनी छाती कूटनी पड़ती है और दिन रात भर-खपने के बाद मुझे ही बाजार जाकर बने माल को बेचना पड़ता है जो कुछ मिलता है, उसी पर आधे पेट खाकर व किसी तरह तन की लाज ढँककर जिन्दगी के दिन बिताने पड़ रहे हैं। और यह लौंडा, यह दूध पीता है, मिठाई खाता है और मौजू उड़ाता फिरता है ! सुना है, तुम इसे पैसा देते हो, और कहते हो कि हमारे यहाँ नौकर हो जाओ ! इसके बाप-दादो ने जो काम नहीं किया, तुम उसे कराना चाहते हो और वही यह करना चाह रहा है। बाबू तुम्हें क्या कह कर कोम ?”

वह रुकी मानों मुझे कोसने के लिए उसकी वाणी शब्द न पा रही हो, उसका चेहरा उत्तेजना से धमक रहा था और उसमें निकलती हुई शिरायें मुझे अविरल बँध रही थीं।

तभी उन गाड़ियों के चौक से एक कर्कश आवाज़ आई -

“श्रीरी करणी !”

उस लड़के की बड़ी बाई, धूमी और तेज आवाज़ में चिल्ला उठी :

“आई बा !”

बिना कुछ कहे-सुने बिना मेरी आँर देखे करणी अपने भाई काले मुँह के बन्दर का हाथ पकड़े वहाँ से चल दी।

(५)

कोई भलाई का काम मैं वर बैठता हूँ, तो उस साधारण काम को मैं न तो तुल देकर अपने को पाँचो सवारों में गिनने लगता हूँ, और न उपकृत में ऐसी आशा करता हूँ कि वह इहलोक तथा परलोक के लिए मंगल कामना करे। पर जब उस लड़के की बड़ी बाई करणी ने मुझ पर अपकार का आक्षेप किया, मैं स्तब्ध तो हुआ ही साथ ही उसके विशाल नेत्रों के अमर्षमय तिरस्कार ने अनेक शिराओं में फूट कर मुझे भय-व्रस्त भी कर दिया— भय का वह आवेगमय स्पन्दन सर्वग्राही था कि जिसके स्वर को मैं आज भी हृदय के किसी एकान्त कोने में ध्वनित होते हुए सुनता हूँ। उस आक्षेप के विरुद्ध मेरे हृदय में प्रतिवाद-स्वरूप ऐसे दृढ़ विचार थे कि मेरे सर्वाङ्ग में ध्वनित उस भय-कंप को मैं उस समय सहन करने में सफल हो सका। आज जब मैं सारी स्थिति पर गंभीरता पूर्वक विचार करता हूँ, मुझे करणी के कथन की तीव्रता में आधारभूत कारण सत्य प्रतीत होता है। मुझे लगने लगा है कि अपनी असावधानी में एक भारी गलती की गई है।...

मैंने उन गाड़ियों के त्याग की बातें सुनी थीं और उनके कर्मठ तथा स्वालम्बी जीवन को देखा था दूर से। उनकी जाति बलिदान का इतिहास लिए है, ऐसी मेरी धारणा रही है। जब मुगलों ने चित्तौड़ का किला जीत लिया, तो वहाँ की स्वतंत्रता-प्रेमी प्रजा अन्तिमबार मातृभूमि की रज को मस्तक पर चढ़ा और मायाममता के बन्धनों को सदा के लिए तोड़ कर मेवाड़ भूमि की पहाड़ी पगडंडियों पर चल पड़ी थी, उनमें गाड़ियों

के पूर्वज भी थे। महाराणा की प्रतिज्ञा को वे, सदियों बीत जाने पर तथा परिस्थिति के महान उथल-पुथल के बाद भी अपनी इस प्रिय धरोहर की रक्षा करते आ रहे हैं। गाड़ोत्ये आज भी नगर में बास नहीं करते, सुख के साधन इकट्ठे नहीं करते, गाड़ियों में रहते हैं और जगह जगह घूम कर लोहे के औजार बनाते हुए स्वतंत्रता की टेक पर जमे हुए हैं। ज्ञान व अज्ञान में बीतने वाला उनका यह जीवन उन्हें अब भी सोहता है— क्योंकि वह एक महत् लगन का स्मारक-रूप है। जिस कौम के रक्त में अज्ञात रूप से ऐसी लगन रमी हो, उसका एक सदस्य क्योंकर नौकरी को—गुलामी की शृंखला को—अपनाना चाहेगा? अनेक कठोरताओं में परिपूर्ण उनके जीवन की टेक यही है, जैसे उसकी दृढ़ चट्टान पर वे अनेक नृपानों की थपेड़ों को खा कर भी जिन्दा हैं। अवश्य ही मैंने उस बालक को गुमराह करने की ओर कदम रखा था।.....

पर आज वे जैसे जिन्दगी बिता रहे हैं— वह क्या उस प्रण-परायणता का ही फल है? मैं ठिठक जाता हूँ, आखिर ऐसा क्यों? उनके आचार-विचार में जो एक टेक— एक अंध-हठ कह दूँ—बढ़मूल हो गई है, क्या वह आज की स्थिति में अपना कोई प्रयोजन रखती है? मेरा तटस्थ परीक्षण उनके जीवन-व्रत में समभाव नहीं रखता, वह उसका उपहास ही कर उठता है; फिर भी हृदय में एक कोमल लहर फूट कर उनके दयनीय दशा के प्रति महानुभूति भर जाता है। करणी और उसका छोटा परिवार उस महानुभूति का अनायास ही केन्द्र बन गया है।.....

एक दिन मैंने श्रीमती से भी सारी बातें कहीं, सुनकर वह भयभीत-सी दिग्वार्द दी। थोड़ी देर बाद उसके मुँह में निकला :

“अच्छा हुआ ..”

“अच्छा हुआ।” मैंने उनके इन अपूर्ण शब्दों को दुहराते हुए कहा, अच्छा क्या हुआ?”

“कि उस लड़के को न रखा हमने।”

मैंने श्रीमती के इस कथन पर कुछ भी न कहना चाहा, अतः चुप ही रहा।

×

×

×

इधर कुछ दिनों से मेरे सब से छोटे बच्चे की तबीयत ज्यादा खराब हो गई थी, मैंने घूमने जाना बंद कर दिया था।

उस दिन हमारे हल्के की बिजली बंद थी। बैठक में मीठे तेल का दीपक जल रहा था। सड़क की ओर वाला बैठक का द्वार खुला था। उधर से धीरे धीरे हवा आ रही थी। कृष्ण पत्र था, सड़क पर अन्धकार छाया हुआ था एकाएक बैठक के द्वार से मंद आवाज आई :

“बाबू।”

मैंने प्रश्न किया : “कोन है ?”

मैं हूँ, बाबू !”

ध्वनि से मैं समझ गया कि वह वही लड़का है। मुझे शंका हुई कि वह फिर अवज्ञा कर यहाँ आया है, मेरा स्वर कुछ कठोर हो गया, बोला :

“क्यों आया है रे ?”

“बाबू, बड़ी बाई भी हैं और बा भी है !”

मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने उसी कठोरता से कहा :

“बदमाश !”

“सच कहता हूँ बाबू ?”

उसके स्वर में ऐसी दारुण करुणा भरी थी कि अपनी आँखों से न देखकर भी मुझे लगा जैसे वह रो रहा है। मैंने सुना, वह कह रहा था :

“बड़ी बाई कहला रही है कि हम बड़ी मुसीबत में हैं। कल हमारी गाड़ी में आग, लग गई। पता उस समय लगा जब कि गाड़ी में पड़ा सारा सामान भीतर ही भीतर जलभुन एकाएक धधक उठा, हवा ने जोर पकड़कर आग को फैला दिया। हम चेतें कि इसके पहिले ही दूसरी गाड़ियों को लपटों ने पकड़ लिया। पानी रेत, जो भी कुछ मिला उसे डाल-डाल कर हमने आग को बुझाने की कोशिश की। बुझाने में आखिर सफल भी हुए पर हमारे करम तो पहिले ही फूट चुके थे। मुसीबत की मार ऊपर से यह भी हुई कि इसी बीच पुलिसवाले भी वहाँ आ गये। डाटाडपटा, मारापीटा और हमें पकड़ कर कोतवाली ले गये। हमारा कसूर क्या था ? अपना सारा गवों कर भी बेरहमी के शिकार हम बने, वे तो अपनी जेब गरम करना चाहते थे ! सो हमें देना पड़ा और दोपहर ढलते ढलते उनके पंजे से छूट कर हम उस चौगान में गये, तो देखा हमारे साथी वहाँ कोई नहीं हैं। हमारी गाड़ी और सामान की गल बिल्बरी पड़ी है—राख के मिवा वहाँ कुछ भी नहीं है। . .”

वह और थोड़ी देर बाद फिर बोला :

“बड़ी बाई कहला रही है कि आप दयावान हैं, मुझे नौकर रख लें, बड़ी मेहरबानी होगी।”

मैं कुर्सी पर बैठा हुआ आँखें फाड़े द्वार के बाहर फैले हुए अन्धकार की ओर देख रहा था जहाँ वह लड़का, उसकी बड़ी बाई और उनका वृद्ध बा इस विपत्ति के समय आशा लिए खड़े हुए थे मानों हम अनन्त अंधकारमय सागर की भीषण थपेड़ों से उबरने के लिए उनके पास एक ही तिनका बाकी रह गया है, उसी के आधार पर वे निर्भर हैं, नहीं तो अथाह जल जिसकी उत्ताल तरंगों में उन्हें डूब मरना है !

मेरी ओर से कोई उत्तर न पाकर वह लड़का फिर बोला—

बड़ी बाई जवाब चाहती हैं, बाबू, !”

मैं चौंक पड़ा। मेरे मौन का अर्थ उपेक्षा ही लगाया जा सकता था, व्यग्रता से मैंने तार पकड़ते हुए कहा :

“किस बात का जवाब ?”

“यही कि आप मुझे नौकर ...”

“नौकर !” उसके अभिप्राय को जैसे मैं हृदयगम्भ कर चुका हूँ बाधा देते हुए फिर मैं कुछ विचार कर बोला : “अच्छा, ठहरो। मैं भीतर पूछ आता हूँ।”

अपने को जैसे-तैसे मैं स्थिर कर मैं श्रीमती के सम्मुख उपस्थित हुआ, वह मेरी ओर देख कर बोली :

क्या बाहर जा रहे हैं ? वबू सो गया क्या ?”

हाँ...हाँ !” खाँस कर मैंने कहा। मुझे कुछ आशंका थी, जब से मैंने श्रीमती को उस लड़के के संयन्ध में खुल कर बातें कही थीं, तब से ही भयभीत खिंची हुई प्रतीत हुई थी। मुझे याद नहीं कि उसके बाद श्रीमती ने उस लड़के का जिक्र तक किया हो। मैंने सावधानी बरते हुए कहा :

“वे आये हैं।”

वे कौन ?” श्रीमती ने आश्चर्य से पूछा।

वे गाड़ोले ।”

“क्यों ?”

मैंने भूमिका बोधते हुए कहा :

“कल उनका सब कुछ जल गया - गाड़ी, सामान सब कुछ। और ऊपर स गरीबों को पुलिस पकड़ कर भी ले गई, आज छूट पाये हैं दोपहर ढलते ढलते। छुटकारा यों ही तो मिला नहीं, पुलिस को कुछ देना ही पडा होगा। कैसी दुनिया है, सुसीबत में भी कोई किसी का नहीं। पुलिस की तो बात ही क्या, वे लोग जब अपने डेरे पर गये, तो उनके साथी भी वहाँ से चले गये थे अपना सब कुछ लेकर। उन्होंने देखा वहाँ केवल जले सामान की राख बची है। इस हालत में उनके पास चारा भी क्या था ? कुछ माँच कर ही बेचारे यहाँ आये हैं। वह लड़का नौकरी चाह रहा है। और तुम जानती हो उसकी बड़ी बड़ी बड़ी एक समय नौकरी के खिलाफ थी। पर परिस्थिति की विवशता क्या नहीं कराती ! तो तुम क्या कहती हो ?”

मीठे तेल के दीपक की रोशनी में मैंने देखा श्रीमती का मुख झुका हुआ है। वह माँच रही थी।

मैंने फिर कहा : “वे बाहर खड़े हुए हैं।”

गाड़ियों के प्रति जो अज्ञात भय तथा विरक्ति की भावना श्रीमती के हृदय में बढमूल थी वह उस लड़के के करतबों को सुनकर उभर आई थी। मेरे कथन की आतुरता में श्रीमती को यह लगा जैसे मैं उस लड़के की विवश-परिस्थिति को बलपूर्वक, बिना अवसर दिये, उसके सिर मँडना चाहता हों। आतंक से लुब्ध सी वह छटपटा कर चिल्ला उठी :

“खड़े हैं, तो क्या करूँ ? आवभगत के लिए दौड़ी जाऊँ क्या ?”

श्रीमती को इस विकृत मनोवृत्ति से मैं उद्बिग्न हो उठा, मैंने नरमी से उसे समझाने की कोशिश की :

“सो नहीं करना होगा। नौकर की जरूरत है ही, और इस जमाने में नौकर मिलते भी नहीं। कहो तो.....”

मुझे जरूरत नहीं है। कह दें, नौकर हमें नहीं रखना है।”

श्रीमती रोज़मर्रा नौकर ढूँढ़ लाने के लिए हठ पूर्वक कहती रहती थी वह अपना दुःख भूल रही थी और द्वार पर आये हुए पीड़ितों के दुःख की भी उपेक्षा कर रही थी। इस का कारण मेरे सामने स्पष्ट था पर मैं उसे कैसे समझाता कि इन लोगों के प्रति उसकी धारणा रुढ़िगत है, कि चोर, लुटेरे आदि के बीच मनुष्य भी वास करता है।

मैंने एक बार फिर पूछा : “क्या कहती हो?”

“कह तो दिया। जाकर कह देंगे हमें नौकर की जरूरत नहीं है।”

बड़ी गहन स्थिति मेरे सम्मुख थी! एक ओर वे पीड़ित-दूसरी ओर श्रीमती का भ्रान्तिपूर्ण अडिग हठ—जहाँ तक नौकर रखने का सवाल है, उसका समाधान श्रीमती के मत पर ही निर्भर हो सकता है, ऐसी मेरी धारणा रही है। मैं भारी मन बैठक के द्वार पर आकर खड़ा हो गया और इबने हृदय से बोला :

देख रे, हमने अभी तो एक दूसरे का वचन दे दिया है। उसे अब कैसे इन्कार किया जा सकता है! मैं लाचार हूँ !”

फिर उस लड़के को पास बुलाकर मैंने उसके हाथ में दस रुपये का नोट रखते हुए कहा : “ले अभी ये ले जा। और अधिक की जरूरत पड़े तो मेरे पास आ जाना, समझा।”

इसके पश्चात्, मैं अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया—शून्य हृदय लेकर। थोड़ी देर बाद ही, वह लड़का भीतर आया और वह नोट मेरी गोद में डाल कर बोला :

“बड़ी बाई ने शुक्रिया कहा है, बाबू !” इतना कह कर वह वापिस लौट पड़ा।

“अरे ऐसा क्या ?” विभ्रान्त-सा कहता हुआ मैं भी दरवाजे तक चला गया। मैंने देखा द्वार के सामने फैले अंधकार में एक धुँधली मूर्ति खड़ी है। स्पष्ट न देख सकने पर भी मैं समझ गया कि वह उस लड़के की बड़ी बाई करणी है। मैं मूक खड़ा कटुता से यह अनुभव कर रहा था कि एक अभागे परिवार के आत्म-सम्मान को अपने चरणों पर मुझे देख कर भी मैं उसका तिग्मकर कर रहा हूँ !

मंद स्वर में वह बोली :

“बाबू, मुझे माफ़ करना मैंने तुम्हें अनजाने उस दिन क्या क्या कह दिया था ! यह बंदर तुम्हें बहुत चाहता है, इसके बार बार कहने पर हम यहाँ चले आये। कोई रास्ता भी तो नहीं दिगवाई दे रहा था। तुम पर जोर डालना नहीं चाहती—हो जाता, तो ठीक था और नहीं हुआ है तो भी ठीक ही है। कोई बात नहीं। तुम्हें याद होगा। बाबू, उस दिन मैं तुम्हें बंदरुआ देने पर तुली हुई थी, पर आज” आज मेरा यह छोटा मन तुम्हारे बड़प्पन के सामने झुका जा रहा है !”

वह झुकी, शायद उसने अभिवादन किया हो, फिर घूम कर चुपचाप वहाँ से चल पड़ी। उसके पीछे उसका बा था और फिर उसका छोटा भाई। मेरी आत्मा जैसे फूट कर गरज उठना चाहती हो, “लौट आओ ! लौट आओ !!

और अपनी विकट परिस्थिति का भार लिए वे तीन प्राणी उस अन्धकार में विलीन हो गये !



जिन्दगी

लेखक—श्री देवी दयाल चतुर्वेदी, संपादक—सरस्वती इलाहाबाद

सावन-भादों की झमझम कर बरसती हुई अंधेरी और गीली रातों में जब नन्दो का परिवार सुख की नींद सोता, तब वह अपने विस्तर पर पड़ी-पड़ी करवटें बदलती रहती और अतीत की स्मृतियों की आग की लपटों से झुलसती रहती। अंधेरे में ही आँखें फाड़-फाड़ कर वह मानां कुछ देख लेने का निष्फल—सा यत्न करती। इस देख लेने की क्रिया में जब उसे कोई सफलता हाथ न लगती, तब स्वभावतः उसका मन अपने ही जीवन की धू-धूकर जलती पगडण्डी पर कभी आगे और कभी पीछे बढ़ जाता और विचारों का कुछ ऐसा तौता बँध जाता कि घण्टों उसी में उलझी रह जाती।

कमरे में व्याप्त उस गहन अन्धकार की भाँति ही उसका आज का जीवन अन्धकार पूर्ण है, जिसे छिन्न-भिन्न करने की भीम भावना से वह भर-भर उठती है। लेकिन एक खोभ ही उसके मन-प्राणां को बेचैन कर बैठती है।

वह मन-ही-मन स्वीकार करती है कि जिस प्रकार उस कमरे के अन्धार को दूर करने की क्षमता आज उसके परिवार के एकमात्र पोषक बड़े भाई सुधीर में नहीं रही, ठीक उसी प्रकार यह नन्दो भी अपने जीवन का अन्धकार—गहन अन्धकार—छिन्न-भिन्न कर सकने में एकदम असहाय और असमर्थ हो चुकी है।

और इस कमरे के अन्धकार में तथा नन्दो के जीवन के अन्धकार में बहुत कुछ समानता भी है। कमरे के अन्धार को दूर करने के लिए जिस एक दीपक की आवश्यकता पड़ती है, वह इस परिवार में न हो, सो बात नहीं। दीपक तो हैं, परन्तु जिस तेल के बिना दीपक का कोई अस्तित्व नहीं वह तेल अब सहज-सुलभ नहीं।

सुधीर अच्छी-सी नौकरी कर रहा है। उसके पास कुछ पैसे भी हैं लेकिन इन पैसे का अब वह मूल्य नहीं रहा जो पहले था। दूसरे महायुद्ध को समाप्त हुए कई वर्ष बीत गए; किन्तु तज्जन्म अभिशापों की काली छाया से संसार अब तक मुक्त नहीं हो सका। अब तो हम पैसे लेकर बाज़ार में बनियों की दूकानों पर सौ-सौ चक्कर काटते रहें, तब भी जरूरत की चीजें हमें मिल नहीं पातीं। और, ठीक यही हालत नन्दो के जीवन की है—उसके अन्धकार को दूर करने की है। यह अन्धकार भी दूर किया जा सकता है; लेकिन इसके लिए जिस साहस की आवश्यकता है, वह हमारे तरुण-तरुणियों में है नहीं। और, इस साहस के अभाव में हो यह नन्दो नारी अपने जीवन के अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सकने की मात्र व्यस्तता लेकर परिस्थितियों से समझौता करके ही रह जाती है।

लेकिन नारी की इस असहाय अवस्था के लिये यदि किसी को उत्तरदायी कहा जा सकता है, तो नन्दो की दृष्टि में आज के पुरुष-वर्ग को ही। पुरुष ने अपने स्वार्थों के लिए, अपने एकाङ्गी अधिकारों के लिए और अपने कर्त्ता, धर्त्ता तथा हर्त्ता बने रहने के कृत्रिम गौरव में नारी को जानबूझ कर ही असहाय बना रखा है।

यदि यह बात न होती, तो तरुण नन्दो को वैधव्यकातरा बनकर, आँसुओं की माला के मनके गिनते हुए सावन-भादों की भ्रमभ्रम कर बरसती हुई ये गीली रातें यों ही काट देने की नौबत क्यों आती? तब सुधीर के मन में कभी एकाध क्षण के लिए भी यह भावना क्यों न उठती कि एक ही दीवार की उस ओर दूसरे कमरे में, जहाँ पर स्वयं तरुणाई की रंगीनियों में सराबोर रहकर अपनी पत्नी के साथ रँगरेलियाँ मना सकता है, वहीं उसकी तरुण बहिन—नन्दो—के मानस में पता नहीं कितने तूफान उठते होंगे?

माना कि सामाजिक रस्म-रवाजों के मुताबिक सुधीर को यह सब अधिकार है; वह अपनी पत्नी के साथ दुनिया की रंगीनियों का खुलकर और जी भर कर स्पर्श कर सकता है; लेकिन नन्दो की तरुणाई का न तो सुधीर को ही कोई ख्याल है, न इस समाज को। समाज जहाँ कठोरता से सामाजिक नियमों के पालन की अपेक्षा करता है, वहाँ क्यों यह भूल जाता है कि तरुणाई की उमंगों का तूफान मानव मात्र में उम्र के साथ-साथ उठेगा ही; उसे कोई शक्ति दबा नहीं सकेगी—आज तक दबा नहीं सकी। और जब-जब जहाँ कहीं भी इस तूफान को दबा देने की जबरदस्ती की गई, तब-तब समाज के नियम एक तरफ धरे रहे और तज्जन्य दुष्परिणाम ही प्रकट होकर रहे।

नन्दो के मन में ये सारी बातें इतनी तीव्रता से सम्भवतः इस वक्त न भी आती; लेकिन आज ही सन्ध्या के मुटपुटे में जब उसकी भाभी मेहँदी से अपनी दूधलियाँ रंजित कर रही थी, और नन्दो वहीं बैठी-बैठी कर्मदा काढ़ रही थी तभी नन्हें अनायास कह उठा था—‘तुम भी मेहँदी रचालो बुआ!’

अनजान नन्हें! भला, उसे क्या पता कि वह साधारण-सी बात उसकी तरुण बुआ—नन्दो—के मर्म पर जाकर कोई करारी चोट कर बैठेगी—ऐसी चोट, जिसकी पीड़ा से नन्दो की नींद तक हवा हो जाएगी।

यह सुन, नन्दो तो चुपचाप बैठी रही, वह कहती ही क्या? लेकिन नन्दो की भाभी ने अवश्य कहा था—‘नहीं नन्हें, तुम्हारी बुआ मेहँदी नहीं रचाती।’

‘क्यों नहीं रचाती, माँ?’ नन्हें ने फिर पूछा था—‘तुम रचाती हो, तो बुआ क्यों नहीं रचाती?’

और इसी ‘क्यों नहीं’ पर जब नन्दो का ध्यान गया, तो वह मर्माहत हो उठी। उसी वक्त नन्हें को गोद में लेकर नन्दो बाहर बरामदे में चली गई और अपनी मर्मवेदना को, नन्हें के साथ इधर-उधर की गपशप में भुला देने की चेष्टा करने लगी।

— २ —

दोपहर से लेकर सन्ध्या-बेला तक मूसलाधार पानी बरस चुका था। कदाचित् इसीलिये अब आसमान में उमड़ी मेघ-माला छिन्न-भिन्न-सी होने लगी थी।

मूसलाधार पानी बरस चुकने के कारण नन्दो के घर के सामनेवाली सड़क पर लोगो का आना-जाना और इक्के-ताँगे की सरपट-सी दौड़ भी इधर घायटों से बन्द थी। सड़क की दोनों तरफ की नालियों में अभी तक पानी की वेगवती धारा उमड़ती हुई बही जा रही थी।

सड़क पर जहाँ-तहाँ अब तक कीचड़ का अस्तित्व था। बीच-बीच में छोटे-बड़े गड्डों में भरा हुआ पानी आने-जानेवालों के साथ मानों मजाक कर रहा था। जब कभी इन गड्डों में किसी राहगीर का पैर पड़ जाता, तो उसके साफ-सुथरे कपड़ों पर कीचड़ की नक्काशी दर्शनीय हो उठती थी। लेकिन पानी बरसना बन्द हुआ नहीं कि थोड़ी ही देर बाद सड़क पर पुनः आवागमन शुरू हो गया।

पानी बरस जाने से दुनिया के कारबार में तो कोई रुकावट नहीं आसकती न ! आग बरसे अथवा पानी दुनिया के व्यापार बराबर चलते रहते हैं। वे कभी रुक नहीं सकते। थोड़ी देर के लिए भले ही उनके क्रम में कुछ शिथिलता आ जाए, परन्तु एकदम बन्द नहीं हो सकते।

नन्हें को अपनी गोद में लिये हुए नन्दो सड़क पर यही सब चहल-पहल दिखला रही थी। नन्हें की आँखो को यह दृश्य लुभावाना प्रतीत हुआ। दुनिया के इन व्यापारों में उसका मन उलझ गया। और नन्हें का मन जहाँ इन व्यापारों में उलझा, वहाँ नन्दो का मन भी तो इन्हीं बातों को लेकर व्यस्त हो गया।

नन्दो ने स्वीकार किया कि पानी बरसना तो साधारण सी बात है, किसी का सर्वस्व छिन जाने पर भी दुनिया का व्यापार कभी नहीं रुकता—तनिक भी नहीं। जिस दिन उसकी जिन्दगी का चमन उजड़ गया था, उसका अपना जीवन-संगी इस दुनिया के मुमाफिरखाने को छोड़ कर अनन्त यात्रा पर कदम बढ़ा चुका था, उस दिन उसका अन्तस्थल कितना अभिभूत हो उठा था; उसकी आँखों का खारा पानी कितनी तीव्रता से वह निकला था और उसके अन्तर की नारी का रोम-रोम कितना आकुल-व्याकुल हो उठा था ! लेकिन दुनिया का व्यापार था कि उसमें कहीं कोई अन्तर नहीं आया—तनिक भी नहीं।

उसका अपना चमन उजड़ गया; लेकिन दुनिया का चमन पहले जैसा ही गुलजार रहा। उसे अपनी माँग का सिन्दूर सदा के लिये पाँछ डालना पड़ा; लेकिन दुनिया की नारियाँ—दुनिया की बात जाने दीजिये, उसके अपने ही परिवार की नारियाँ, बराबर अपनी माँग में पहले की तरह ही सिन्दूर भरती रहीं। उसे अपनी कलाइयों की काँच की चूड़ियाँ फोड़ देनी पड़ी; लेकिन; दूसरी सभी नारियाँ इन काँच की चूड़ियों को पहन कर सुहाग की गरिमा से, दीप्त होती रहीं। आखिर, दुनिया के किस व्यापार में, कहीं, कौन-सा अन्तर आया !

नन्हें को अपनी गोद में चिपकाये उस सन्ध्या-बेला में नन्दो यह सब अर्धविदित तौर पर ही सोचती-विचारती रही। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे लगा कि दुनिया के व्यापारों में किसी के हानि-लाभ से कोई अन्तर आना भी क्यों चाहिये ? यदि ऐसा होने लगे तो दुनिया का जीवन एकदम निरानन्द हो उठे।

अभी नन्दो सम्भवतः और भी अधिक देर तक इन्हीं सब विचारों में उलझती रहती, लेकिन इसी बीच सुधीर अपने दफ्तर से लौट आया। नन्दो तो अपने आपमें खोई और उलझी-सी थी, सो उसने सुधीर को देखा नहीं। लेकिन नन्हें ने दूर से ही अपने पिता को पहचान लिया। नन्दो बुआ की गोद में चिपके-चिपके ही उसने कहा—‘दादा !’

यह ‘दादा’ सुनते ही नन्दो की चेना मानो स्वस्थ हो उठी। उसकी विचार-लड़ियों का एक-एक मनका बिखर गया। मन की सारी व्यथा और पीड़ा को पीकर वह घूम पड़ी और सुधीर को देखते ही बोली—‘भैया, यह नन्हें बहुत परेशान करने लगा है।’ और इसके आगे वह जो-कुछ कहने जा रही थी, उसे अव्यक्त रखने पर उसने सहसा विजय प्राप्त कर ली। उसे अपने-आप पर बड़ी खीझ हो आई। छिः छिः ! वह क्या कहने जा रही थी अपने भैया से ? कहीं नन्हें की यह बात भी वह अपने भैया से कह सकती है कि वह मेहँदी रचाने का अनुरोध कर रहा था नन्दो से, और इसी बात को लेकर नन्दो आज इतनी परेशान हो रही है—अभिभूत हो उठी है कि ।

‘इसके लिए तुम्हीं उत्तरदायी हो, नन्दो !’ सुधीर ने जाने किस मनोदशा में कह दिया—‘रात-दिन तुम्हें समय रहता है, इसलिए नन्हें की हर बात को तुम पूरा करती रहती हो। फिर भला, वह नन्हें तुम्हें परेशान न करेगा तो किसे करेगा ? और, यह परेशानी किसी दिन सभी को परेशान करेगी नन्दो ! इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम इसकी आदत मत बिगाड़ो।’ और एक हलकी-सी चपत नन्हें गुलाबी गाल पर लगाते हुए सुधीर भीतर चला गया।

इसके बाद उस दिन रात को सोते समय तक नन्दो के हृदय में एक अव्यक्त हाहाकार प्रतिध्वनित होता रहा। अनीत की स्मृतियाँ स्फुलिङ्ग बन कर उसके जीवन वन को आग की लपटों में झुलसाने लगीं। लेकिन उसने अपनी यह गंदादशा किसी पर व्यक्त नहीं की। वह आदी हो चुकी थी ऐसी जिन्दगी बिताने की। मन भारी रहे, तन दुखी रहे; लेकिन ओठों पर मुस्कान की एक रेखा सदा नाचती रहे। नारी जो ठहरी ! उथली भी, गहरी भी। ज्ञेय भी, अज्ञेय भी। सरल भी और कठोर भी !

— ३ —

रात में जब सब लोग यथा स्थान अपने-अपने विस्तर पर सो गए, तब नन्दो की सुलगाती आग जैसा रह-रहकर भभकने लगी। जीवन-पुस्तक के पन्नों को पलटते हुए उसने स्वीकार किया कि उसका भूत ऐसा नहीं, जिसका स्मरण कर वह सन्तप की साँस ले सके; उसका वर्तमान ऐसा नहीं, जो उलझनों से खाली कहा जा सके और भविष्य क्या होगा, इसे वह जान ही क्या सकती है !

सन्ध्या समय नन्हें ने नन्दो से मेहँदी रचाने का आग्रह करते हुए जो कुछ कहा था, उसकी मीमांसा करने में वह घण्टों व्यस्त रही। समाज व्यवस्था पर उसके अन्तर में एक आग धक्क उठी—ऐसी आग जो समाज की प्रत्येक विधवा में प्रज्ज्वलित हो उठे, तो उसकी लपटों में समाज के सड़े गले रस्म-रवाज चुटकी बजाते भस्म हो सकते हैं, और उस चिता भस्म पर

जिस नवीन व्यवस्था का—नवीन समाज का निर्माण हो, वह निश्चय ही कल्याणकारी हो ...

लेकिन इस समाज-व्यवस्था पर उलझते-उलझते जब उसने अपने आप को प्रतिकार करने में असहाय अनुभव किया, तब अपने भैया के उन शब्दों पर मनन करने लगी, जो उन्होंने दफ्तर से लौटने पर कह डाले थे—‘इसके लिए तुम्हीं उत्तरदायी हो, नन्दो !’

लेकिन नन्दो का विवेक प्रयत्न करने पर भी यह न समझ सका कि नन्हें उससे मेहँदी रचाने का आग्रह करता है, और वह इस सौभाग्य से वंचित रखी जाती है, तो इसके लिए उसे कैसे उत्तरदायी कहा जा सकता है ? फिर उसे लगा कि सुधीर ने तो परिस्थिति को जाने-बूझे बिना ही, सहज भाव से यह सब कहा था न ! सुधीर को पता ही क्या कि इसके पहले नन्दो को किस स्थिति का सामना करना पड़ा था । यदि यह बात न होती तो, वह क्यों कहता—‘रातदिन तुम्हें समय रहता है, इसीलिए नन्हें की हर बात को पूरा करती रहती हो ...!’

लेकिन रात-दिन समय रहते हुए भी इस बात के लिए नन्दो करे क्या, कहे किससे ? और नन्हें के साथ ही इस जिन्दगी की जो विशृंखल कड़ियाँ वह मिलाया करती है, उसे भी तो वह इस निरानन्द जीवन का भार ढोए जाने का बहुत बड़ा सहारा—बल—मानती है ।

और भ्रमभ्रम कर बरसती हुई उस गीली रात के सूने आलम में यह नन्दो अपनी ही जिन्दगी की धू-धू जलती पगडण्डी पर आग की लपटों के बीच कब तक झुलसती रही, इसे न तो उसके भैया-भाभी जान सके और न समाज के नियम बनानेवाले !



भूरा बैल

लेखक—श्री केशव देव मिश्र 'कमल', एटा

रायपुर गांव के सागर किसान को कौन नहीं जानता ? जानवरों के मामले में सागर किसान बहुत जानकार है। राह चलते जानवर को एक निगाह में परख लेना उसके बाएँ हाथ का खेल है। इसीलिए जब किसी को कोई बैल-बछिया खरीदनी होती है, तो वह सागर का ही आश्रय पकड़ता है।

सागर का यह 'भूरा बैल' नया नहीं है। वह जीवन के उत्तरार्ध में चल रहा है। भूरा ने बहुत जमाना देखा है। सुख के दिन देखे और दुख के भी देखे हैं। अकाल देखे और सुकाल देखे हैं और इन सब की अनुभूतियों को लेकर वह गर्व से अपना माथा उठाए जीवन-पथ पर बढ़ता आया है। सागर का कृपाकांक्षी रह कर भूरा ने अपना मन मैला कभी नहीं किया है। हंस-हंस कर उसने खेत जोते, और उछल-उछल कर गाड़ियाँ चलाई हैं। बारातों में जब-जब सावका पड़ा है, तब-तब भूरा ने हमेशा बाजी मार कर दिखाई है।

एक दिन 'भूरा' के जोटिया बैल ने भूरा से पूछा—“भाई ! तुम किधर के रहने वाले हो, और सागर के यहां कब से काम कर रहे हो ?”

भूरा ने नम्रता पूर्वक कहा—“भैया ! मैं तो इसी गांव का बाशिन्दा हूँ। यहीं जन्मा, बड़ा हुआ और जवानी पाई। अब बूढ़ा भी हुआ। मेरी मां इसी खूँटे पर मरी अब मैं भी ...।”

जोटिया बैल ने कृतज्ञ भाव से कहा—“तब तो तुम भाई बड़े भाग्यशाली हो। एक खूँटे पर रहने का सौभाग्य सब को नहीं मिलता। मुझे ही देखो मैं, हरिया का रहने वाला और आ पड़ा इधर। जन्म-भूमि छूटी। भाई-बंधु छूटे। सब कुछ ही छूट गया और इधर आकर भी कभी स्थिर होकर नहीं बैठ पाया।”

भूरा ने गंभीर होकर कहा—“सो तो भैया मैं भी कई बार बाल-बाल बचा हूँ। अहमद बनजारा मेरे पीछे एक मुद्दत तक हाथ धोकर पड़ा रहा। पर मालिक ने बेचने की कभी 'हां' नहीं भरी। बनजारा मेरी मुंह-मांगी कीमत देने को तैयार था जब मालिक किसी प्रकार बेचने को राजी न हुआ तब बनजारा अंत में यह कह कर चला गया कि 'जब कभी बेचने का इरादा हो, तो भूरा को देना मुझे ही।' ”

सागर ने भूरा को अपने लड़के की तरह पाला था। बचपन में खूब दूध पिलाए और जवान होने पर हरी घास, रातब और सानी के अतिरिक्त कोई गन्दी चीज़ मुंह में नहीं जाने दी। स्वयं कष्ट उठा लिया, भूरा को दुखी न रखा। इसी लिए तो भूरा का

कभी भी कोई मुकाबला नहीं, कर सकता। लोगों ने भूरा को पाने के लिए बहुत प्रयत्न किये, पर जब कोई मालिक बेचने को ही राजी नहीं, तब कोई कर ही क्या सकता था ? कुछेक मनचलों ने सागर को यह भी धमकी दी कि 'भूरा को बेच दो, नहीं तो, उसे चुरा कर रातों-रात जमुना पार भिजवा दिया जायगा।' लेकिन इन धमकियों पर भी सागर भूरा को बेचने का विचार कभी मन में न ला सका था।

×

×

×

×

इस साल वर्षा बिल्कुल नहीं हुई। खेती चौपट हो गई। न चांग न अन्न। किसान मुसीबत में पड़ गए। गांव में हल-चल मंच गई। जिनके पास फालतू जानवर थे वे उन्हें सस्ते में हटाने लगे। सामने मुँह बाए खड़ी मुसीबत को देखकर सागर भी हिल-गया। उसने अपने घर में बँधे सारे जानवरों पर निगाह डाली—यह दो खेती के बैल हैं। सो यह तो हटाए नहीं जा सकते। यह भैंस है, जो दूध देती है। गृहस्थी का सहारा। इसे बेचना भी मूर्खता होगी। यह गाभिन गाय, जो अगले मास बच्चा देगी। फिर किसको बेचा जाय ? चारे की बहुत कमी है करबी का भाव रुपया पूरा है। छीलने को घास भी कहीं, नहीं जिससे जानवरों का पेट भरा जा सके। इसी उधेड़-बुन में पड़े सागर की निगाह एकाएक छप्पर में बँधे भूरा बैल पर जा पड़ी। वह सोचने लगा—भूरा ही इन सब में फालतू लगता है। बूढ़ा है, इससे कठिन मशकत के काम का भी नहीं। खूँटे पर बांधा-बांधा खाता ही है इसे ही बेच देना चाहिए। यह निश्चय कर एक बार सागर ने फिर जुगाली कर रहे उस भूरा बैल पर दृष्टि डाली। उसकी आँखें भूरा की आँखों से जा मिलीं। सागर ने अपनी आँखें भट अमियुक्त की तरह नीची कर लीं। उसको लगा कि भूरा मानों कह रहा है—'ओह' मेरे मालिक इस बुढ़ापे में भूरा के लिए यह तुम क्या सोच रहे हो ?'

इतने पर भी सागर ने अपना निश्चय बदला नहीं। कई दिन बाद इधर उधर घूमता-घामता, बैलों के समूह को साथ लिए अहमद बनजारा आया तो सागर ने कहा—“अहमद ! अब की तो बहुत दिनों में आए। क्या कहीं दूर निकल गए थे ?”

अहमद ने कहा—“अब की हिसार की तरफ चला गया था। माल खरीद लिया, पर लदान नहीं हो सका, सो काफी परेशानी हुई। माल सब पैदल लाया हूँ। देख नहीं रहे हो, थकान से बछड़े सब कैसे मरे-मरे से हो रहे हैं ? पर नस्त अब की अच्छी लाया हूँ। चाहो तो एक बछड़ा ले लो।”

सागर ने गर्दन हिलाकर कहा—“नहीं भाई ! इस बार तो नहीं, चारे की बड़ी तकलीफ है। मैं तो अबकी अपने भूरा को ही बेच रह हूँ। उमे तुम ले जाओ ! किसी भी छोटे-मोटे किसान को सौंप देना हल्की खेती वा काम तो अब भी देता रहेगा। दाम जो मुनासिब समझो दे देना।” यह कहकर भूरा की रस्सी सागर ने अहमद के हाथ में पकड़ा दी।

अहमद ने भूरा को ले जाकर दूर किसी गांव में बेच दिया और कीमत सागर को लाकर दे दी। इस पर कोई पन्द्रह दिन बीते होंगे कि भूरा रस्सी तुड़ा कर रातों-रात चलकर अपने पुराने ठिए पर आ पहुँचा। सुबह उठकर सागर ने देखा, तो छप्पर के नीचे

रम्पा

लेखक—साहित्याचार्य श्री उमादत्त सारस्वत “दत्त” बिसवां, सीतापुर ।

गौरी माधोपुर का रहने वाला था । था तो वह गरीब, परन्तु अपनी बात का बड़ा पक्का था । घर में उसकी स्त्री थी, अठारह वर्ष का एक मात्र पुत्र गोरख, और सोलह वर्ष की एक कन्या रम्पा थी । चारों ही अपनी ही गरीबी में मस्त थे ! दो गाँवों, एक भैंस और कुछ ज़मीन यही उनकी सम्पत्ति थी । गोरख गाँव के ज़मींदार के पास चार रुपिया मासिक पर नौकर था, जिनमें दो रुपये मासिक तो ब्याज के कट जाते थे और शेष दो रुपये गोरख-को मिलते थे । गौरी खेत का काम देखता था । और रम्पा तथा उसकी मां जानवरों के लिये चारा लाती थी । इस प्रकार चारों ही जब दिन भर जी तोड़ कर परिश्रम करते थे, तब कहीं शाम तक एक पहर खाने का प्रबन्ध हो पाता था ।

रम्पा की सगाई बेनीपुर के जगन्नाथ के साथ पक्की हो चुकी थी, परन्तु गौरी के पास पैसा न होने से विवाह अभी नहीं हो पाया था । यह बात नहीं थी कि गौरी को इसके लिये चिन्ता न हो, परन्तु बेचारा करता ही क्या ! जाने कहां-कहां की धूल छान आया था, जिसका मुह भो न देखना चाहिए, उसके तलवे तक सहला चुका था, परन्तु सब कहीं से उसे नकारात्मक ही उत्तर मिला । गांव के ज़मींदार ठाकुर मकरन्दसिंह से वह क्या मुँह लेकर कुछ मांगता, अभी तो वह उनके पचास रुपये भी चुकता नहीं कर पाया था । फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा । वह दिन-रात काम में जुटा रहता । दिन में हल जोतता और रात को समीप ही की शकर मिल में काम करता ; जैसे भी बने, वह आगामी जेठ में रम्पा के हाथ पोले कर देना चाहता था । पेट काट-काट कर किसी प्रकार पन्द्रह रुपए बचाये भी थे । परन्तु इतने में होता ही क्या था ! हायरी गरीबी !!

“आओ कितरतअली !” ठाकुर मकरन्दसिंह ने कितरतअली को देखते ही कहा ।

‘हाज़िर हुआ हुआ ! कहिए क्या हुक्म है ?’

‘क्या कहूँ कितरतअली ! तुम मेरी तबियत तो जानते ही हो ।’

‘हुजूर ! राजाओं-महाराजाओं की तबियत ऐसी होनी ही चाहिये । खाने-पीने और ऐश-आराम करने के लिये तो रुपया होता ही है । जिसके यहां शराब की दो-चार बोतलें खर्च न हों या एक आध मंगलामुखियां दिल बहलाने के लिये न हों, वह भी कोई रईस है ?’ कितरतअली ने मुस्करा कर कहा ।

‘यह तो सब ठीक है कितरतअली ! और सच पूछो तो तुम्हारी ही बदौलत जिस किसी को मैंने ताड़ा उसको अपनी प्रेयसी बना कर ही छोड़ा ।’ मूँछों पर हाथ फेरते हुये मकरन्दसिंह ने कहा ।

‘यह हुजूर की मेहरबानी है, जो इस नाचीज़ को इतना बड़ा स्तवा देते हैं, वरना खाकासार है ही किस खेत की मूली ।’ फितरतअली खीसैं निकाल कर बोले ।

‘हां, तो इस बार फिर मुझे तुमसे एक काम में सहायता लेनी है ।’ मकरन्दसिंह ने फितरतअली का हाथ बड़े प्रेम से पकड़ कर कहा ।

‘हुजूर के हुक्म भर की देर है । सहायता क्या, हुजूर के लिये जान तक हाज़िर है ।’

‘इसका मुझे पूरा विश्वास है, तभी मैं भी कलेजा चीर कर तुम्हारे सामने रख देता हूँ । क्यों फितरतअली ! गौरी को तो तुम जानते ही हो ।’

‘वही हुजूर के चरवाहे गोरख का बाप न ?’

‘हां, हां, वही । उसके एक कन्या रम्पा है । उसकी खूबसूरती को तुमसे क्या कहूँ, फितरतअली ! विधाता ने उसे अपने हाथ ही से बनाया है । हरिण जैसी भोली-भाली आंखें, गुलाबसा चेहरा, रेशम जैसे बाल’

‘अच्छी बात है सरकार’ फितरतअली ने संभल कर बैठते हुये कहा ।

‘और नाम भी साले गौरिया ने कैसा अच्छा रख छोड़ा है । “रम्पा” ।’

‘खादिम हुजूर का मतलब समझ गया । रम्पा को अगर हफ़ता भर के अन्दर ही हुजूर से न मिला दूँ तो मेरा नाम फितरतअली नहीं ।’

‘मगर फितरतअली ! है गौरिया साला बड़ा हेकड़, बहुत समझ-बूझ कर काम करने की आवश्यकता है ।’

‘हुजूर इसकी तरफ़ से निश्चिन्त रहें । फितरतअली के सामने बड़ों-बड़ों की बोलती बन्द हो जाती है । फिर गौरिया की बात ही क्या है ।’

‘यह तो मैं जानता हूँ । और देखो, रुपया-पैसा खर्च करने में मंकोच न करना । यह तो पचास रुपये अभी ले जाओ, बाकी जितने की ज़रूरत हो, सो और ले लेना ।’

फितरतअली ने पचास रुपये अपनी अलबट्टा में किये और घर की राह ली ।

(३)

रम्पा सचमुच ही रम्पा थी । कीचड़ में कमलिनी जैसी शोभायमान मालूम होती है, चीथड़ों में रम्पा भी वैसी ही मालूम देती थी । विखरे हुए बालों के बीच में उसका मुख वैसा ही भासित होता था, जैसे काले-काले बादलों के बीच में विद्युत्-प्रभा ।

इधर फितरतअली ने सोचा कि “रम्पा गरीब लड़की है । रुपये-दो रुपये के लालच में फँस जायगी । फिर क्या कहना है, फितरतअली पूरे फितरत हो जायेंगे । “सोचते ही सोचते फितरतअली की बाँछें खिल गईं ।

संयोग तो देखिये, इधर से फितरतअली रम्पा की फिराक में जा ही रहा था कि उधर से रम्पा सिर पर घास की गठरी लिये हुए नज़र आई । अब क्या कहना, फितरतअली ने एक रुपया उसके सामने डाल दिया ।

‘यह देखिये आप का रुपया गिर पड़ा’ रम्पा बोली ‘गिरा नहीं है, यह तुम को दिया है’ फितरतअली ने भिर खुजलाते हुए कहा।

‘मुझको किस लिए दिया?’

‘समझ जाओ’ फितरतअली ने मुस्करा कर कहा।

‘मुझको इसकी ज़रूरत नहीं है’—कहकर वह चल दी।

फितरतअली की करतूत गांव भर में थी। रम्पा भी अपने जीवन में सोलह बसन्त देख चुकी थी, वह सब कुछ समझती थी। एक सर्द आइ खींच कर वह उस दिन खामोश रहो। परन्तु फितरतअली को चैन कहा! कुत्ता जो ठहरा वह। सहज में हड्डी थोड़े ही छोड़ सकता था। दूसरे दिन फिर खेत में—जहां रम्पा घास छील रही थी—जाकर वह उससे मिला।

‘रम्पा! मेरा कहना मान जाओगी तो बड़े मजे में रहोगी।’

‘कैसा कहना?’ रम्पा ने भीड़ें चढा कर कहा।

‘इसमें हर्ज ही क्या है? आग्निर घास छीलती-छीलती मरी जाती हो’—वेशमी की हंसी हसकर फितरतअली ने कहा।

‘तो इसमें क्या यह तो हम लोगों का काम ही है।’

‘वहां मजे से मखमली गद्दां पर रहोगी, ठाकुर मकरन्दसिंह कोई मामूली आदमी नहीं हैं। तुम्हारा भाग्य खुल जायगा।’

‘बस आगे आप कुछ न कहिएगा।’

‘और हा, तरह-तरह के आभूषण तथा गहने.....’

‘आप हट जाइए यहां से।’ सर्पिणी की तरह फुफकार रम्पा ने कहा।

‘मकरन्दसिंह की पत्नी बनना कुछ मामूली’

बात पूरी भी न होने पाई थी कि मिहनी की तरह रम्पा ने उस कुत्ते की गर्दन धर दबाई। और तड़ाकत-तड़ाक दो तमाचे फितरतअली के दोनों गालों पर जमा दिये।

कुत्ता के दम ही कितना होता है, फितरतअली चुपके से वहाँ से खिसक गया, परन्तु मामला सगोन हो गया।

(४)

फितरतअली चाहता तो अपनी फितरत से रम्पा क्या, उसके घर भर का सर्वनाश कर सकता था। परन्तु वह खामोश रहा। उसको इज़्जत थोड़े ही प्यारी थी, उसको प्यारा था धन, यदि अभी ही रम्पा या रम्पा के पिता पर सख्ती करता, तो उसका काम कैसे बनता और फिर मकरन्दसिंह से दो चार सौ रुपया कैसे खींचता। अतः वह मकरन्दसिंह के पास जाकर बोला—‘हुजूर! इस में आप की भी मदद की ज़रूरत है।’

‘क्यों? मकरन्दसिंह ने व्यग्रता-पूर्वक पूछा।’

‘हुजूर ! गौरिया बड़ा हेकड़ आदमी है, बिना सख्ती किये वह वश में नहीं आ सकता ।’

‘यह तो मैं पहले ही कहता था, तो फिर अब ?’ मकरन्दसिंह ने अधीर हो कर पूछा ।

‘अब क्या, गौरिया से कहला भेजिये कि जैसे बने वैसे कल शाम तक आप का कुल रुपया अदा कर दे ।’

‘इसमे क्या होगा ?’

‘जो कुछ होगा वह देख लेना और फितरतअली की बुद्धि की तारीफ़ करना ।’

रात को ग्यारह बजे जब गोरख घर जाने लगा मकरन्दसिंह ने बड़े ताव से उससे कहा—‘देख गोरख अपने बाप से कह देना कि जैसे बने वैसे कल शाम तक हमारा कुल रुपया दे जाय, वरना अच्छा न होगा । क्या हमने जिन्दगी भर के लिये रुपये थोड़े ही दिये हैं ।’

ठाकुर साहब की लाल-लाल आंखें देख कर गोरख को कुछ कहने का साहस न हुआ और वह घर की तरफ़ चल दिया ।

रम्पा और फितरतअली में आज खेत में जो बातें हुई थीं, उसे सुनकर गौरी वैसे ही परेशान था, इधर गोरख के मुँह से मकरन्दसिंह का संदेश सुन कर वह धबरा उठा । समझ गया कि अब यदि ईश्वर ही उसकी इज्जत बचाये तो बच सकती है । फिर भी उसने धैर्य न छोड़ा और प्रातःकाल उठकर मकरन्दसिंह के पास पहुँच गया । मकरन्दसिंह ने उसे देखते ही पूछा—‘क्यों गौरी ! क्या रुपये लाये हो ?’

‘हुजूर ! इतनी जल्दी रुपये कैसे’ कहते कहते उसने ठाकुर मकरन्दसिंह के पैरों पर सर रख दिया ।

ठाकुर साहब ने जूते की ठोकर उसके सर पर जमा दी । बेचारे के खून छलछला आया, फिर भी उसने पैर न छोड़े । वह कहता गया—‘गरीब-परवर ! आप ही हमारे माँ-बाप हैं, व्याज तो गोरख की नौकरी से अदा ही हो जाता है । रह गये पचास रुपये वह भी जल्दी ही दे डालूंगा । देखिये जेठ में रम्पा का व्याह भी करना है... . . .’

‘यह हम कुछ नहीं सुनना चाहते । जैसे बने वैसे शाम तक हमारा कुल रुपिया दे दो, नहीं तो गौरी ! बहुत बुरा होगा ।’

‘तो हुजूर ! रुपिया इस समय कहाँ’

‘नहीं है, तो हम एक उपाय बतलाते हैं—बीच ही में फितरतअली बोल उठे ।

‘वह क्या ? गौरी ने आश्चर्य से पूछा ।

‘पचीस रुपये में तो अपनी दोनों गायें और भैंस बेच दो । रह गये पचीस रुपये, उसके लिये तुम्हारे घर का का कोई आदमी ठाकुर साहब की नौकरी कर ले । इस प्रकार धीरे-धीरे वह रुपिया भी पट जायेगा ।

‘अच्छा यही सही । गोरख तो हुजूर की नौकरी करता ही है, मैं भी सरकार की खिदमत किया करूंगा । मगर गरीब परवर ! दोनों गायें और भैंस पचीस ही रुपये की हैं ।’

‘चुप बे बदमाश ! और क्या पचास रुपये की ?’ फितरतअली ने कहा ।

‘हुजूर ! कुछ तो रहम और करो’—गौरी ने फितरतअली के पैर पकड़ कर कहा ।

‘खैर तीस रुपये ही सही । लेकिन तुम नौकरी क्या करोगे, बूढ़े आदमी हो, तुमसे क्या काम सधेगा ?’

‘फिर घर में है ही कौन ? मैं हूँ या बुढ़िया है ।’

‘रम्पा को भेज दो । यहां अपना घर है, गोरख के साथ चली आया करेगी ।’

हुजूर यह कैसे हो सकता है ? सयानी लड़की है, बिरादरी वाले क्या कहेंगे ? गौरी ने क्रोध को दबा कर कहा । ‘तो यह तो करना ही होगा ।’ मकरन्द सिंह ने दृढ़ता पूर्वक कहा ‘यह असम्भव है’—कह कर गौरी उठ खड़ा हुआ । क्षण भर में गौरी के गालों पर पांच-सात चाटे पड़ गये । वह बेचारा सर नीचा किये घर की ओर चल दिया ।

(५)

गौरी समझ गया कि मामला खतरनाक है । इसलिये जगन्नाथ को भी इसकी सूचना दे दी । दूसरे दिन फितरत अली बीस-पचीस बल्लम बन्द सिपाहियों को साथ लेकर गौरी के दरवाजे पर पहुँच गया ।

दोनों गाँवें और भैंस खोल ली गईं, परन्तु गौरी कुछ न बोला फिर फितरत अली गौरी से बोला—‘बोल हंसी-खुशी रम्पा को हमारे साथ करता है या नहीं ?’

‘हुजूर ! सब कुछ दे सकता हूँ, परन्तु इज्जत नहीं दे सकता ।’ गौरी ने उत्तर दिया ।

‘खूब समझ लो गौरी नहीं तो अन्त में पछताओगे ।’

सच बात तो यह थी कि गांव वाले भी फितरत अली की इस कमीनी हरकत से बहुत नाखुश हो रहे थे । परन्तु बैठे बैठे ज़मीन्दार से बैर कौन मोल ले, यही समझ कर वे क्रोध जन्त करके रह गये । तैश में आकर ज्यों ही फितरत अली रम्पा की तरफ़ झपटा कि गौरी, जगन्नाथ, गोरख और स्वयं रम्पा की लाठियां सीधी हो गईं । जगन्नाथ बोला—‘ख़बरदार कामी कुत्ते होशमें रह ।’

फिर क्या था, उधर पचीस बल्लमबंद नौजवान और इधर एक बुढ़ा, दो जवान और रम्पा । दो घंटे तक बड़े जोरों से बल्लम और लाठियां चलीं । बूढ़े गौरी में जाने आज कहां का बल फट पड़ा था कि “एकै मारै दुइ मरि जावैं, तीसर खौफ़ खाय मरिजाय ।” जगन्नाथ जिस तरफ़ झुक पड़ता, उधर ही मैदान साफ़ हो जाता और रम्पा ? उसने तो साक्षात् रणचण्डिका का रूप धारण कर लिया था । किसी जवान आदमी को उसके सामने जाने का साहस ही नहीं होता था । खून से वह लथपथ थी, फिर भी उसकी लाठी जिसके सर पर पड़ जाती थी, वही लोटन कबूतर बन कर रह जाता ।

एक-एक करके अन्त में चारो वहीं शहीद हो गये । उधर भी दो सिपाही मकरन्द सिंह के पास यह खबर ले जाने को शेष रहे । बाकी तेइस नीच फितरत अली के साथ यमपुर सिधार गये ।

काम लोलुप मकरन्द सिंह की करतूतों ने सत्ताइस निरीह जीवों को अपनी कामाग्नि का शिकार बना कर ही छोड़ा । पुलिस अपने काम पर पहुँच गई ।



मानरक्षा के वे प्रतीक

लेखक—साहित्यालंकार श्री मदन मोहन 'साहित्य रत्न', रीवा, विन्ध्य प्रदेश

सन् १६७६ की घटना है। समग्र भारत यावनी सेना से पद दलित हो रहा था। वीर शिवाजी के वंशजों की धमनियों का रक्त सूख गया था। अब वे ही यावनी पताका फहराने में यवनों का साथ दे रहे थे। फलतः बचे खुचे हिन्दू राज्य भी यवनों की अधीनता स्वीकार करते जा रहे थे। उन बचे हुए राज्यों में से बान्धव देश या रीवा राज्य भी था जो यावनी आक्रमण के कई थपेड़े खाकर भी अपना मस्तक उन्नत किये हुए था। यद्यपि उसकी स्वतन्त्रता भी खतरे में उभर चुकी थी फिर भी वह 'भृगेन्द्रप्रतिद्वन्दता-म्भामप्रयात' युक्त शब्दों से अपनी केशरिया पताका फहरा रहा था। बांदा के नवाब की जिह्वा लिप्सा से लप लप रही थी।

अस्तु उसने अपने सेनापति यशवन्तराव नायक के नेतृत्व में एक बृहद् सेना रीवा विजय के हेतु भेज दी। सेना ने रीवा नगर से चार मील पश्चिम पड़ाव डाल दिया और महाराजा अजीतसिंह के पास युद्ध या संधि का प्रस्ताव भेजा गया। महाराजा ने नायक का प्रस्ताव पाकर अपने इने गिने सामन्तों एवं सरदारों को विशेष सभा में बुला भेजा— और कहा—“मेरे वीर सामन्तगणों, आज रीवा के सम्मुख जीवन मरण का प्रश्न है। इसे कौन नहीं जानता कि—यह राज्य बन्धु-बान्धवों का राज्य है। इसीलिए इसे बान्धव भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है और सदा रहेगा। अब इसका सौभाग्य सिन्दूर मिटने जा रहा है बघेल, परिहार, कचुली और चन्देलों के रहते हुए। आप सब जानते हैं कि रीवा का इतिहास सदा उज्ज्वल रहा है। अनेकों को मुँह की खानी पड़ी किन्तु आज हमारा एक पड़ोसी लुटेरा अपनी असंख्य सेना नायक के नेतृत्व में भेजकर हमारी स्वतन्त्रता को लूट लेना चाहता है।”

कचुली सरदार ने मूर्खों पर ताव देते हुए कहा:—“क्षमा किया जाय महाराज ! ये कान अब अधिक नहीं सुनना चाहते। हम इतना ही जानते हैं कि हम सब के रहते हमारे बान्धव देश का कोई बाल बांका भी नहीं कर सकता।”

महाराज—ठीक मुझे भी आप सबों से ऐसी ही आशा है किन्तु..... चन्देल सरदार—“किन्तु क्या महाराज !”

महाराज—“किन्तु यशवन्तराव की शक्ति हमसे अठगुनी है। अभी कुछ देर पहिले.... गुप्तचर ने आकर मुझे सूचित किया है कि यावनी सेना का क्रम अब तक बराबर बांदा से आ रहा है। अस्तु ऐसी परिस्थिति में केवल तैश में आकर अपने आप का, अपनी शक्ति का तथा अपने जन-धन का संहार करा देना अनुचित होगा। अस्तु मेरी व्यक्तिगत राय तो यह है कि कि संकटापन्न परिस्थिति में संधि का सहारा लिया जाय। आप लोग भी निस्संकोच अपनी अपनी सम्मति दें।”

बघेलसरदार—“श्रीमान् की राय सर्वोपरि । किन्तु यदि नायक ने संधि स्वीकार न कि ?”

महाराज—“तब क्षत्रियों का निर्धारित मार्ग अपनाया जायगा ।”

कलन्दर सिंह कर्चुली सामन्त ने महाराज के शब्दों को सुना और त्योरी बदल कर बोल उठे—“श्रीमान् तथा बन्धुओ ! मेरी ढिठाई क्षमा की जाय । मैं संधि का पक्षपाती नहीं । क्षत्रियों की तलवार में जंग न लगने पाये यही क्षत्रित्व है । मैं शत्रु के सम्मुख नत मस्तक होना नहीं चाहता । मेरी अशि और भुजायें युद्ध के लिए फड़क रही हैं । मैं युद्ध करना चाहता हूँ, युद्ध ।”

महाराज—“ठीक है वही होगा मेरे वीर सामन्त किन्तु नीति का अपनाना भी बुरा नहीं । तनिक विचार करो । युद्ध होने पर भीषण संकट हम सब पर आ जायगा । हमारी प्रजा में त्राहि त्राहि मच जायगी । अन्त भी हम सब के सामने है । अतः मेरी सम्मति में दूत से कह दिया जाय कि कल इसी समय इसका अन्तिम निर्णय किया जायगा । युद्ध या संधि तब तक मैं हम सब लोग पूर्ण रूपेण विचार विमर्श भी कर लेंगे ।”

बघेल सामन्त—“श्रीमान् की आज्ञा शिरोधार्य है ! किन्तु अधिक अच्छा हो कि आज आठ बजे रात्रि परेड में मंत्रणा के हेतु सभी सामन्त एकत्रित हों और वहीं पर संधि पत्र या युद्ध निर्मंत्रण तैयार किया जायगा ।”

X

X

X

X

कमलिनी—कुल-बल्लभ की प्रभा प्रतीची में अरुणिमा विखेरती हुई बिदा ले रही थी । सांन्ध्य पवन का मादक भोंका उद्यान के कण कण में नव जीवन भरने का प्रयास कर रहा था किन्तु रीवा नगर में नव जीवन कहाँ ? वहाँ तो केवल रात्रि की कालिमा अपना धुंधला चादर फैला कर उसके भाग्य को निगल जाना चाहती थी । नगर भर में बेचैनी—घबराहट और आतंक छाया हुआ था । जनता भयभीत थी । वह रात्रि काल रात्रि के समान प्रतीत हो रही थी । किन्तु प्रकृति वीता अपनी गति है । उसे किसी के सुख दुख से क्या ।

हाँ, तो उपवन की उस हरित भूमि के मध्य देवी के मन्दिर का स्वर्ण-कलश सूर्य देव की अन्तिम किरण की लालिमा से अनु रंजित हो गया । महारानी कुन्दन कुवंरि अनमनी सी उस ओर सन्ध्या आगती के हेतु बढ़ रही थीं । उन्हें क्या पता कि रीवा का सौभाग्य सूर्य पश्चिम की ओर अस्त होने जा रहा है । सहसा एक स्त्री ने आकर कहा—“अन्न दाता ।”

“क्या है किशोरी ?” महारानी ने घबड़ा कर आशंका से पूछा ।

“नायक ने चढ़ाई कर दी है और अब हम सब शत्रु के घेरे में शीघ्र ही पड़ने वाले हैं । महाराज साहब भी अत्यन्त चिन्तित एवम् उदास हैं ! सारी प्रजा व्याकुलता से छटपटा रही है ।” किशोरी ने डरते डरते हाथ जोड़ कर उत्तर दिया ।

“महाराज ने शत्रु से रक्षा के हेतु क्या व्यवस्था की?” महारानी ने पूछा। रात को आठ बजे परेड में तत्सम्बन्धी मंत्रणा की जायगी किन्तु अब तक में महाराज इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि युद्ध की अपेक्षा संधि करना अधिक अच्छा है क्योंकि शत्रु का सामना करने के हेतु साधन नहीं।”

“ठीक समझ गई। अच्छा तू जा और अगले कार्यक्रम का पता लगा कर मुझे सूचित कर।” कहती हुई महारानी मन्दिर में चली गई।

पुष्पित प्रसून को देवी के चरणों पर श्रद्धा पूर्वक अर्पण कर रीवा राजमहिषी ने नत मस्तक हो आँचल फैला कर कण्ठ स्वर में प्रार्थना की:—

विश्व की महारानी—आज बान्धव राज्य की महारानी तेरे सम्मुख प्राणों की भीख नहीं माँगती वरन् माँगती है शक्ति, सहस्र और शत्रु पर विजय। मां दुर्गे तेरे ही आशीर्वाद से महारानी लक्ष्मी बाई—महारानी दुर्गावती आदि ने शत्रु के दांत खट्टे किये यही नहीं वरन् मातेश्वरी तू ने स्वतः दुर्गा का भीषण रूप धारण कर असुरों का संहार किया था। अस्तु; आज मुझ में, मेरी प्रजा में, मेरी सेना में वही शक्ति, वही सहस्र और वही धैर्य प्रदान कर दे ताकि बान्धव राज्य की बान्धवीय सेवकों की लज्जा रह जाय।”

कुछ काल तक नीरवता व्याप्त रही। सहसा महारानी की आत्मा में प्रकाश की एक रेखा सी प्रतीत हुई और महारानी ने पढ़ा “जा सामन्तों को युद्ध के लिये प्रेरित कर।” महारानी चल पड़ीं कक्ष की ओर।

×

×

×

×

दूसरे दिन भ्रत्रणा गृह किला का राधो महल रंग-विरंगे भाड़ फानूसों से आलोकित हो रहा था। सिंहासन पर रीवा नरेश महाराजा अजीत सिंह पधारे थे। सुन्दर काशमीरी कालीन पर इने गिने बघेत, कर्चुली, चन्देल; परिहार आदि सरदार गण सशस्त्र बैठे थे। आपत्ति की आशंका से उनके मुख पर उदासी छाई हुई थी। महाराज सोच रहे थे। “राज कोष में इतना धन नहीं कि शक्ति संचय की जाय। सेना भी थोड़ी है। संभवतः यह स्वतन्त्रा की अंतिम रात्रि है इसके बाद रीवा यवनों की हो जायगी।”

आगे वह कुछ न सोच सके और उनकी पलकें भीगती जा रही थीं सामन्तों के बीच संधि पत्रक रखा हुआ था। नायक के दूत की प्रतीक्षा थी। सहसा पायल की दन भुन से सभी सामन्त सरदार चौंक पड़े। सबों ने खड़े होकर अभिवादन किया। केशरिया साड़ी पहिने हुये राजमहिषी का मुख मंडल आत्ममौरव से देदीप्यमान हो रहा था। उन्होंने सामन्तों को बैठने का आदेश किया। नीरव कक्ष में वीणा विनिन्दित स्वर बज उठा—“हमारे प्रिय सामन्त एवं वीरो आज बान्धव जननी पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है। उस पहाड़ को टुकड़े टुकड़े करना तुम सब का कर्तव्य है।”

खेद है कि मैं अपने सामने परिवेष्टित संधि पत्र को देख रही हूँ। क्या तुम सब भूल गये कि तुम अपने लिये सिंह कहते हो फिर भी अपनी माँ को पराधीनता के बन्धन

में आबद्ध करने जा रहे हो। खेद है कि आज तुम सब में न जाने कहाँ कि कायरता आ गई है। सम्भवतः महाराणा प्रताप और वीर केसरी शिवा की आन, बान, शान को तुम सबों ने विस्मृति कर दिया है। भले ही तुम्हें विस्मृति हो गई हो किन्तु मुझे महारानी लक्ष्मी बाई और महारानी दुर्गा की प्रेरणा प्राप्त हो रही है अस्तु आज तुम सबों के सम्मुख मेरी यह प्रतिज्ञा है कि महारानी कुन्दन कुवंरि के जीवित रहते शत्रु किले के अन्दर प्रवेश न कर सकेंगे मैं अपने साथ में दो वस्तुयें दो थालों में लाई हूँ। एक थाल में है बीड़ा और तलवार तथा दूसरे थाल में रेशमी साड़ी और चूड़ियाँ। बस अधिक कुछ नहीं कहना है सिवाय इस बात के कि हम सब महिलायें युद्ध के लिये उद्यत हैं केवल महाराज की आज्ञा चाहिये।”

मंत्र मुग्ध सामन्त गणों की तन्द्रासी भंग हुई और वे एक स्वर से बीड़ा और तलवार वाली थाल को छूकर युद्ध स्थल में जाने के लिये प्रस्तुत हो गये। उन सब के मुख से निकल पड़ा, बान्धेश्वरी की जय, महारानी कुन्दन कुवंरि की जय, बान्धवेश चिरंजीवी हों, बान्धव गद्दी अटल और अमर हो।”

महारानी ने अपने कर कमलों से उपस्थित सामन्तों के उन्नत भाल में टीका लगाया तलवार और विजय माल प्रदान की। जयघोष से राधोमहल गूँज उठा। महाराज महारानी की वीरता पर स्तब्ध रह गये।

×

×

×

×

नगर से दूर नीरव निशा के अंतिम प्रहर में थकी हुई यावनी सेना रीवा विजय का मुख स्मर देख रही थी। सहसा उत्काधारियों पर आक्रमण हुआ। प्रकाश तिरोहित हो गया। मुट्ठी भर राजपूत वीर नैकहाई के मैदान में शत्रु पर टूट पड़े। शत्रु सेना में खलबली मच गई। पौ फटते फटते नायक का शिर विच्छेद कर दिया गया। नायक के धराशायी होते ही शत्रु सेना भाग खड़ी हुई। राजपूतों ने शत्रु का पीछा किया और शत शत यवनों के शव से मेदनी को आरक्त कर दिया। शत्रु का मान मर्दन कर बान्धवीय वीरों ने विजय प्राप्त कर अपनी वीरता का और साहस का जो परिचय दिया वह सर्वथा स्तुत्य है। महारानी कुन्दन कुवंरि ने भारतीय महिलाओं के अपूर्व साहस चातुर्य एवम् बुद्धि का परिचय देते हुए इतिहास की जो पुनरावृत्ति की उससे भारतीय मान-मर्यादा का स्तर और भी उच्चतर हो गया।

डेढ़ सौ वर्षों के ऊपर की घटना होने पर भी रीवा के नैकहाई की युद्ध भूमि की जर्जरित छतुरियों से मानों आज भी स्वर प्रस्फुटित हो रहा है—“हम सब जर्जरित होने पर भी भारतीयों की मान रक्षा के जीवित प्रतीक हैं। भारतीय महिलाओं की दृढ़ता तथा साहस के अश्विनि चिन्ह हैं।” लोग उस जर्जरित चिन्ह को देखते हैं और गौरव से उन्नत मस्तक होकर कहते हैं—“सच में मान रक्षा के ये जीवित प्रतीक हैं।”



एक समस्या

लेखक—श्री चिरंजीलाल माथुर 'पंकज', जोधपुर ।

यह एक विकट समस्या है जिसे मैं आपके सामने रख रहा हूँ । सोचता हूँ आप ही इस समस्या को सुलभाने के लिए कुछ सुझाव दे सकें । वैसे यह मेरा व्यक्तिगत मामला है, आपको अधिकार नहीं, कि आप मुझे कुछ सुझाव दें, लेकिन चूँकि मैं स्वयं आपसे सुझाव माँग रहा हूँ, अतः मैं स्वयं ही आपको अधिकार दे रहा हूँ ।

हाँ तो वह समस्या इस प्रकार है—जब से मेरी मंगनी तय हुई थी तभी से यह समस्या मेरे सामने आ गई और मैं एक दुविधा में फँस गया । मंगनी तो मेरी अपने ही कॉलेज की एक छात्रा से हुई थी । अब शायद आप यह सोचलें कि वह अत्यंत खूबसूरत हो और विद्यार्थी इसी कारण उसका पीछा न छोड़ते हों ! यही मेरी समस्या हो ! लेकिन बात कुछ और ही है । वह इतनी खूबसूरत नहीं जितना आप अनुमान लगा चुके हैं, हाँ विद्यार्थी अवश्य उनका पीछा नहीं छोड़ते । यहाँ यह भी कह दूँ कि वह इतनी काली कलूटी भी नहीं जिससे कि आप उसका परिचय पाने के पहले ही कुछ और ही सोच बैठें । वास्तव में बात यह है कि वह कॉलेज की एक प्रसिद्ध कवियित्री थी । कॉलेज के विद्यार्थी तो कविसम्मेलन आदि अन्य कॉलेज के आयोजनों में उसी की कविता सुनना चाहते थे । अन्य कवि तो बिचारे मंच पर टिक भी नहीं सकते थे, और वह जमकर कवितापाठ करती । उसकी इस लोकप्रियता को देख कर तो मुझे प्रसन्नता ही होती थी लेकिन साथ ही जलन भी होती थी । प्रसन्नता तो इसलिये कि वह मेरी भावी पत्नी थी और जलन इसलिये कि लोग उसका पीछा नहीं छोड़ते थे, यहाँ तक कि मुझे दिन भर कॉलेज में मिलने का समय तक नहीं मिल पाता था । उस समय वह इटर में थी और मैं बी० ए० का विद्यार्थी था । उसकी यह दशा देख कर तो मुझे प्रगतिशील होते हुए भी सहशिक्षा से घृणा हो जाती थी, लेकिन स्वयं अपने को प्रगतिशील कहकर ऐसी बात मुँह पर नहीं ला सकता था । और वैसे भी अभी तो केवल मेरी मंगनी ही हुई थी मुझे पूर्ण अधिकार भी न था कि मैं कुछ कह सकूँ । अतः मन मार कर रहजाने के सिवाय कोई चारा ही नहीं था ।

किसी प्रकार मैंने एम० ए० पास करली और उसने बी० ए० । अब तो कवियित्री महोदया का यह हाल हो गया था कि उन्हें सार्वजनिक कवि-सम्मेलनों में भी ले जाया जाने लगा और कभी कभी तो कवि सम्मेलनों की सभानेत्री होने का सौभाग्य भी उन्हें ही मिलता था । मैं उन कवि-सम्मेलनों में जाता अवश्य था लेकिन पीछे ही कहीं दुबककर बैठ जाता । वहाँ भी लोगों की तानेबाजी से तंग आकर मुझे उठ जाना पड़ता था । एक बार तो साहस कर एक महाशय को बीच में टोक दिया, तो जूते पड़ते पड़ते बचे । गनीमत यह थी कि उन्हें मेरे सम्बन्ध का पता न था ।

अब किसी प्रकार हमारा विवाह हो गया और मैंने कुछ शान्ति अनुभव की । सोचा अब तो मेरा उन पर नियंत्रण रहेगा । उन पर मेरा पूर्ण अधिकार है लेकिन वह तो प्रगतिशील ठहरी-समान अधिकार की माँग करने वाली । लेकिन अनुभव तो तभी होता है जब खुद के

गले में आ पड़ती है। फिर भी मुझे भी अपनी प्रगतिशीलता का बाना पहनना पड़ा, और और चुपचाप सहन करने का साहस बटोरना पड़ा। उन पर प्रतिबन्ध लगाने में असमर्थ ही रहना पड़ा।

वह घर के काम में कब लगने वाली थी। उसे तो गोष्ठियों और कवि सम्मेलनों से ही फुरसत नहीं मिलती थी। मैं तो उनकी डाक देखकर ही दंग रह जाता। लेकिन मन की इच्छा होने पर भी किसी के पत्रों को पढ़ना कोई नैतिकता तो नहीं अतः चिट्ठियाँ गिन कर रह जाता। अब तो उसे रेडियो से भी निमंत्रण मिलने लगे थे। आज दिल्ली, कल लखनऊ और इलाहाबाद स्टेशनों की शोभा बढ़ाने पहुँच जाते और अब तो मुझे रेडियो से ही कविता पाठ सुनना पड़ता था। गोष्ठियों और कविसम्मेलनों में तो मैं स्वयं पहुँच जाता क्यों कि साथ में मेरा भी निमंत्रण होता था। लेकिन रेडियोवाले तो कम्बख्त उन्हीं का खर्चा देते थे। घर का किराया खर्च करना, दफ्तर की छुट्टी अलग लो, दो दो बातें नहीं बैठ सकती थीं। जब वह घर पर रहती तो मिलने वालों का तांता, सम्पादकों की डाक से ही पीछा न छूटता था। सच मानिये मैं तो तंग आगया।

अपनी इस विकट समस्या को मैंने बातचीत के दौरान में मित्रों के सामने रखने का प्रयास भी किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। आजकल के भ्रष्टाचार के प्रश्न को लेकर बात चलाना चाहता था लेकिन एक मित्र का यह उत्तर “भारत में अभी औरतों की आजादी से भ्रष्टाचार प्रारम्भ ही तो हुआ है, एक बार तो यह चरम सीमा पर पहुँचेगा, तब कहीं रूस और इंग्लैंड की युवतियों की सी स्वतंत्रता के स्वप्न देखना।” यह सुनकर तो मेरी हिम्मत ही नहीं हुई कि मैं अपनी व्यक्तिगत समस्या को मित्रों के सामने रखता।

‘रमेश’ के जन्म के बाद कुछ समय तक उनका घर से निकलना बन्द हुआ, लेकिन कवि लोग घर पर आ धरना देते। कभी इस उत्सव की गोष्ठी, कभी परिचय गोष्ठी, कभी नामकरण गोष्ठी और कभी मुण्डन गोष्ठी इस प्रकार तांता सा ही लगा रहता, और साथ ही साथ हमारा मुण्डन भी! और आज जब ‘रमेश’ कुछ बड़ा हो गया है तो यह दशा है कि जब कभी उन्हें कवि सम्मेलनों में जाना होता है तो मुझे ‘रमेश’ को गोदी में रखने के लिये जाना पड़ता है।

सच पूछिये तो मुझे अपनी दशा देखकर तो नारी शिक्षा से ही घृणा होने लगी है। इस प्रजातांत्रिक युग में यदि कहीं मुझे मंत्री पद मिल जाता तो मैं सर्व प्रथम नारी-शिक्षा पर ही प्रतिबन्ध लगाता। लेकिन क्या करें, भगवान गंजे को नाखून भी तो नहीं देता।

इस समस्या का हल आज तक मैं नहीं निकाल पाया हूँ। अतः व्यक्तिगत समस्या होते हुये भी आपसे कुछ आशा करता हुआ आपके सामने रख रहा हूँ। वरना आप तो जानते ही हैं घर की बात किसी को कही जाती है? अब देखें आप कहाँ तक सहायता कर सकते हैं। एक बात और है! आप चाहे इसका हल न बतावें लेकिन स्वयं अपने लिये तो सोच रखें अन्यथा एक दिन आपकी भी यही दशा होगी जो आज मेरी है। फिर ‘अवसर चूकी डूमड़ी गावे ताल बेताल’ वाली हालत होगी।

उलझी लड़ियाँ

लेखिका—श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी, इलाहाबाद ।

सन्ध्या के झुटपुटे में रूपा अपने घर की खुली छत पर एकाकी बैठी है। देखते ही देखते सूरज की पीली किरणें जितिज के पार जाकर अदृश्य हो गईं। अब यह रहा-सहा धूमिल प्रकाश भी धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है। निलेकाश में कितने पन्छी समानान्तर उड़ते हुए कहीं तेजी से भागे चले जा रहे हैं। घर के पार्श्व में खड़े हुए नीम के ऊँचे और सघन वृक्ष पर कितने ही पन्छी चहचहा रहे हैं—शायद रैन-बसेरा करने की तैयारी कर रहे हैं। दूर किसी अमराई में कोयल चिल्ला रही है—कुहु-कुहु मुहु-मुहु।

रूपा के अन्तर्मन ने कहा—इस कोयल को कभी चेन नहीं। जब देखो तभी चिल्लाती रहती है। फिर भी मानव की अपेक्षा यह कोयल कहीं अधिक आजाद है और अधिक सुखी। यह अपने मन की पीर चिल्ला-चिल्ला कर तो हलकी कर लेती है। लेकिन मानव तो यह भी नहीं कर सकता। उसे अपने पास-पड़ोस की दुनिया का समाज की मर्यादा का और दुनियादारी का कितना ध्यान रखना पड़ता है! मानव अपने मन की पीर व्यक्त नहीं कर सकता। बहुत हुआ तो आँसुओं की माला के मनके बिलखा दिए और गीली आँखों के दोनों कोनों को चुपचुप पाँछ लिया। उसकी उलझी लड़ियाँ सुलभ नहीं पातीं।

मानव और पन्छी! कितना अन्तर है दोनों में! दिन भर पंखी कहीं भी रहें; लेकिन सन्ध्या का अन्धकार सिमटते ही, किसी भी वृक्ष की एक डाल पर ये पन्छी रैन-बसेरा करने एकत्र हो जाते और दिन-भर का सारा अवसाद भूल जाते हैं। परन्तु मानव? यह तो वर्षों दूर-दूर रहा आता है। कमाने खाने की चिन्ता में मिलने-जुलने की भावना भी दूर छिटक कर बिखर जाती है। रूपा दूसरों के लिए क्या करे? वह स्वयं आज यही सब अनुभव कर रही है। आठ महीने बीत चुके; लेकिन रूपा के साजन ने, इस बीच आकर उससे मिलने की शायद आवश्यकता ही नहीं समझी!

साजन की स्मृति के सुनहरे तारों से रूपा उलझ रही थी कि सामने के आलीशान बँगले में ग्रामोफोन का रिकार्ड बज उठा—‘पिया मिलन को जाना ।’

पूरा गीत रूपा ने ध्यान पूर्वक सुना। रिकार्ड जब बज चुका तो रूपा को लगा कि वह गीत कल्पना मात्र नहीं है। यह तो वास्तविक अनुभूति है। प्रत्येक नारी के जीवन में ऐसा अवसर आता है। जब वह पिया-मिलन की डगर पर अपने पग बढ़ाती; उल्लास उमङ्ग की सरिता बहाती और सुखद जावन का स्पर्श कर पुलकविभोर हो जाती है।

रूपा के जीवन में अब तक ऐसे अनेक अवसर आ चुके हैं जब उसने स्वयं इसका अनुभव किया है। उस चाँदनी रात को रूपा कभी भूल नहीं सकती, जब अपने साजन के साथ मर्यादा की फेनिल लहरों पर नौका-बेहार करते हुए वह बन्दरकूदनी देखने गई थी।

नीले आकाश में तारे झिलमिला रहे थे सोलहों कलाश्रों से युक्त पूनम का चाँद खिलखिला रहा था । और रूपा भी अपनी तरुणाई के प्रवाह में बहती जा रही थी । इस तरुणाई के प्रवाह का उसे स्वयं पता नहीं था । कभी इसका पता शायद चलता भी नहीं । लेकिन नाव मर्यादा की पावन लहरों पर बहते-बहते उस स्थल पर पहुँची, जहाँ दोनों तटों पर संगमरमर की श्वेत चट्टानें आकाश को छूने का प्रयत्न कर रही हैं, तब रूपा के साजन ने कहा था—‘रूपा ! ये दूध-जैसी श्वेत चट्टानें इस चाँदनी में कितनी आकर्षक प्रतीत हो रही हैं ।’

‘क्यों न हो !’ रूपा ने कहा, ‘एक तो इन चट्टानों ने रूप ही सुन्दर पाया है, दूसरे इस चाँदनी का स्पर्श पाकर इनका यह रूप और भी अधिक निखर उठा है ।’

‘बिना स्पर्श के किसी का रूप नहीं निखरता रूपा ?’ कहा था रूपा के साजन शरद ने, ‘हीरा कितना प्रकाशमान और मूल्यवान् रत्न है, लेकिन उसका आकर्षक रूप भी किसी स्पर्श-विशेष के बाद ही बन पाता है ।’ फिर एक क्षण रुककर कहा, ‘दूसरों की बातें जाने दो, रूपा । तुम्हारा अपना रूप भी तो किसी के स्पर्श से ही इतना निखर सका है कि तरुणाई का योग पाकर उसमें एक ऐसा प्रवाह दिख पड़ता है, जो अत्यन्त क्षिप्र और आकर्षक बन गया है । तुम्हारे रोम-रोम से यह प्रवाह फूटा पड़ता है ।’

‘बस भी करो यह तारीफ !’ रूपा ने गम्भीर दृष्टि से शरद को देखते हुए कहा था, वह मल्लाह क्या कहेगा यह सब सुनकर ?’

वह तो अपनी ही धुन में मग्न है, रूपा !’ शरद ने धीमे स्वर में कहा, देखो न, वह अपने-आप कुछ गुनगुना रहा है, फिर, नाव के दूसरे छोर पर वह बैठा है और पतवार चला रहा है । उसे क्या पड़ी है तुम्हारी बातें सुनने से ।’

‘लेकिन मेरी तरुणाई का प्रवाह जो तुम्हारा स्पर्श पाकर गतिमान् हो उठा है, कोई अनहोनी बात तो नहीं है ।’ रूपा ने बन्द होते हुए प्रकरण को शायद फिर जारी करना चाहा ।

यह कौन कहता है कि अनहोनी बात है ।’ शरद ने अपनी बात की पुष्टि करते हुए कहा, मैं कह रहा था कि स्पर्श का प्रभाव अनोखा होता है ।’

‘एक बात है !’ रूपा ने कुछ गम्भीरता के आवरण में कहा, ‘इस स्पर्श का प्रभाव स्थायी नहीं होता । इन चट्टानों में जो आकर्षण चाँदनी के आलोक में है, यही दिन में अथवा अमावस की काली रात में कदापि न रहता होगा ।’

तुम ठीक कह रही हो, रूपा ! लेकिन उस वक्त इसका अपना सौंदर्य भी कम आकर्षक नहीं होता । फिर, यह तो प्रकृति का नियम है कि सदा एक-सा किसी का नहीं रहता । और यह परिवर्तन आवश्यक भी है । बिना परिवर्तन के इस दुनिया में कोई आकर्षण भी तो न रह जाएगा । तब शायद सुन्दर की भी पहचान न रह जाएगी, रूपा ?’

‘परिवर्तन !’ रूपा ने मन-ही-मन दोहराया था उस दिन नाव पर । इसके आगे वह कुछ न कह सकी । परिवर्तन की भावना ने उसे ऐसा कुछ परेशान-सा कर दिया था कि फिर प्रयत्न करने पर भी वह पहले-जैसी सुखर नहीं हो सकी थी । बन्दर-कूदनी देखकर शरद के साथ जब वह घर लौट रही थी, तब शरद ने कहा भी था, ‘रूपा तुम क्या सोच ही हो ?’

कोई खास बात नहीं !' रूपा ने कह दिया था और परिवर्तन की आशंका को साफ छिपा लिया था ।

‘तो क्या नींद सताने लगी है ?’

‘हाँ ?’ रूपा ने अपने मन की यथार्थ बात छिपाते हुए कह दिया था । अपनी डाक्टोरोल-सी मनोदशा को रूपा ने न केवल उस दिन छिपाया था अपने साजन से; बल्कि आज तक उसने कभी यह बात प्रकट नहीं होने दी । एक सर्वथानवीन-सी बात उस दिन रूपा को ज्ञात हो गई थी न ! रात-दिन वह यही सोचती रहती थी कि बिना परिवर्तन के इस दुनिया में कोई आकर्षण भी तो न रह जाएगा ।

और, सचमुच परिवर्तन आ गया है रूपा के जीवन में भी । उस दिन जब शरद इस शहर से दूर और रूपा से भी दूर जा रहा था, तब ऐसी ही संध्यावेला में, इसी खुली छत पर, आकर बहा था उसने—‘रूपा ? मैं कलकत्ता जा रहा हूँ ।’

‘कलकत्ता !’ आश्चर्य हुआ था रूपा को सुन कर ।

‘हाँ रूपा !’

‘क्या करोगे वहाँ जाकर ?’

‘नौकरी और क्या ?’

‘तो अब पत्रकार न रहकर किसी दूसरी नौकरी की धुन सवार हुई है ?’

‘नहीं !’ शरद ने कहा था, ‘पत्रकार ही रहूँगा । वहाँ के एक दैनिक में भरपूर वेतन मिल रहा है । सोचता हूँ, रात-दिन की परेशानियों से मुक्ति पाने का यह मौका हाथ से न जाने दूँ ।’ और कलकत्ते से आया हुआ नियुक्ति-पत्र रूपा के हाथ पर धर दिया था शरद ने ।

नियुक्ति-पत्र देख, रूपा को भी जैसे दो सौ रुपये मासिक के लालच ने प्रभावित कर दिया । यहाँ रहकर केवल अस्सी रुपये पर शरद का दिन-भर अपनी सेवाएँ देनी पड़ती हैं । कार्यालय से आने पर घर में नित्य ही सुबह शाम दूसरे पत्रों के लिए लिखते रहना पड़ता है, तब कहीं गृहस्थी का खर्च चल पाता है । रूपा को लगा कि अच्छा है, एक ही पत्र में काम करने से उसके साजन की मानसिक चिन्ताएँ सचमुच कम हो जाएँगी ।

‘वह क्या ?’ बीच में ही टोक दिया शरद ने ।

‘कलकत्ते में दो सौ रुपये भी शायद पर्याप्त न हों ।’

‘होगे क्यों नहीं !!’ शरद ने कहा, ‘प्रारम्भ में तुम्हें अपने साथ न ले चलूँगा । अकेला ही रहूँगा ? मन्नू के साथ इतने में तुम यहाँ बहुत मजे में रह सकोगी । मैं वहाँ पचहत्तर रुपये में अपना खर्च अवश्य चला लूँगा ।’

रूपा को यह सुन कर आश्चर्य हुआ । वह एक बार कलकत्ता स्वयं देख आई है । योही घूमने के लिए गई थी । पाँच-सात होटलों के दरवाजे खटखटाने पर मुश्किल से एक होटल में एक छोटा-सा कमरा मिल सका था; सो भी सात रुपये दैनिक किराए पर । एक कप दूध आठ आने में मिलता था मन्नू के लिये । ऐसी दशा में एक व्यक्ति पचहत्तर रुपए में कैसे अपना खर्च चला सकेगा वहाँ ? उस होटल की बात भूल गए

क्या ? सात रुपए दिन पर तो एक कमरा मिला था हमें । एक बार के खाने का दो थालियों का चार रुपए देना पड़ता था ।’

‘तुम भूल रही हो रूपा ! वह होटल था । मैं जब वहाँ नौकरी करूँगा, तो किसी होटल में इतना महँगा कमरा थोड़े ही लूँगा । किशोर को तो तुम जानती हो न ! वही जो बहुधा होटल में हम लोगों से मिलने आ जाया करते थे । वे जिस कमरे में रहते हैं, उसका पच्चीस रुपए महीना किराया देते हैं । मैं भी ऐसा ही कोई कमरा खोज लूँगा । और, फिलहाल तो किसी मित्र के साथ ही रहने की चेष्टा करूँगा । उसका भी बोझ हलका हो जाएगा और मेरा भी ।’

और अपनी मानसिक निन्ताओं की परवाह न कर रूपा ने स्वीकृति दे दी थी कलकत्ता जाने के लिए । लेकिन उसने यह कल्पना भी न की थी कि आठ महीने गुजर जाने पर भी, शरद उसे अपने पास बुलाने वा नाम न लेगा । अब तो जब कभी रूपा ने स्वयं यह बात लिखी है तो शरद का उत्तर नकारात्मक ही आया है । शरद लिख देता है, ‘तुम तो काफी समझदार हो, रूपा । स्वयं कलकत्ता देख भी चुकी हो । अब तक कोई मकान मुझे नहीं मिल सका है । एक मित्र के साथ रात को सो रहता हूँ उसके कमरे में । बिर्फ सोने के लिए उसे पन्द्रह रुपए देता हूँ महीने में । युद्ध समाप्त हो चुका है; लेकिन युद्ध-जन्य अभिशर्पा से हम लोगों को अब तक मुक्ति नहीं मिल सकी है । सुनते हैं, बहुत जल्द मकान खाली होंगे, और तभी तुम्हें तथा मन्नू को यहाँ ला सकता हूँ । लेकिन दस-पाँच दिन भी घूमने का जो खर्च पड़ेगा, वह तुमसे छिपा नहीं है ।’

अंधेरा काफी भुका आया था । लेकिन रूपा इन्हीं सब बातों में उलझी-सी बैठी है । वह साच रही है कि कलकत्ता जाने की बात जिस दिन उसने अपने साजन से कही थी, उस दिन शायद बहुत बड़ी गलती उसने कर डाली थी । गलती जब हो ही चुकी है, तब उसका प्रायश्चित्त भी उसे ही करना होगा—करना ही पड़ रहा है । उसे लगा कि उसने जान-बूझकर अपने सुख को दुःख में परिणत कर लिया है । सोने के पिंजड़े में बन्द पत्नी दूसरों के आकर्षण का केन्द्र रहता है । लेकिन वह पत्नी स्वयं कितना परेशान और दुखी रहता है, इसका किसी को पता नहीं रहता । आज वह ठीक उस मैना की तरह है, जो किसी सोने के पिंजड़े में बन्द हो चुकी हो और अपने सारे सुख और सन्तोष से हाथ धो चुकी हो । रुपयों का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसे भरपूर मिल जाता है प्रतिमास; लेकिन साजन से मिलने की और उनके समीप रहने की बात एकदम सपना हो चुकी है । हाँ, सपना !

रूपा अभी अपने इसी ताने-बाने को बुनती रहती; लेकिन मन्नू ने आकर उसका ध्यान भङ्ग कर दिया । अचानक आकर उसने, रूपा की पीठ पर अपने दोनों हाथ थपथपाते हुए, कहा—‘माँ ! अँधेरा हो गया है । तुमने लालटेन भी नहीं जलाई !’

‘अभी जलाती हूँ बेटा !’ रूपा ने कहा और उठकर लालटेन जलाने चली गई ।

लालटेन का जगमग प्रकाश सारे घर में चमक उठा । लेकिन रूपा के अंतस्तल का अन्धकार अब भी सघन था । उसकी उलझी लड़ियाँ अब भी जैसी की तैसी थीं । दूर किसी अमराई से अब भी कोयल कुहु-कुहु मुहु-मुहु चिन्ना रही थी !

“ उपेक्षित ”

लेखिका—सुश्री शांति, एम० ए०, इलाहाबाद

धूल से सना हुआ और हाथ से गोलियां उछालता हुआ दीपक भीतर आकर माँ के पास खड़ा हो गया। किरण उस समय अकेली ही थी। अतः हृदय के आवेश को शान्त कर लेने का उसे अवकाश था। उसने दीपक को बड़ी ममता से अपनी ओर खींचकर हृदय से लगा लिया। दीपक ने अनायास ही इतना दुलार पाकर अपने दोनों हाथ माँ के गले में डाल दिये “...” किरण का धैर्य, सीमा को पार कर चुका था, वह फूट-फूट कर रोने लगी। दीपक हक्का बक्का मां हांकर माँ को देखने लगा फिर धीरे से बोला— “क्या क्या मैंने ?” किरण ने कुछ उत्तर नहीं दिया..... वह जी भर कर अपने प्राण को दुलार लेना चाहती थी, वह अपना सारा दुःख आँसुओं में बहा देना चाहती थी। उसका बालक ने फिर जिज्ञासा की।

“बेटे ! मेरे लाल !” किरण ने उसके कोमल निर्दोष मुख पर अपना भीगा हुआ गाल रखते हुए कहा— “तू अच्छे लड़कों की तरह क्यों नहीं रहता ? दिन भर गलियों में फिरता रहता है; कभी किसी से लड़ता है; कभी गाली बकता है.....”

‘तुम इसीलिए रो रही हो ?’ भोले बालक ने पूछा।

“हाँ दीपक ! और क्या करूँ.....”

“लेकिन मैं क्या करूँ माँ ! घर पर किसके साथ खेलूँ ? सामने आते ही सभी डाटने लगते हैं। तब तुम भी तो चुप हो जाती हो ! तुम उन सबसे कह क्यों नहीं देती माँ कि वे मुझे प्यार करें। पिता जी; ताई, बुआ.....”

नन्हा सा दीपक माँ के बदले हुए भावों से यह न समझ सका कि उसकी बात माँ के अतिरिक्त और कोई भी सुन रहा है। उसने अपने दुर्बल बन्धे पर किसी के कठोर स्पर्श का अनुभव किया। उसने भयभीत होकर माँ की गोद से सिर घुमाकर देखा—

“क्यों वे बदमाश ! अब बड़ों बड़ों की शिकायत करने लगा ! हड्डी पसली एक कर दूँगा मारकर। दिन भर मारे मारे फिरना और गलियों की खाक छानना—यही सपूत के काम हैं। जरा कपड़े देखो—जैसे कोई तेली हो !”

दीपक सहमकर माँ से दूर हटकर खड़ा हो गया। जब उसने देखा कि उसके पिता का ध्यान सूट रखने में लगा है तो वह चुपके से बाहर भाग गया। श्री प्रकाश ने कपड़े समझालकर रखने के बाद चारों ओर देखकर कहा—

“चल दिया ना ? वह डरता थोड़े ही है किसी से। जी चाहता है उसे कोठरी में बन्द कर दूँ !”

किरण पहले से ही भरी बैठी थी—यह आघात सहन न कर सकी—और तीखे स्वर में कह उठी—

“आदर्श पिता ठहरे— जो न करें वह बम हैं ! सारा दिन फिरता तो रहता है मगर कभी यह भी जानने का प्रयास किया कि वह ऐसा क्यों करता है ? किसी की ममता नहीं, किसी का मोह नहीं, किसी के लिए उस अबोध के व्यक्तित्व का मूल्य नहीं.....वह भला और करे भी तो क्या ?

श्री प्रकाश ने भी चिढ़कर कहा—“तो आपका यह मतलब है कि उसकी आदतें बिगाड़ने का सारा दोष मुझ ही पर है । लेकिन क्या देवी जी यह बताने की कृपा करेंगी कि वह स्कूल से किस कारण जी चुराता है ?

“कारण ! कारण तो स्पष्ट ही है । जब उसका जीवन ही अव्यवस्थित है तो मस्तिष्क कैसे ठीक काम कर सकता है ?

“अच्छा, अच्छा; मनोविज्ञान पर भाषण देने की आवश्यकता नहीं.....मूर्ख कहीं की; खुद ही तो दुलार कर करके चौपट कर दिया और दोप दे रही है मुझको ।”

“लज्जा नहीं आती आपको यह बहते हुए ? आप घर के भ्रूणों से बचने के लिए घर से दूर ही रहते हैं; मुझे दम लेने का भी अवकाश नहीं मिलता; आपकी उपेक्षा देखकर घर के और सभी लोग भी उस बेचारे को तुतकारते रहते हैं । क्या यही वह ममता है जो उसे घर में उलझाये रख सके ?”

“अच्छा जो मन में आए सो करो । हम सब उसके बैरी हैं तो तुम तो मित्र हो ना । तुम्हीं ने क्या कर दिखाया ? तुम्हारे कहने से वह कितना सुधर गया ?”

किरण श्रीप्रकाश की अविवेकशीलता पर क्रोध से पागल हो उठी । उसने कटु उत्तर देना चाहा, किन्तु तब तक उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही श्रीप्रकाश अपने भाई के कमरे में जा बैठा । किरण ने दूर से देखा— वह अपने छोटे से भतीजे को खिला रहा था । वह कमरे का द्वार बन्द करके बेसुध सी वही पृथ्वी पर बैठ गई । रह रह कर उसे वे दिन याद आने लगे जब रूप का पुजारी बिना बुलाये ही किसी न किसी बहाने आ-आ कर उमे हँसाया और मनाया करता था । जब आत्ममर्पण के वे स्वर्ण दिवस बीत चुके थे । वामना का प्रेमी त्याग की तपस्या का प्रहसन करने में असमर्थ था ।

श्रीप्रकाश ने अपनी बातों पर खेद प्रकट नहीं किया; न दीपक के प्रति उसकी ममता ही जाग्रत हुई । उसने कभी इस बात की आवश्यकता ही नहीं समझी कि पत्नी से वह किसी विषय पर परामर्श करे अथवा अपना मतभेद दूर करने का प्रयत्न करे । दीपक को भी वह एक आदर्श बालक के रूप में देखना तो अवश्य चाहता था; परन्तु उसके लिए वह मूल्य कुछ भी न देना चाहता था । अतः बात वहीं की वहीं रह गई । श्रीप्रकाश के लिए पत्नी की यही उपयोगिता थी कि उसका सारा काम यथासमय हो जाय और जब उसका जी चाहे तब वह किरण को अपने बाहुपाश में जकड़कर क्षण भर दुलार ले । यह सब उसे प्राप्य था । पर बेचारे दीपक का उसे ध्यान तक न आता था ।

कभी कभी किरण के मस्तिष्क में बड़े बड़े विचित्र विचार उठते । बहुधा वह सोचती कि अपने अभागों लाइले को लेकर पत्नी को छोड़कर कहीं बहुत दूर चली जाय । किन्तु कहाँ ?.....कैसे ? यह विकट समस्या सदा ही एक प्रश्न चिन्ह बनकर रह जाती ।

कभी कभी घोर विवशता और लाचारी का अनुभव करती हुई रात के सूने अंधकार में अपने जीवन के आधार को हृदय से चिपका कर बस शून्य में ही कह उठती—‘मेरे दुलारे लाल मुझे क्षमा करना.....मैं तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं कर सकती.....’ अपनी ममता तक जी भर नहीं व्यक्त कर पाती....’

दीपक माँ की ममता को समझने लगा था और वह सदैव इसी प्रयास में रहता था कि वह वही करे जिससे माँ को प्रसन्नता हो। वह किरण के समझाने पर स्कूल भी जाने लगा किन्तु फिर भी प्रतिकूल वातावरण पाकर वह बालक खोया खोया सा रहता था। कभी-कभी पिता के कई बार पुकारने पर वह चौंक कर कहता ‘जी ! मुझे पुकारा ?’ श्रीप्रकाश यह सब देखकर और भी चिढ़ता था—वह लापरवाह व्यक्ति था चाहता था जो कुछ भला है वह उसे सहज ही मिल जाय; उसे उसके लिए परिश्रम न करना पड़े। पत्नी की असुविधाओं और बालक की आवश्यकताओं के प्रति वह सर्वथा उदासीन ! वह अपने मित्रों के बच्चों की बातचीत, सभ्यता, विद्या-बुद्धि सबकी प्रशंसा करते हुए कहता ‘इस अभागे ने मेरे सारे अरमानों पर पानी फेर दिया ! मुझे तो यह कहते लज्जा आती है कि यह मेरा पुत्र है।’

सबकी उपेक्षा और उदासीनता ने मां-बेटे को और भी पास ला दिया। किरण का आधार दीपक और दीपक की सर्वस्व माँ ! एक दिन सहसा किरण को ज्वर हो गया। सीने में दर्द भी था। डाक्टर को दिखाया गया; दवा भी आई किन्तु कुछ लाभ न हुआ। दीपक को भी उन ही दिनों हरात हो गई। किन्तु कोई विशेष बात न होने के कारण उसको और किसी का ध्यान न गया।

एक रात किरण की दशा बहुत चिन्ताजनक हो गई। डाक्टर ने पुनः देखकर कहा ‘भगवान की इच्छा है। दवा मैंने बदल दी है; आज की रात अगर कट जाय तो कुछ आशा हो सकती है।’ सब लोग सुनकर घबरा गए; श्रीप्रकाश भी चिन्तित हुए—ऐसे समय में उन्हें किरण में अच्छाईयां ही अच्छाईयां दिवाई देने लागीं; यहां तक कि दीपक को भी उन्होंने अपने इस प्रेम के ज्वार में क्षमा कर दिया (किसलिये; यह तो श्रीप्रकाश ही जानें !)

श्रीप्रकाश झटपट वपड़े बदलकर किरण को दवा और मालिश के लिये तेल लेने चले गए। सब लोग भीतर कामकाज में लगे थे; किरण ऊँघ रही थी तभी उसे अपने माथे पर प्यारा प्यारा नन्हा सा हाथ रखवा हुआ जान पड़ा। उसने आँखें खोलकर देखा तो सिहर उठी। खाट के पास दीपक खड़ा था; उसकी आँखें लाल थीं और शरीर तप रहा था। उसने चिन्ता के साथ कहा ‘लेट जा लाल ! तेरा बदन तो जल सा रहा है।’

दीपक मां से लिपकर लेट गया। और दुलार भरे स्वर में बोला—‘मुझे भी बुखार आ गया माँ ! कितना अच्छा हुआ।’

‘क्यों रे पागल; बीमार होना भी कहीं अच्छा होता है !’

‘कभी कभी अच्छा होता है माँ; चाची कहती थीं.....कि तुम्हारी हालत खराब है तुम बचोगी नहीं। तो मां मैं अकेला क्या करता ? इसीलिए मैंने दवा नहीं पी और जब

कोई सामने नहीं था तो मैं बड़ी देर ठंडे पानी में भीगता रहा.....तुम भी सर्दी से बीमार हो ना माँ ?

और धीरे धीरे दीपक की दशा गिरती ही गई। वह ज़िद करके किरण के पास ही लेटा रहा। श्रीप्रकाश ने उसमें खिलौनों और पुस्तकों की बात की तो उसने मुह फेर लिया; घर वालों ने हाल पूछा तो वह चुप रहा। केवल किरण के गले में हाथ डाले वह पड़ा रहा।

सवेरा होते होते उसका मुँह मुझाने लगा। किरण ने दहल कर पूछा ‘जी घबरा रहा है बेटा ?’

दीपक ने सर हिला दिया। कुछ ही देर बाद वह बड़बड़ाने लगा.....सिर्फ माँ से बोलूंगा.....मेरा और कोई नहीं है.....तुम सब मुझे मारोगे.....मुझे बुरा बहोगे.....मैं अपनी अम्मा का राजा बेटा हूँ। नहीं चाहिए तुम्हारे खिलौने और मिठाई ! अब देने आए हैं.....अब तक कहाँ थे.....लो मुझे स्कूल जाना है माँ.....जाऊँ.....”

किरण ने पागलों की तरह बुझते दीपक को गोद में लेकर कहा “यह तूने क्या किया मेरे बच्चे ?” और दूसरे ही क्षण वह श्रम और आवेग से मूर्छित हो गई। तब भी उसका एक हाथ दीपक के कपोल पर था और दूसरे से वह उसे अपने हृदय के समीप लिए थी.....इस भय से कि उसका रूठा बालक उसके बंधन से मुक्त होकर चला न जाय !



